लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस

बिगुल पुस्तिका - 8

बिगुल पुस्तिका–८

लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल-उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस

सम्पादन
'बिगुल' सम्पादक-मण्डल

राहुल फ़ाउण्डेशन
लखनऊ

समाज बदलने की चाहत रखने वालों के लिए

- देश-दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- सुबह-सुबह प्रगतिशील कविता, कहानियां, उपन्यास, गीत-संगीत
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य पीडीएफ व यूनिकोड फॉर्मेट में
- बिना ईमेल या सदस्यता के झंझट के, सिर्फ व्हाटसएप्प ग्रुप में जुड़कर
- हमारे ग्रुप में अन्य ग्रुप की भांति दिन में 500 मैसेज नहीं बल्कि दिन में सिर्फ दो तीन ही संदेश मिलेंगे ताकि आप आराम से पढ़ सकें।
- तो जुड़ें हमारे व्हाटसएप्प ग्रुप मजदूर बिगुल से। अपना नाम और जिला लिखकर इस नम्बर पर संदेश भेज दें - 9892808704

ISBN 978-81-906253-2-6

मूल्य : रु. 30.00

प्रथम संस्करण : जनवरी, 2008

प्रकाशक : **राहुल फ़ाउण्डेशन**
69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज,
लखनऊ–226 006 द्वारा प्रकाशित

आवरण : **रामबाबू**

टाइपसेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस–28, शक्तिनगर, लखनऊ

Laabhkari Mulya, Laagat Mulya, Madhyam Kisan aur Chhote Paimane ke Maal-Utpadan ke Bare me Marxvadi Drishtikon: Ek Bahas

प्राक्कथन

मज़दूर अख़बार 'बिगुल' के पन्नों पर दिसम्बर 2002 से फ़रवरी 2005 के बीच लागत मूल्य, लाभकारी मूल्य और मँझोले किसानों के प्रति सर्वहारा क्रान्तिकारियों के दृष्टिकोण को लेकर एक महत्त्वपूर्ण बहस चली थी।

बहस में एस. प्रताप की मूल अवस्थिति यह थी कि छोटे और मँझोले किसानों की मुख्य माँग कृषि का लागत मूल्य कम करने की होनी चाहिए और यह कि लाभकारी मूल्य की माँग मुख्यतः बड़े किसानों को ही लाभ पहुँचाती है, लेकिन इसके साथ ही वे (गन्ना किसानों की बात करते हुए अपने पहले लेख में) यह भी कहते हैं कि गन्ने का वाजिब मूल्य पाने के लिए उन्हें मिलों पर लगातार दबाव बनाये रखने की रणनीति अपनानी होगी। सुखदेव, नीरज और 'बिगुल' सम्पादक-मण्डल की अवस्थिति यह है कि न केवल लाभकारी मूल्य की माँग बल्कि लागत मूल्य घटाने की माँग भी वर्ग-चरित्र की दृष्टि से मुनाफ़े के लिए उत्पादन करने वाले और मज़दूरों की श्रम-शक्ति ख़रीदकर अधिशेष निचोड़ने वाले मालिक किसानों की माँग है। यह माँग सर्वहारा के वर्गहित के ख़िलाफ़ है। लागत मूल्य घटाने की माँग का मतलब है ग़रीब किसानों और मँझोले किसानों के निचले संस्तर को पूँजीवाद के अन्तर्गत ख़ुशहाली की भ्रान्ति देना, छोटी जोतों को पूँजीवाद के चतुर्दिक हमले से बचाकर सामाजिक विकास की गति को अनुपयोगी रूप से धीमा करना और उजरती मज़दूरों की क़ीमत पर मालिक किसानों के हितों की हिफ़ाज़त करना। यह माँग न केवल मँझोले बल्कि धनी किसानों को भी लाभ पहुँचायेगी, लेकिन सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी के हितों के सर्वथा प्रतिकूल होगी। इस पक्ष का कहना है कि लागत मूल्य घटाने की माँग पर नहीं, बल्कि अन्य कुछ माँगों पर सर्वहारा वर्ग को छोटे-मँझोले किसानों को अपने पक्ष में करने की कोशिश करनी होगी। फिर बहस का दायरा विस्तारित होकर इस मुद्दे पर केन्द्रित हो गया है कि मँझोले किसानों के प्रवर्ग को किस प्रकार परिभाषित किया जाये और समाजवादी क्रान्ति की पक्षधर क्रान्तिकारी शक्तियों का उनके प्रति क्या रुख़ होना चाहिए। पूरी बहस के दौरान एस. प्रताप ने कई बार अपनी अवस्थिति में अवसरवादी गोलमाल किया है पर इससे उनकी मूल अवस्थिति पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा है। पूरी बहस पढ़कर पाठक स्वयं इसे देखेंगे और सही-ग़लत का फ़ैसला करेंगे।

'बिगुल' के फ़रवरी 2005 अंक में सम्पादक-मण्डल ने इस बहस का सम्पादकीय समाहार कर दिया, लेकिन एस. प्रताप इस निर्णय से असन्तुष्ट थे। उनका मानना था

कि ग़ैर-जनवादी ढंग से इस बहस को बीच में ही रोक दिया गया। 'बिगुल' सम्पादकों का कहना था कि दोनों पक्षों के सभी तर्क आने के बाद ही बहस का समाहार किया गया था और यह कि 'बिगुल' के पन्नों पर अनन्तकाल तक यह बहस नहीं चल सकती, इसलिए इसे किसी और माध्यम या मंच से आगे चलाया जायेगा। इस निर्णय से असन्तुष्ट एस. प्रताप ने 'बिगुल' को अपनी दो टिप्पणियाँ (क्रमशः जनवरी 2005 और फ़रवरी 2005 में) भेजीं। उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए 'बिगुल' सम्पादक-मण्डल ने ये दोनों टिप्पणियाँ अप्रैल 2005 में सुखदेव को भेज दीं, जिनका उत्तर उन्होंने जून, 2005 में लिखकर भेजा। एस. प्रताप की अन्तिम दो टिप्पणियाँ और सुखदेव का जवाब 'बिगुल' में प्रकाशित नहीं हुए। हमारी योजना थी कि इन्हें शामिल करके पूरी बहस को पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कर दिया जायेगा। अब उसी योजना को, कुछ अपरिहार्य कारणों से, किंचित विलम्ब से लागू करते हुए, यह पुस्तिका प्रकाशित की जा रही है।

इस पुस्तिका के प्रकाशन का उद्देश्य एस. प्रताप जैसे लोगों और उनकी वर्ग-अवस्थिति को स्पष्ट करनामात्र ही नहीं है। ऐसे तमाम बड़बोले "चिन्तक" और निठल्ले क़लमघसीट बहुत सारा "मौलिक" चिन्तन करते रहते हैं। उन सब पर बहस चलाना ऊर्जा का अपव्यय होगा। इस पूरी बहस को प्रकाशित करने का मूल कारण यह है कि भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन में लागत मूल्य, लाभकारी मूल्य और मँझोले किसानों के सवाल पर भारी भ्रान्ति व्याप्त है। ज़्यादातर की अवस्थिति इस मामले में कमोबेश एस. प्रताप जैसी ही है। अपने को मार्क्सवादी कहते हुए भी उनकी मूल अवस्थिति नरोदवादी है। इसलिए इस प्रश्न पर सफ़ाई बेहद ज़रूरी है।

यह बहस इस प्रयोजन को काफ़ी हद तक सिद्ध करेगी, इसका हमें विश्वास है। बहरहाल, हमने दोनों पक्षों को यथावत यहाँ प्रस्तुत कर दिया है और सही-ग़लत का फ़ैसला पाठकों पर छोड़ दिया है।

25.12.2007 —*'बिगुल' सम्पादक-मण्डल*

विषयसूची

क्या कर रहे हैं आजकल पंजाब के 'कामरेड'? – सुखदेव **7**

चीनी मिल-मालिकों की लूट से तबाह गन्ना किसान – एस. प्रताप **9**

गन्ना किसानों के संकट के बारे में एस. प्रताप का दृष्टिकोण
ग़लत है! – नीरज **12**

पूँजीवादी खेती के संकट पर सही कम्युनिस्ट दृष्टिकोण
का सवाल – बिगुल सम्पादक-मण्डल **14**

छोटे-मँझोले किसानों को कम्युनिस्ट किन माँगों
पर साथ लेंगे? – एक कार्यकर्ता **22**

छोटे-मँझोले किसान किन माँगों पर लड़ेंगे? मज़दूर आन्दोलन
के साथ वे कैसे आयेंगे? उनकी ठोस, तात्कालिक माँगें क्या होंगी?
– बिगुल सम्पादक-मण्डल **23**

मँझोले किसानों के बारे में सर्वहारा दृष्टिकोण का सवाल – एक
– एस. प्रताप **33**

किसानी के सवाल को पेटी बुर्जुआ चश्मे से नहीं सर्वहारा के
नज़रिये से देखिये जनाब! – सुखदेव **41**

मँझोले किसानों के बारे में सर्वहारा दृष्टिकोण का सवाल – दो
– एस. प्रताप **50**

मध्यम किसान और लागत मूल्य का सवाल (बहस का सम्पादकीय समाहार) **56**

कुतर्क, लीपापोती और अपने ही अन्तरविरोधों की नुमाइश
की है एस. प्रताप ने – सुखदेव **65**

सम्पादक-मण्डल छुप-छुपकर धो रहा है धनी किसानों
के घर के पोतड़े – एस. प्रताप **69**

मँझोले किसानों के बारे में सर्वहारा दृष्टिकोण का सवाल – तीन
– एस. प्रताप **77**

मध्यम किसान और लागत मूल्य का सवाल : छोटे पैमाने के
माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण – सुखदेव **92**

परिशिष्ट–एक

समाजवादी क्रान्ति का भूमि-सम्बन्ध विषयक कार्यक्रम और वर्ग-संश्रय :
लेनिन की और कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की अवस्थिति **104**

परिशिष्ट–दो

किसानों के बारे में कम्युनिस्ट दृष्टिकोण : कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू **110**

क्या कर रहे हैं आजकल पंजाब के 'कामरेड'?

सुखदेव

सी.पी.आई. तथा सी.पी.एम. जैसे संसदमार्गियों के अलावा इस समय पंजाब में अपनेआप को कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी कहने वाले, मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद विचारधारा का जाप करने वाले लगभग आधा दर्जन संगठन सक्रिय हैं। कम्युनिस्ट पार्टियों, संगठनों के नाम पर सक्रिय ये भाँति-भाँति के 'कम्युनिस्ट' आजकल यह भूल ही गये हैं कि कम्युनिस्ट पार्टी/संगठन सर्वहारा वर्ग का अगुवा दस्ता होता है, जिसके लिए सर्वहारा वर्ग के हित सर्वप्रथम होते हैं। इनके द्वारा निकाली जा रही अलग-अलग पत्र-पत्रिकाओं से आज मज़दूर ग़ायब है। मज़दूर वर्ग की लड़ाई, उसके सपने, उम्मीदें, दुख-दर्द तथा उसकी विचारधारा भी ग़ायब है। कुछ है तो वह है, किसानों को बचाने की चीख़-पुकार। किसानों में भी अमीर-ग़रीब किसानों के बीच कोई फ़र्क़ नहीं, बल्कि सभी किसानों को बचाने, उनके क़र्ज़ माफ़ कराने तथा उनके मुनाफ़े को बढ़ाने की चिन्ताएँ इन 'कम्युनिस्टों' के सिर चढ़कर बोल रही हैं। संक्षेप में कहें तो इन दिनों पंजाब में सक्रिय भाँति-भाँति के कम्युनिस्टों का धनी किसानों (कुलकों) या कृषि बुर्जुआजी से टाँका भिड़ा हुआ है।

पिछले कुछ सालों से पंजाब का किसान आन्दोलन स्थानीय मीडिया की सुर्ख़ियों में है। राष्ट्रीय मीडिया में भी इसकी अक्सर चर्चा होती रहती है। लगभग दो साल पहले सी.पी.आई., सी.पी.एम. तथा पंजाब के अलग-अलग नक्सलवादी संगठनों द्वारा चलाये जाने वाले पाँच किसान संगठनों का साझा मोर्चा बनाकर एक आन्दोलन शुरू किया गया था जिसको इन्होंने 'क़र्ज़ा मुक्ति तथा किसान बचाओ संग्राम' का नाम दिया था। मगर किसानों में कोई ख़ास समर्थन न मिलने के कारण जल्दी ही यह मोर्चा बिखर गया था। मगर तीन महीने पहले यह बिखरा हुआ कुटुम्ब फिर इकट्ठा हो गया। इस बार संगठनों की संख्या अधिक भी है क्योंकि कुछ किसान संगठनों में फूट पड़ जाने से इस कुटुम्ब में दो नये सदस्य शामिल हो गये थे। इस बार मुद्दे भी कुछ अलग थे। इस बार मुख्य मुद्दा था धान की क़ीमत 600 रुपये प्रति कुन्तल से बढ़ाकर 750 रुपये करवाना। इसके अलावा और माँगें थीं, दूध की क़ीमत में बढ़ोत्तरी, किसानों का क़र्ज़ माफ़ करवाना, कैप्टन (अमरिन्दर सिंह – सं.) सरकार द्वारा शुरू किये गये किसानों के मोटर के बिजली-बिल माफ़ करवाना

जो अकाली सरकार के समय माफ़ थे।

इन माँगों को लेकर इन कम्युनिस्ट किसान संगठनों ने आन्दोलन शुरू किया। मगर इस बार भी यह फ़्लॉप शो ही साबित हुआ। 29 अक्टूबर 2002 को इन्होंने 'पंजाब बन्द' का आह्वान किया। मगर पंजाब के लोगों ने इस आह्वान को तवज्जो नहीं दी। इन दिनों यह मोर्चा फिर बिखरा हुआ है। अलग-अलग संगठन अलग-अलग रहकर किसानों से मोटरों के बिलों का बायकाट करवाने में जुटे हैं तथा बिजली कर्मचारियों से लड़-झगड़कर अपने लड़ाकूपन की नुमाइश लगा रहे हैं।

कोई भी वर्ग अपने हितों के लिए लड़ने को आज़ाद है। वह ख़ुशी से अपनी लड़ाई लड़े। मगर दुख की बात तो यह है कि पंजाब की धरती पर यह सब कुछ कम्युनिस्टों के भेस में हो रहा है। इन कम्युनिस्टों की रहनुमाई में लड़े जा रहे इन किसान आन्दोलनों की माँगें मज़दूर विरोधी तथा ग्रामीण धनी किसानों के हित में हैं। मज़दूरों के रोज़मर्रा के उपयोग की वस्तुओं जैसे, गेहूँ, धान तथा दूध आदि की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी तो सीधे-सीधे मज़दूरों की जेब पर डाका है। ऊपर से सितम यह है कि इस डाकेज़नी में कोई और नहीं बल्कि ख़ुद को मज़दूर वर्ग के प्रतिनिधि कहने वाले रंग-बिरंगे कम्युनिस्ट ही जाने-अनजाने मददगार बन रहे हैं।

जहाँ तक किसानों के मोटरों के बिल माफ़ करने की माँग का सवाल है, जिस पर यह टिप्पणी लिखे जाने तक भी आन्दोलन जारी है, इसकी असलियत यह है कि ग़रीब किसानों (अर्द्धसर्वहाराओं) के पास तो बिजली की मोटरें हैं ही नहीं। ज़्यादातर ग़रीब किसानों के पास या तो सिंचाई का कोई साधन ही नहीं है, अगर है तो वह डीज़ल इंजन है। कम ज़मीन वाले ज़्यादातर किसान सिंचाई के लिए धनी किसानों पर निर्भर हैं। पंजाब की कुल बिजली की मोटरों की भारी संख्या धनी किसानों के पास है या कुछ एक में छोटे किसानों के पास। कई अमीर किसान (कृषि पूँजीपति) तो ऐसे हैं जिनका मोटरों का बिल लाखों में बनता है। जैसेकि जंगबहादुर सिंह संघा (नकोदर), प्रकाश सिंह बादल, पूर्व मुख्यमन्त्री, हरचरन सिंह बराड़ (मुक्तसर) आदि-आदि।

इस विश्लेषण से आसानी से यह अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि कम्युनिस्ट संगठनों/पार्टियों के नाम पर पंजाब में सक्रिय संगठन आज किसके हित में खड़े हैं और किसके विरोध में। यह है रूसी नरोदवाद के भारतीय संस्करण की एक झलक। नरोदवाद के इस भारतीय संस्करण की और चीरफाड़ करना और मज़दूर जमात के बीच इसकी असलियत को उजागर करना भारत की सर्वहारा क्रान्ति को आगे बढ़ाने के लिए निहायत ज़रूरी है।

(बिगुल, दिसम्बर 2002)

चीनी मिल-मालिकों की लूट से तबाह गन्ना किसान

एस. प्रताप

पश्चिमी उत्तर प्रदेश का गन्ना आन्दोलन इस बार बुरी तरह असफल हुआ। ऐसी शर्मनाक पराजय किसान आन्दोलन के निकट अतीत के इतिहास में शायद ही कभी हुई हो। पिछले साल का गन्ना मूल्य 95 रुपये प्रति कुन्तल था और अब चीनी मिलों ने 64.50 रुपये प्रति कुन्तल पर गन्ना बेचने के लिए किसानों को मजबूर कर दिया है। इस मूल्य पर तो छोटे किसानों की लागत भी निकल आये तो ग़नीमत है।

सत्ता के साथ साँठ-गाँठ करके चीनी मिलें गन्ना मूल्य कम करने के सवाल पर अड़ी रहीं और गन्ना किसानों को इस हालत में पहुँचा दिया कि या तो वे अपना गन्ना खेत में खड़ा रहने दें और गेहूँ की फ़सल से भी हाथ धोएँ या गन्ना खेतों में ही जला डालें; या फिर कम गन्ना मूल्य स्वीकार कर मिल-मालिकों के हाथों लुटने के लिए तैयार हो जायें। चीनी मिलों को कोई जल्दी नहीं थी क्योंकि उनके गोदाम पहले से ही चीनी से अटे पड़े हैं। उनकी एक साज़िश यह भी थी कि इस साल चीनी का उत्पादन कम हो ताकि चीनी के स्टॉक को समाप्त किया जा सके और बाज़ार में चीनी की क़ीमत गिरने से रोका जा सके। एक पन्थ दो काज। एक हाथ से उन्होंने गन्ना उत्पादकों को भी पीटा और दूसरे हाथ से देश की सारी जनता को, जो चीनी का उपभोग करती है।

किसान आन्दोलन कितनी हास्यास्पद स्थिति में पहुँच गया है, उसे इस बात से ही समझा जा सकता है कि मिलों में पेराई चालू होने को ही वे अपनी जीत के तौर पर प्रचारित करने की होड़ में लगे हुए हैं। लोकदल वाले इसका सेहरा अजीत सिंह के सिर पर बाँध रहे हैं तो भारतीय किसान यूनियन (भाकियू) वाले टिकैत के सिर पर। भाकियू ने यह भी घोषणा की है कि गन्ना मूल्य बढ़ाने की माँग को लेकर हमारा आन्दोलन जारी रहेगा। शायद उनमें अभी थोड़ी शर्म बची है या शायद उनकी यह मजबूरी है क्योंकि उन्हें रोज़-रोज़ किसानों के बीच ही रहना होता है।

जहाँ तक किसानों का सवाल है, ख़ासकर मध्यम एवं छोटे किसानों का, जिनकी तादाद ही सबसे अधिक है, वे इस बार ख़ून का घूँट पीकर रह गये हैं। उनके चेहरों पर हताशा, मायूसी और ग़ुस्से के भाव जैसे एक-दूसरे में घुलमिल गये हैं। उनका किसी भी राजनीतिक

पार्टी, यहाँ तक कि भाकियू में भी विश्वास नहीं रह गया है। कुछ नहीं से कुछ भला की स्थिति है। क्योंकि उनकी भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई संगठन मौजूद ही नहीं है। भारतीय किसान यूनियन एक हद तक उनका प्रतिनिधित्व करती है क्योंकि कैश फ़सल का इलाक़ा होने के चलते फ़सल की अच्छी क़ीमत मिले यह तो उनकी भी माँग है। हालाँकि छोटे-मँझोले किसानों के लिए फ़सल के लाभकारी मूल्य का यह सवाल एक छलावा ही है। यह मुख्यतः धनी किसानों की माँग है जोकि सिर्फ़ बाज़ार के लिए और मुनाफ़े के लिए पैदा करते हैं। लेकिन चूँकि कैश फ़सल तो छोटे किसान भी बेचने के लिए ही पैदा करते हैं इसलिए उनमें यह भ्रम बना रहता है कि इससे उन्हें भी लाभ हो सकता है। वे इस बात को नहीं समझ पाते कि वे तो कोई और फ़सल या अन्य उपभोग की वस्तुएँ ख़रीदने के लिए ही अपनी फ़सल बेचते हैं और फ़सल के लाभकारी मूल्य का तर्क वहाँ भी लागू होता है जो वे ख़रीदते हैं। क्योंकि अमूमन ऐसा नहीं होता कि कुछ ख़ास फ़सलों का दाम स्वतन्त्र तरीक़े से बढ़ जाये और अन्य के दामों में कोई बढ़ोत्तरी न हो। यहाँ तक कि लागत मूल्य भी लगभग उसी अनुपात में बढ़ जाता है। अतः लाभकारी मूल्य की माँग से फ़ायदा तो सिर्फ़ बड़े किसानों को ही है जो उपभोग और लागत मूल्य निकालने के बाद, फ़सल के बड़े हिस्से को बेचकर शुद्ध मुनाफ़ा कमाते हैं। अगर लाभकारी मूल्य की दर तय कर दी जाये तो लागत मूल्य बढ़ने के साथ उसी ज़मीन के टुकड़े पर उनका मुनाफ़ा बढ़ता जायेगा जबकि छोटा किसान तबाह हो जायेगा।

छोटे किसानों की असली समस्या तो लागत मूल्य के बढ़ते जाने की है। लेकिन उनकी फ़सल का वाजिब मूल्य उन्हें मिले इसके लिए भी मिलों से उनका अन्तरविरोध हमेशा बना रहेगा। इस समय किसान आन्दोलन की मुख्य माँग लागत मूल्य कम करने पर ही केन्द्रित होनी चाहिए और इसके साथ ही फ़सल का वाजिब मूल्य पाने के लिए भी मिलों पर लगातार दबाव बनाए रखने की रणनीति अख़्तियार करनी चाहिए। लेकिन हो रहा है बिल्कुल उलटा। लागत मूल्य के सवाल पर तो आवाज़ उठती ही नहीं, हाँ, हर मीटिंग में इसका रोना ज़रूर रोया जाता है। यही वह बिन्दु है जहाँ छोटे किसान धनी किसानों के संगठन भाकियू के साथ होते हुए भी उससे अलग-थलग पड़ जाते हैं।

इस आन्दोलन से भी अगर फ़ायदे-नुक़सान पर ग़ौर किया जाये तो बड़े किसानों को अधिक नुक़सान नहीं हुआ है, उनकी मुनाफ़े की दर थोड़ी ज़रूर घट गयी। लेकिन जहाँ तक छोटे किसानों का सवाल है, आन्दोलन लम्बा खिंचते देख अपनी तबाही से बचने के लिए उन्होंने औने-पौने दाम पर क्रेशरों-कोल्हुओं को गन्ना बेचा। बाज़ार में गुड़ के दाम गिर जाने से बहुतेरे क्रेशर भी बन्द हो चुके हैं। अतः काफ़ी छोटे किसानों ने चारे के रूप में भी अपना गन्ना बेचा ताकि गेहूँ के लिए कुछ खेत ख़ाली हो सके अन्यथा भुखमरी की नौबत आ सकती है। लेकिन बड़े किसानों को पता था कि मिलें जल्दी ही चालू होंगी और सबसे पहले उन्हीं का गन्ना मिलों में जायेगा और फिर साधन सम्पन्न होने के चलते आनन-फ़ानन में गेहूँ की बोआई भी कर लेंगे। इसलिए उन्होंने अपना गन्ना खड़ा रखा। प्रचार करने के लिए उन्होंने ही अपना कुछ गन्ना भी खेतों में जलाया। उनके पास गन्ने के खेतों के अलावा भी पर्याप्त

ज़मीन है जिसमें गेहूँ की बुवाई उन्होंने पहले ही कर ली है।

इस समय मिलें खुल चुकी हैं लेकिन मिलों की रणनीति अभी भी यही लगती है कि वे इस बार कम से कम गन्ना लेने की कोशिश कर रहे हैं। गन्ना तौल केन्द्र कम हो गये हैं। लगता यही है कि बहुत सारे छोटे किसान इस बार अपना गन्ना मिलों को नहीं दे पायेंगे या कम गन्ना दे पायेंगे। जो भी हो यह साल उन पर भारी गुज़रेगा। और इसे चुपचाप बरदाश्त करने की भी एक सीमा है। देर-सबेर उनका आक्रोश फिर फूटेगा। और परिस्थितियाँ यह बताती हैं कि छोटे किसान देर-सबेर धनी किसानों के आन्दोलन के दायरे से स्वतन्त्र अपनी नयी राह खोजने की दिशा में ज़रूर आगे बढ़ेंगे।

(बिगुल, दिसम्बर 2002)

गन्ना किसानों के संकट के बारे में एस. प्रताप का दृष्टिकोण ग़लत है!

नीरज

'बिगुल' के दिसम्बर 2002 अंक में **क्या कर रहे हैं आजकल पंजाब के 'कामरेड'** (लेखक – सुखदेव) और **चीनी मिल-मालिकों की लूट से तबाह गन्ना किसान** (लेखक – एस. प्रताप) शीर्षक दो लेख छपे हैं। ज़रा ग़ौर से देखें तो पता चलता है कि ये दोनों लेख एक-दूसरे के बिलकुल उलट हैं।

सुखदेव के लेख में कम्युनिस्टों द्वारा पंजाब में माल के लाभकारी मूल्य की किसानों की लड़ाई लड़ने को रूसी नरोदवाद का भारतीय संस्करण कहा गया है। दूसरी ओर, एस. प्रताप के लेख में लाभकारी मूल्यों की हिमायत की गयी है। पता नहीं, यह ग़लती से हुआ है या किसी विभ्रम में। एस. प्रताप का लेख यदि सम्पादक-मण्डल ने सोच-समझकर छापा है तो इससे तो यही नतीजा निकलता है कि किसान सवाल पर अभी 'बिगुल' के सम्पादक-मण्डल का दिमाग़ भी पूरी तरह से साफ़ नहीं है। यदि इस लेख से 'बिगुल' के सम्पादकों की सहमति है तब तो यही लगता है कि लेखक ही नहीं बल्कि सम्पादक-मण्डल भी नरोदवादी विचारों से अभी मुक्त नहीं हो सका है।

एस. प्रताप के लेख से यही ज़ाहिर होता है कि लेखक मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र से बिल्कुल ही नावाकिफ़ है। मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की कसौटी पर इस लेख को सिरे से ख़ारिज किया जा सकता है। फ़िलहाल इतने विस्तार में जाने के बजाय मैं लेख के बुनियादी भटकाव की ओर इंगितभर करूँगा।

लेखक ने अपने लेख में परस्पर-विरोधी बातें लिखी हैं। जैसे उनके मुताबिक़, फ़सल के लाभकारी मूल्य से मुख्य फ़ायदा धनी किसान को होता है, तथा छोटे-मँझोले किसानों के लिए यह छलावा है। मगर फिर भी वह "फ़सल का वाजिब मूल्य हासिल करने के लिए मिलों पर लगातार दबाव बनाने" की नसीहत देते हैं। आगे उनका कहना है कि छोटे किसानों की मुख्य माँग तो लागत मूल्य कम करने की है। लेखक से मेरा सवाल है कि क्या छोटे किसानों के लिए यह भी एक छलावा नहीं है? किसानों की लागत का एक हिस्सा तो उजरती श्रम भी होता है। क्या लेखक उसको भी कम करने के हक़ में है? क्या लागत कम होने से फ़सलों के मूल्य में गिरावट नहीं आयेगी? अगर लागत कम होने से फ़सलों के दाम नहीं गिरते तो

क्या यह उपभोक्ताओं के साथ धोखाधड़ी नहीं होगी?

अगर थोड़ी देर के लिए लेखक के साथ सहमत हुआ जाये कि लागत का कम होना छोटे किसानों के हित में है, तो इसका अर्थ क्या होगा? यही कि छोटे पैमाने के माल-उत्पादन (जिसे देर-सबेर तबाह होना ही है) की उम्र थोड़ी लम्बी हो जायेगी। छोटे पैमाने के माल-उत्पादन को बचाये रखने में सर्वहारा वर्ग का क्या हित हो सकता है? क्या बड़े पैमाने की पैदावार हर तरह से छोटे पैमाने की पैदावार से बेहतर नहीं होती? क्या एक मार्क्सवादी को (छोटे पैमाने की पैदावार की निस्बत) बड़े पैमाने की पैदावार के हक़ में नहीं खड़ा होना चाहिए?

फ़िलहाल मेरे ख़याल से इतना ही काफ़ी है। समझदार के लिए इशारा काफ़ी होता है। उम्मीद है कि सम्पादक-मण्डल और श्री एस. प्रताप अपने-अपने अन्तरविरोध दूर कर लेंगे। अगर मेरी तरफ़ से और अधिक मदद की दरकार होगी तो सूचित कीजियेगा। अपना यह ख़त मैं **लेनिन** के हवाले से ख़त्म करूँगा :

“छोटे पैमाने की खेती और छोटी जोतों को पूँजीवाद के चतुर्दिक हमले से बचाकर किसान समुदाय को बचाने का प्रयास सामाजिक विकास की गति को अनुपयोगी रूप से धीमा करना होगा। इसका मतलब पूँजीवाद के अन्तर्गत भी ख़ुशहाली की भ्रान्ति से किसानों को धोखा देना होगा, इसका मतलब मेहनतकश वर्गों में फूट पैदा करना और बहुमत की क़ीमत पर अल्पमत के लिए एक विशेष सुविधाप्राप्त स्थिति पैदा करना होगा (लेनिन : मज़दूर पार्टी और किसान)।”

(लेखक चण्डीगढ़ के एक राजनीतिक कार्यकर्ता हैं)

(बिगुल, जनवरी 2003)

पूँजीवादी खेती के संकट पर सही कम्युनिस्ट दृष्टिकोण का सवाल

सम्पादकीय लापरवाही के लिए हमारी आत्मालोचना और गन्ने की खेती के संकट पर हमारा दृष्टिकोण

बिगुल सम्पादक-मण्डल

हम बेलागलपेट यह स्वीकार करते हैं कि साथी **नीरज** द्वारा उठायी गयी आपत्ति पूरी तरह सही है और **चीनी मिल-मालिकों की लूट से तबाह गन्ना किसान** (एस. प्रताप) लेख का प्रकाशन सरासर सम्पादकीय असावधानी है, जिसके लिए हम अपनी आत्मालोचना करते हैं। हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारतीय कृषि के संकट पर एस. प्रताप के लेख की वर्ग अवस्थिति 'बिगुल' की वर्ग अवस्थिति नहीं है। 'बिगुल' में पहले इस मुद्दे पर प्रकाशित लेखों-टिप्पणियों से भी यह स्पष्ट है। एस. प्रताप 'बिगुल' के पुराने लेखक हैं, इसलिए अख़बार के ऐन प्रेस में जाते समय प्राप्त उनके लेख को जल्दबाज़ी में छपने को भेज दिया गया। लेकिन यह एक गम्भीर लापरवाही है, जिसकी ओर हमारे कुछ अन्य प्रबुद्ध सहयोगियों ने भी इंगित किया है।

हम साथी नीरज की आलोचना का स्वागत करते हैं। उक्त प्रश्न पर हमारा स्टैण्ड साथी सुखदेव और साथी नीरज के स्टैण्ड से ही समानता रखता है। फिर भी हम ज़रूरी समझते हैं कि इस प्रश्न पर अपने दृष्टिकोण को संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत करें। हमने अपनी बात, राजनीतिक अर्थशास्त्र की ठेठ शब्दावली और हवालों से भरसक बचते हुए, सीधी-सरल भाषा में कहने की कोशिश की है ताकि 'बिगुल' के आम पाठकों को भी मामले की तह तक जाने में दिक़्क़त न हो। इसलिए लेख थोड़ा लम्बा हो गया है और पाठकों से थोड़े धीरज की माँग करता है।

लाभकारी मूल्य और लागत मूल्य के सवाल, पूँजीवादी व्यवस्था में छोटी किसानी की स्थिति, भारत में मँझोले और छोटे किसानों की नियति, भूमि-प्रश्न (खेती-बाड़ी से जुड़े सवाल) पर सही कम्युनिस्ट दृष्टिकोण और सही नारे तथा इनसे सम्बन्धित कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन के भटकाव पर हम 'बिगुल' में लगातार सामग्री देने की ज़रूरत शिद्दत के साथ महसूस करते हैं। नीरज और सुखदेव जैसे साथी इसमें विशेष भूमिका निभा सकते हैं। इस

बारे में मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र क्या कहता है, यह सीधी-सादी भाषा में 'बिगुल' के पाठकों को बताने की सख़्त ज़रूरत है। भविष्य में हमारी कोशिश रहेगी कि ऐसी सामग्री 'बिगुल' में लगातार प्रकाशित हो। साथी एस. प्रताप के लेख, उस पर साथी नीरज की टिप्पणी और इस सम्पादकीय टिप्पणी पर भी हम बहस के लिए लेख-टिप्पणियाँ आमन्त्रित करते हैं।

लाभकारी मूल्य की माँग और छोटे-मँझोले किसान

1. लाभकारी मूल्य का सवाल अपने वर्ग-सार की दृष्टि से पूरी तरह से धनी किसानों-कुलकों-पूँजीवादी किसानों की माँग है, जो मुनाफ़े के लिए पैदा करते हैं। यह देहाती इलाक़े का पूँजीपति वर्ग है जो शोषण और शासन में पूरे देश के स्तर पर औद्योगिक पूँजीपति वर्ग का छोटा साझीदार है। लाभकारी मूल्य का आन्दोलन मूलतः छोटे और बड़े लुटेरे शासक वर्गों के बीच की लड़ाई है, इसके ज़रिये पूँजीवादी भूस्वामी-फ़ार्मर-धनी किसान देश स्तर पर संचित अधिशेष (सरप्लस) में अपना हिस्सा बढ़ाने की माँग करते हैं। चूँकि उद्योग में मुनाफ़े की दर लगातार बढ़ाते जाने की सम्भावना खेती की अपेक्षा हमेशा ही बहुत अधिक होती है और चूँकि लूट के बड़े हिस्सेदार वित्तीय एवं औद्योगिक पूँजीपति वर्ग और साम्राज्यवादी भी हमेशा ही पूँजीवादी संकट का ज़्यादा से ज़्यादा हिस्सा लूट के छोटे साझीदार-धनी किसानों पर थोपने की कोशिश करते रहते हैं, इसलिए इनके बीच खींचतान चलती ही रहती है। धनी किसान लाभकारी मूल्य की, सब्सिडी की, ब्याज की रियायती दर की करों में छूट की और रियायती दर पर बिजली आदि की माँग करते रहते हैं। सभी पूँजीवादी देशों में वर्ग-ध्रुवीकरण को रोकने और संकट को विस्फोटक होने की स्थिति टालने के लिए पूरी खेती के नाम पर ऐसी रियायतें दी भी जाती हैं, लेकिन पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की स्वतन्त्र अन्दरूनी गति से, संकट बढ़ने पर ये रियायतें नाकाफ़ी हो जाती हैं और मन्दी की मार झेलता औद्योगिक पूँजीपति वर्ग इन्हें ख़त्म करने के लिए भी दबाव बनाता है। संक्षेप में, लाभकारी मूल्य की माँग हो या उत्पादन-लागत घटाने की अथवा आम कृषि सब्सिडी की माँग – ये सभी गाँव के ग़रीबों की शोषक और पूरे देश के मेहनतकशों के शोषण की साझीदार, धनी किसान आबादी की माँगें हैं। किसी भी सूरत में, एक कम्युनिस्ट छोटे-मँझोले मालिक किसानों को लाभकारी मूल्य के आन्दोलन के साथ खड़ा होने का सुझाव नहीं दे सकता।

2. पूँजीवादी समाज में छोटे और मँझोले मालिक किसान प्रायः इस भ्रम के शिकार रहते हैं कि यदि बाज़ार में उनके द्वारा उत्पादित चीज़ों की बेहतर क़ीमत मिल जाये तो उनकी हालत कुछ बेहतर हो सकती है। कम्युनिस्ट प्रचार हर हाल में उनके इस भ्रम के विरुद्ध संघर्ष करता है। वह उन्हें लगातार यह बताने की कोशिश करता है कि बाज़ार में अधिक मुनाफ़ा कमाने वाला हर हाल में कम मुनाफ़ा कमाने वाले को पीछे छोड़ता ही जायेगा, हर हाल में बड़ी पूँजी छोटी पूँजी को खा जायेगी। एक नौबत ऐसी आनी ही है कि छोटे किसानों और अधिसंख्य मँझोले किसानों के पास बीज, खाद, पानी, कीटनाशक आदि के लिए रक़म के लाले पड़ जायें। उन्हें बैंकों या महाजनों से क़र्ज़ लेने, अपनी ज़मीन धनी किसान को रेहन या पट्टे पर देने

और दूसरे के खेतों में या उद्योगों में जाकर मज़दूरी करने के बावजूद कंगाल होकर मज़दूरों की जमात में शामिल होना ही है। पूँजीवाद के अन्तर्गत यह उनकी अनिवार्य नियति है।

3. छोटे किसान अपने खेतों में मज़दूर न लगाकर, स्वयं दिन-रात हड्डीतोड़ श्रम करते हैं और फिर भी उन्हें अक्सर, ज़िन्दा रहने के लिए दूसरे के खेत में या अन्य कहीं मेहनत-मज़दूरी करनी पड़ती है। इन सबके बावजूद उनकी खेती लागत पूँजी के अभाव और कम रक़बे के कारण पिछड़ती चली जाती है और जल्दी ही ज़मीन का उनके हाथ से निकल जाना एकदम निश्चित लगने लगता है। इस नाते वे मुनाफ़ा कमाकर धनी बनने के भ्रम से जल्दी मुक्त हो जाते हैं। लेकिन चूँकि पूँजीवादीकरण की धीमी रफ़्तार हमारे देश में अब तक उन्हें धीमी गति से ही तबाह करती रही है और चूँकि हमारे यहाँ चुनावी नक़ली कम्युनिस्टों के साथ ही, मति के मारे क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट भी छोटे किसानों को उनकी वास्तविक स्थिति बताने के बजाय उनके बीच ज़मीन की भूख बढ़ाने वाला प्रचार एवं आन्दोलन कार्य ही करते रहे हैं, इसलिए आज स्थिति यह है कि छोटे किसानों का एक हिस्सा भी सर्वहारा वर्ग के साथ खड़ा होकर समाजवाद की लड़ाई लड़ने की बजाय लाभकारी मूल्य की लड़ाई में शामिलबाजा बन जा रहा है।

4. मँझोले किसानों का मामला थोड़ा अलग है। चूँकि यह वर्ग अपने खेत में थोड़े-बहुत मज़दूर लगाकर भी काम कराता है और उनके अतिरिक्त श्रम को हड़पकर मुनाफ़ा कमाता है इसलिए एक मालिक के रूप में तरक़्क़ी करके धनी हो जाने का भ्रम इसके भीतर अधिक होता है और अधिक दिनों तक बना रहता है। इन मँझोले किसानों का एक छोटा-सा ऊपरी हिस्सा तरक़्क़ी करके धनी किसानों की जमात में शामिल होता रहता है, इसलिए इससे प्रेरित होकर नीचे का बहुत बड़ा हिस्सा लाटरी खेलने जैसी मानसिकता में खेती से मुनाफ़ा कमाकर धनी हो जाने का सपना पाले हुए दाँव लगाता रहता है। इसकी स्थिति 'साँप-छछूँदर' वाली होती है। कम्युनिस्ट इनके भ्रम को तोड़कर इन्हें लगातार यह बताने की कोशिश करते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था में धनी बनने का वहम पाले हुए वे लगातार परेशान रहेंगे, कि मुनाफ़ा कमाने की होड़ में उन्हें बड़ी पूँजीवालों के हाथों तबाह होना ही है, कि यदि थोड़ा बहुत बेहतर दाम मिल भी जाये तो उन्नत खेती में धनी किसानों से मुक़ाबलतन पीछे छूटकर उन्हें कंगाल होना ही है, इसलिए उनके सामने बेहतरी का एकमात्र रास्ता यह है कि वे गाँव और शहर के मज़दूरों के साथ मिलकर समाजवाद के लिए लड़ें, मुनाफ़ाख़ोरी की व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ें, रोज़गार और जीने की बुनियादी सुविधाओं की गारण्टी हक़ के तौर पर हासिल करने के लिए लड़ें तथा खेती पर काम करने वाले लोगों के सामूहिक मालिकाने की व्यवस्था के लिए लड़ें। कम्युनिस्ट इन मँझोले मिल्की किसानों के बीच समाजवादी सहकारी, सामूहिक और राजकीय खेती के बारे में लगातार बताते हैं और उनकी ग़लतफ़हमियों को दूर करके भरोसा पैदा करने की कोशिश करते हैं। कुछ साथी कहते हैं कि यह नामुमकिन है, इससे मँझोले किसान और भड़क उठेंगे। इस पर हमारा कहना है कि पहले वे ऐसा प्रचार करके तो देखें! ऐसा प्रचार वास्तव में कभी किया ही नहीं गया, अतः पहले से ही डरना बेबुनियाद है। दूसरी बात यह कि ऐसा करते हुए हम इस सच्चाई को मानकर चलते हैं कि फ़ैसलाकुन घड़ी में भी मँझोले

मालिकों का एक हिस्सा ही मज़दूर क्रान्ति के साथ आयेगा और वह भी ढुलमुल रहेगा। एक दूसरा हिस्सा फिर भी शासक जमातों का ही पक्ष लेगा। लेकिन साथ ही, तीसरी बात यह भी है कि आज पूँजीवादीकरण की तेज़ रफ़्तार दो छोरों के बीच इतना तेज़-तीखा बँटवारा कर रही है कि मँझोले किसानों की आबादी आने वाले दिनों में और अधिक सिकुड़ जायेगी और गाँवों-शहरों की सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी ही मुक़ाबलतन अधिक होगी (यह आज ही पचास फ़ीसदी के आसपास पहुँच रही है)। वर्ग-संघर्ष में मज़दूर वर्ग के हितों की चिन्ता के बग़ैर इस ढुलमुल दोस्त (मँझोले किसान) को ही लेकर ज़्यादातर कम्युनिस्ट परेशान और पस्त हैं तो भला क्या ताज्जुब की बात है! वे तो धनी किसानों तक के दुखों पर बुक्का फाड़कर रो रहे हैं। 'बेगानी शादी में अब्दुल्ला दीवाना' तो सुना था पर दुश्मन के ग़म में दुबले होने की यह दास्तान तो एक अजूबा ही है!

5. सामाजिक-आर्थिक ढाँचे की गति एवं दिशा को वैज्ञानिक-ऐतिहासिक पड़ताल की दृष्टि से देखें तो पूँजीवाद के अन्तर्गत बड़ी पूँजी के हाथों छोटी पूँजी की तबाही, बड़े मालिकों के हाथों छोटे मालिकों की तबाही, उद्योगों की बनिस्पत खेती का पिछड़ते जाना, खेती में पूँजीवादी संकट उद्योगों से अधिक होना, वर्गों का तीव्र ध्रुवीकरण और मँझोले किसानों के बड़े हिस्से का तबाह होकर सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा क़तारों में शामिल होना अनिवार्य है। जो होना ही है, उसके बारे में भ्रम पैदा करना हमारा काम नहीं है। इसे टालकर पूँजीवाद की उमर लम्बी करना भी हमारा काम नहीं। और वस्तुपरक नज़रिये से यदि देखें तो यह इतिहास को आगे ले जाने वाली ही एक चीज़ है। उद्योग हो या खेती, बड़े पैमाने का पूँजीवादी उत्पादन भारी मेहनतकश आबादी के संकेन्द्रित, एकजुट, लामबन्द और संगठित होने के अनुकूल हालात तैयार करता है, बीच की ढुलमुल आबादी को सिकोड़कर छोटा कर देता है और उसे भी फ़ैसलाकुन (इस पार या उस पार) बनाता है, और इस तरह समाजवादी क्रान्ति के लिए अनुकूल माहौल बनाता है। कोई कम्युनिस्ट भला क्यों चाहेगा कि गन्ना, तम्बाकू, आलू-प्याज़ या अनाज का लाभकारी मूल्य माँगने वाले या उत्पादन-लागत घटाकर खेती को लाभदायी बनाने की माँग करने वाले धनी किसानों के पहलू में या पिछवाड़े छोटे किसान थोड़ी देर के लिए भी खड़े हों और इस तरह उनकी ताक़त बढ़ाने, इस व्यवस्था की उम्र और अपने भरम की उम्र लम्बी करने का काम करें! तर्क यह भी दिया जा सकता है कि यह मालिक वर्गों के बीच का अन्तरविरोध बढ़ाने वाला रणकौशल (टैक्टिक) है। लेकिन यह ग़लत है। व्यवस्था का अन्तरविरोध या संकट बढ़ाने के बजाय यह बीच में खड़े एक मिल्की वर्ग (मँझोले किसान) को विरोधी पाले में धकेलने का और एक मेहनतकश जमात (ग़रीब किसान) की वर्ग-चेतना को बढ़ाने के बजाय भोथरा बनाकर सर्वहारा वर्ग की लड़ाई को कमज़ोर बनाने का काम करता है तथा जनता के ही एक हिस्से को उसके दूसरे हिस्से के ख़िलाफ़ (और दुश्मन के साथ) खड़ा कर देता है। लाभकारी मूल्य की माँग हो या लागत घटाने की माँग – इससे यदि छोटी किसानी को बचाये रखने का भ्रम पलता-बढ़ता है तो यह क्रान्ति-विरोधी है। नरोदवादी यही भ्रम पालते-पोसते थे जिसके ख़िलाफ़ **लेनिन** ने काफ़ी कुछ लिखा है। कहने का मतलब यह भी नहीं कि हम पूँजी के हाथों छोटे किसानों की तबाही का डागा-बाजा बजाकर स्वागत करते

हैं क्योंकि यह क्रान्ति के लिए अनुकूल है। यह पूँजीवाद का काम है, पूँजीवाद के हाथों छोटे मालिकों की तबाही और वर्ग-ध्रुवीकरण होना ही है। यह हमारे चाहने न चाहने की, हमारी ख़ुशी या ग़म की बात ही नहीं है। हमारा काम है जनता को यह बताना कि पूँजीवाद में यही होगा, अतः वह किसी मुग़ालते में न रहे। जल्दी से जल्दी ख़ामख़याली से निजात पाना ही उसके हक़ में है। और रास्ता एक ही है, वह है समाजवाद का रास्ता। छोटे किसानों की तबाही के बारे में लिखते हुए उसके कारणों को बताना, पूँजीवाद को 'एक्सपोज़' करना और उसके ख़िलाफ़ नफ़रत की आग भड़काना हमारा असली काम होना चाहिए।

लाभकारी मूल्य की मृग मरीचिका : एक पोस्टमार्टम

6. अब ज़रा सीधी-सादी भाषा में लाभकारी मूल्य और लागत मूल्य वाले मसले की भी जाँच-पड़ताल कर ली जाये। पहले लाभकारी मूल्य को लें। मान लीजिये कि गन्ना-किसानों को चीनी मिल-मालिकों से गन्ने की बेहतर क़ीमत मिल ही जाती है; तो पहली नज़र में इतना तो एक आम आदमी भी समझ जाता है कि चीनी की बढ़ी क़ीमत के रूप में इसका बोझ बाज़ार से चीनी ख़रीदकर खाने वाली जनता पर पड़ता है। मिल-मालिकों, व्यापारियों और सरकार को बस एक बहानेभर की देर होती है और वे वास्तविक भरपाई से बहुत अधिक खसोट लेते हैं। पर बात इससे कहीं बहुत अधिक है। अपने उत्पाद की बेहतर क़ीमत मिलने से धनी किसान के पास जो रक़म आती है, उसका धेला भी उसके खेत में काम करने वाले मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ाने पर वह मर्ज़ी से नहीं ख़र्च करता। इसका इस्तेमाल वह और अधिक मुनाफ़ा कमाने के लिए पूँजी के रूप में करेगा। इस पैसे से या तो वह कुछ और तबाहहाल छोटे किसानों की ज़मीन ख़रीदकर उन्हें सड़क पर धकेलेगा या फिर उन्नत बीज आदि के साथ और अधिक उन्नत मशीनें इस्तेमाल करके पूँजी-सघन खेती करेगा तथा कम मज़दूरों से काम लेकर उनके और अधिक अतिरिक्त श्रम का दोहन करेगा तथा शेष मज़दूरों को बेकार कर देगा। इससे बाज़ार में श्रम-शक्ति की क़ीमत गिरेगी, मज़दूरों की मोल-तोल की क्षमता और घट जायेगी और कठिन से कठिन हालात में कम से कम मज़दूरी देकर उनसे काम लेना आसानतर हो जायेगा।

इसके अतिरिक्त बेहतर मूल्य से हासिल रक़म को आटा चक्की, राइस मिल, आरा मशीन, डेयरी, पोल्ट्री आदि में लगाकर या शेयर ख़रीदकर धनी किसान अपनी आर्थिक स्थिति को अधिक मज़बूत बना लेगा। उधर छोटे किसान के साथ बस इतना ही हो सकेगा कि वह रोज़मर्रा की छोटी-मोटी ज़रूरतों के लिए थोड़ी अधिक नक़दी पा जायेगा, महाजन या बैंक की क़र्ज़ की कुछेक अधिक बकाया क़िस्तें चुका देगा, वग़ैरह-वग़ैरह। अपनी छोटी खेती के चलते बेहतर क़ीमत भी उसे इतनी अधिक रक़म नहीं दे सकती कि वह उन्नत मशीनें ले ले या किसी भी तरह से खेती उन्नत कर ले या कुछ और ज़मीन ले ले। उसे अपनी भारी आबादी से धनी किसान को आन्दोलन में ताक़त देने के बाद, बस थोड़ी-सी राहत मिल पाती है और साथ ही उसकी ख़ामख़याली की उम्र थोड़ी और बढ़ जाती है। इस तरह वह मज़दूर वर्ग और देश की आम आबादी के ख़िलाफ़ मोहरे के रूप में बहुत सस्ते में इस्तेमाल हो जाता

है। उधर मिल-मालिक गन्ने का जो अधिक मूल्य देता है तो अपना मुनाफ़ा घटाकर नहीं देता। पूँजीवादी उत्पादन का तर्क इसकी इजाज़त नहीं देता। कोई भी पूँजीपति ऐसा नहीं करता। ऐसा करके वह दूसरे पूँजीपतियों से गलाकाटू प्रतियोगिता में टिका भी नहीं रह सकता। ऐसी सूरत में वह लाज़िमी तौर पर अपने मज़दूरों का शोषण बढ़ा देता है। यदि वह बड़ा पूँजीपति हुआ तो अपने अन्य उद्योगों से उगाही गयी पूँजी के सहारे (या वित्तीय संस्थानों के सहारे) उन्नत मशीनें लगाकर मज़दूरों के एक हिस्से की छँटनी करके कम मज़दूरों को और अधिक निचोड़ेगा। या फिर चीनी मिल मज़दूर आन्दोलन की कमज़ोर स्थिति का फ़ायदा उठाकर वह ज़्यादा से ज़्यादा मज़दूरों से दिहाड़ी पर, ठेके पर अथवा कैजुअल एवं टेम्परेरी के रूप में काम लेकर, पहले से मौजूद रही-सही सुविधाओं (दवा-इलाज, कैण्टीन, वर्दी आदि) में कटौती करके, वेतन बढ़ोत्तरी-बोनस आदि को रोककर और काम के घण्टे बढ़ाकर गन्ने की बढ़ी हुई क़ीमत देने से हुए 'नुक़सान' से कई गुना अधिक की भरपाई करने की कोशिश करेगा। इसके साथ ही वह सरकार से तरह-तरह की सब्सिडी और प्रत्यक्ष करों में रियायत के लिए दबाव बनायेगा। सब्सिडी की वह रक़म जनता चुकायेगी और पूँजीपतियों को दी गयी प्रत्यक्ष कर की हर रियायत व्यापक आबादी से लिये जाने वाले परोक्ष कर में बढ़ोत्तरी से पूरी की जायेगी। एक ओर चीनी पर से सब्सिडी हटाकर उसे पूरी तरह से खुले बाज़ार में बेचकर जनता की कमर दोहरी की जायेगी और दूसरी ओर कारख़ाना मालिक को तरह-तरह की रियायतें व सब्सिडी दे दी जायेगी। इसके अतिरिक्त चीनी मिल-मालिक लाभकारी मूल्य की माँग के आन्दोलन की आड़ लेकर कारख़ाना बन्द करके अपनी पूँजी खुले-छिपे निकालकर (मशीनें, ज़मीन आदि बेचकर) अन्य अधिक लाभकारी उद्योग में निवेश कर सकता है और 'बेरोज़गारों की रिज़र्व आर्मी' में कुछ और बढ़ोत्तरी करके बाज़ार में श्रम-शक्ति की क़ीमत और अधिक गिराने का काम कर सकता है (यह हो भी रहा है)। यह भी हो सकता है कि लाभकारी मूल्य के आन्दोलन से गोदामों में पहले से ही भरी चीनी के चलते बाज़ार में क़ीमतें गिरने से रोकने के लिए मिल-मालिकों को उत्पादन कुछ समय तक रोकने का एक बहाना भी मिल जाये (इस बार यह हुआ भी है)। लुब्बेलुआब यह कि किसी भी रूप में लाभकारी मूल्य की माँग धनी किसान और मिल-मालिकों के बीच का मुद्दा है और इस माँग के पूरा होने पर धनी किसान को तो लाभ होगा ही, मिल-मालिक भी घाटे में नहीं होगा और हर हाल में मार पड़नी है मज़दूरों पर और आम जनता पर, तथा छोटे किसानों को मिलनी है ओस चाटने जितनी राहत और उनके वहम को मिलनी है थोड़ी और उम्र! अतः साथी एस. प्रताप का यह सुझाव एकदम ग़लत है कि छोटे किसानों को "फ़सल का वाजिब मूल्य पाने के लिए भी मिलों पर लगातार दबाव बनाये रखने की रणनीति अख़्तियार करनी चाहिए।"

क्या लागत-मूल्य घटाने की माँग छोटे-मँझोले किसानों के हक़ में है?

7. अब लागत मूल्य घटाने के सवाल को लिया जाये। एस. प्रताप का यह सुझाव भी, कि "...किसान आन्दोलन की मुख्य माँग लागत मूल्य कम करने पर ही केन्द्रित होनी चाहिए",

हमें एक ग़लत समझ से उपजा हुआ लगता है। दरअसल, यह माँग भी अपने वर्ग-सार की दृष्टि से धनी किसानों की ही माँग है और यह भी छोटे किसानों को परोक्षतः मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ दुश्मन के पक्ष में ले जाकर खड़ा कर देने वाली माँग है। ज़्यादातर लोगों को ऊपरी तौर पर यह लग सकता है कि चूँकि गन्ने का मूल्य बढ़ने पर चीनी भी महँगी हो जायेगी अतः व्यापक आबादी के हित के ख़िलाफ़ होने से गन्ने के लाभकारी मूल्य की माँग ग़लत है और चूँकि लागत मूल्य कम करने का मतलब होगा बिजली, उर्वरक, कीटनाशक, बीज, मशीनें आदि-आदि की क़ीमत कम करना और ये चीज़ें बड़े कारख़ानेदार पैदा करते हैं, अतः यह सही नारा है क्योंकि यह जनता के मुख्य दुश्मन के ख़िलाफ़ धनी किसानों की ताक़त को भी ला खड़ा कर देगा और यदि वे नहीं आयेंगे तो धनी किसानों से अलग छोटे-मँझोले किसानों (यानी मज़दूर के मित्र वर्गों) का एक स्वतन्त्र आन्दोलन खड़ा हो जायेगा। लेकिन यह सोच एकदम ग़लत है। यह बहुपरती नासमझी का द्योतक है। किसान खेती में जो पूँजी लगाता है, उसका एक हिस्सा ट्रैक्टर आदि कृषि उपकरणों की ख़रीद व रखरखाव, डीजल, बिजली, पानी, खाद, बीज, कीटनाशक आदि (अचल पूँजी) पर ख़र्च होता है और दूसरा हिस्सा श्रम-शक्ति (चल पूँजी) पर ख़र्च होता है। अचल पूँजी वाला हिस्सा (तत्काल या क़िस्तों में) उत्पादित माल में संक्रमित हो जाता है। जो श्रम-शक्ति पर ख़र्च होने वाली चल पूँजी होती है, उसी का मूल्य श्रम की प्रक्रिया में बढ़ता है और नतीजतन अतिरिक्त मूल्य का सृजन होता है। यानी यदि अचल पूँजी घटती है और उसी अनुपात में फ़सल की क़ीमत नहीं घटती तो यह सीधे-सीधे कृषि उत्पादों के उपभोक्ताओं के साथ धोखाधड़ी होगी। यानी लागत मूल्य घटाने का तर्क सिर्फ़ यहीं तक जा सकता है कि किसान श्रम-शक्ति पर होने वाले ख़र्च को घटाये, यानी अपने खेतों पर काम करने वाले उजरती मज़दूरों को और अधिक निचोड़े। (इस भ्रान्ति के पीछे दरअसल भोंड़े अर्थशास्त्रियों वाली यह सोच काम करती है माल का मूल्य इसके उत्पादन में लगी लागत से, यानी उत्पादन के साधनों के मूल्य और मज़दूरी से तय होता है, जबकि मार्क्सवादी अर्थशास्त्र यह सिद्ध कर चुका है कि मूर्त श्रम मालों के उपयोग मूल्य का और अमूर्त श्रम उनके विनिमय मूल्य का निर्माण करता है, यानी श्रम ही मूल्य का एकमात्र स्रोत है। थोड़ी देर के लिए यह मान लें कि उद्योगपति किसानों के किसी आन्दोलन की माँग मानकर ट्रैक्टर, खाद, कीटनाशक, डीज़ल, बिजली आदि की क़ीमत कम कर दें और किसी तरह से धोखाधड़ी करके यह घटोत्तरी कृषि-उत्पादों के मूल्य में संक्रमित न होने दी जाये। तो ऐसी सूरत में अर्थशास्त्र का सामान्य विद्यार्थी भी यह जानता है कि उत्पादों के सस्ते होने से पूँजीपति का मुनाफ़ा कम नहीं होता, बल्कि इसकी क़ीमत भी कारख़ाने में काम करने वाले मज़दूरों को ही चुकानी पड़ती है। पूँजीपति उन्नत तकनोलॉजी लाकर मज़दूरों की कम संख्या से उतने ही समय में ज़्यादा माल उत्पादित करता है और इस प्रक्रिया में उसके द्वारा कमाये जाने वाले सापेक्षिक अतिरिक्त मूल्य में बढ़ोत्तरी के साथ ही मज़दूरों की एक भारी आबादी सड़कों पर धकेल दी जाती है। पूँजीपति द्वारा बनायी जाने वाली चीज़ें क्यों बाज़ार में सस्ती हो जाती हैं और उसके द्वारा कमाया जाने वाला मुनाफ़ा भी बढ़ जाता है, इस प्रक्रिया को नहीं समझने से ही किसी के दिमाग़ में कृषि के लागत मूल्य को घटाने वाला उपरोक्त तर्क

आ सकता है! और सबसे बड़ी बात यह कि यदि ऐसा हो भी जाये और इससे धनी किसानों का मुनाफ़ा बढ़ भी जाये, तो छोटे किसानों को इससे भला क्या हासिल होगा? उनकी अन्ततोगत्वा तबाही का निश्चित भविष्य थोड़ा और आगे खिसक जायेगा, उन्हें थोड़ी राहत मिल जायेगी और उनके भ्रम की उम्र थोड़ी और बढ़ जायेगी। तब उन्हें यह समझा पाना थोड़ा और दुश्वार हो जायेगा कि पूँजीवादी खेती पशुवत जीवन से अधिक उन्हें कुछ और नहीं दे सकती और उनके सामने एकमात्र रास्ता है – मज़दूरों के पक्ष में खड़ा होकर **"समूची आज़ादी और समूची ज़मीन"** (यानी काम करने वालों के हाथों में सत्ता और सभी कारख़ानों की ही तरह सारी ज़मीन पर भी काम करने वालों का सामूहिक मालिकाना) के लिए संघर्ष करना। साथी एस. प्रताप ने छोटे किसानों को "धनी किसानों के दायरे से स्वतन्त्र अपनी नयी राह खोजने की दिशा में" आगे बढ़ने के प्रति जो विश्वास जताया है, वह नयी राह भी वस्तुतः एक पूँजीवादी राह ही है और इस राह की सोच छोटी किसानी अर्थव्यवस्था को बचाये रखने की मासूम मानवतावादी चिन्ता से जन्मी एक नरोदवादी क़िस्म की सोच ही है।

8. इसके अतिरिक्त साथी एस. प्रताप का पूरा लेख एक वर्गोपरि नज़रिये की झलक देता है। धनी किसानों की मुनाफ़ाख़ोरी को इंगित करते हुए भी लेख से उनके संकट के प्रति हमदर्दी की बू आती है। चीनी मिल-मालिकों की लूट से धनी किसान तबाह नहीं है बल्कि कुछ अधिशेष में अपना हिस्सा बढ़ाने के लिए लड़ रहा है (और यदि एक हद तक तबाह है भी तो सर्वहारा के हरावल की चिन्ता का यह विषय नहीं)। छोटे-मँझोले गन्ना किसान यदि तबाह हो रहे हैं तो मिल-मालिकों के अतिरिक्त धनी किसानों के हाथों भी तबाह हो रहे हैं। धनी किसानों के अलावा धनी हो जाने का वहम पाले हुए मँझोले किसान भी हमारी हमदर्दी के नहीं बल्कि आँख खोल देने वाली दो-टूक आलोचना के ही हक़दार हैं। बीच में खड़े और लगातार ढुलमुल इस वर्ग के एक हिस्से को भी खरी सच्चाई बताकर ही सर्वहारा वर्ग अपने पक्ष में ला सकता है। हमारी अविस्थिति हर प्रश्न पर, हर हाल में मज़दूर वर्ग और समाजवाद के पक्ष में खड़ा होकर सोचने की ही होनी चाहिए।

(बिगुल, जनवरी 2003)

किसानी के सवाल पर कम्युनिस्ट दृष्टिकोण पर बहस : एक पत्र और उसका सम्पादकीय उत्तर

छोटे-मँझोले किसानों को कम्युनिस्ट किन माँगों पर साथ लेंगे?

पूँजीवादी खेती के संकट और छोटे-मँझोले किसानों के सवाल पर 'बिगुल' के जनवरी अंक में सम्पादकों के दृष्टिकोण के बारे में पढ़ा।

'बिगुल' का सम्पादक-मण्डल और कामरेड नीरज और कामरेड सुखदेव जैसे लोग मुझे मार्क्सवाद की किताबी समझ से ग्रस्त प्रतीत होते हैं। आपकी लाइन का तो कुल नतीजा यही निकलेगा कि छोटे मिल्की किसान भी क्रान्ति से दूर भाग जायेंगे। यह बात भी मुश्किल से ही किसी के गले के नीचे उतरेगी कि क़र्ज़ के बोझ से लदे और अपनी फ़सल की लागत तक न निकाल पाने के चलते तबाही की दहलीज़ पर खड़े बड़े किसान मेहनतकशों के दुश्मन और पूँजीपतियों के दोस्त हैं। बड़े किसानों को छोड़ भी दें, तो यदि आप छोटे और मँझोले किसानों को भी सिर्फ़ यही बताते रहेंगे कि पूँजीवाद के अन्तर्गत उनकी तबाही लाज़िमी है और इसलिए वे समाजवाद के हिमायती बन जायें, तो क्या वे आपके साथ आ जायेंगे? ऐसा तो कोई शेखचिल्ली ही सोच सकता है। यह तो बताइये जनाब कि समाजवाद के प्रचार के 'स्ट्रैटेजिक' कार्यक्रम के अतिरिक्त छोटे और मँझोले किसानों के लिए आप आम 'टैक्टिकल' नारे क्या देंगे और उसे सीधे समझ आने वाली और उसके वर्ग-हित के अनुकूल लगने वाली प्रत्यक्ष, ठोस माँगें क्या होंगी। गाँवों में कम्युनिस्ट, छोटे-मँझोले मिल्की किसानों का आन्दोलन किन माँगों पर संगठित करेंगे? क्या इस मुद्दे पर आप अपना नज़रिया साफ़ करेंगे?

—एक कार्यकर्ता, रुद्रपुर
(ऊधमसिंह नगर)

(बिगुल, फ़रवरी 2003)

छोटे-मँझोले किसान किन माँगों पर लड़ेंगे? मज़दूर आन्दोलन के साथ वे कैसे आयेंगे? उनकी ठोस, तात्कालिक माँगें क्या होंगी?

बिगुल सम्पादक-मण्डल

किसी साथी ने रुद्रपुर से पत्र भेजकर यह सवाल उठाया है कि समाजवाद के प्रचार एवं शिक्षा के अतिरिक्त गाँवों के छोटे और मँझोले किसानों के आन्दोलन संगठित करने के लिए ठोस कार्यक्रम और नारे क्या होंगे?

यह एक निहायत ज़रूरी सवाल है। यह स्पष्ट कर दें कि 'बिगुल' के जनवरी अंक में किसानी के सवाल पर सही कम्युनिस्ट दृष्टिकोण के प्रश्न पर विचार करते हुए हमने मुख्यतः लागत मूल्य कम करने की माँग और लाभकारी मूल्य की माँग की चीरफाड़ करने का काम किया था, क्योंकि मुख्यतः यही वह भारतीय नरोदवादी छुतही बीमारी है जो पूरे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन में फैली हुई है। इस नरोदवादी बीमारी का एक और लक्षण है गाँव की भूमिहीन सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी में (पट्टे बाँटने जैसी माँगें उठाकर) ज़मीन की भूख जगाना और उन्हें मिल्की मानसिकता देने की उलटी दिशा में ले जाना। इसके बारे में भी मार्क्सवादी दृष्टिकोण एकदम साफ़ है। इन्हीं नरोदवादी भटकावों को स्पष्ट करते हुए हमने बताया था कि सर्वहारा वर्ग के हरावल दस्ते गाँव के छोटे-मँझोले किसानों को लगातार यह बताते हैं कि उनकी पूँजीवादी तबाही को रोकने का एकमात्र रास्ता समाजवाद ही हो सकता है। वे बताते हैं कि पूँजी की ताक़त से बड़े मालिक छोटे मालिकों को तबाह करेंगे ही। इस प्रक्रिया को थोड़ा टालकर लम्बा करना दुखदायी ही होगा। वे उन्हें यह भी बताते हैं कि विभिन्न रूपों में सरकारी रियायतें हासिल करके भी वे अपनी क्रमिक तबाही को रोक नहीं सकते और पूँजीवाद के अन्तर्गत यदि वे सहकारी खेती भी संगठित करें तो उसका लाभ सिर्फ़ बड़े भागीदारों को ही मिलेगा तथा छोटे भागीदारों की तबाही लाज़िमी है। अपनी-अपनी वर्ग-स्थिति के अनुरूप छोटे मालिक किसान इस बात को जल्दी समझते हैं, जबकि मँझोले मालिक किसान देर से समझते हैं और उनका एक हिस्सा ही समझता है और समझने वालों का भी एक बड़ा हिस्सा ढुलमुल बना रहता है। कम्युनिस्ट गाँव के ग़रीबों को लगातार यह बताते हैं कि ज़मीन के एक छोटे से टुकड़े का मालिक बनकर वे शोषण-उत्पीड़न भरे दुर्दिन से मुक्त नहीं हो

सकते। उन्हें फिर भी ज़िन्दगी की न्यूनतम ज़रूरतों के लिए उजरती ग़ुलामी करनी ही पड़ेगी। इसलिए उन्हें मज़दूरी के सवाल पर और मज़दूरों के तमाम जनवादी एवं नागरिक अधिकारों के सवाल पर लड़ते हुए, शहरी मज़दूर वर्ग के साथ एका मज़बूत करना चाहिए और समाजवाद की लड़ाई में पूरी जनता की अगुवाई करनी चाहिए।

चूँकि यह कम्युनिस्ट प्रचार एवं शिक्षा ज़िन्दगी की सच्चाइयों से मेल खाती है, चूँकि पूँजीपतियों और बड़े किसानों के हाथों तबाही और दिन-रात हाड़ गलाने पर भी नतीजा वही 'ढाक के तीन पात' की स्थिति को छोटे-मँझोले मालिक किसान महसूस करते हैं, इसलिए जब कम्युनिस्ट कार्यकर्ता इस स्थिति का, (और इसके आगे की स्थिति का भी) बुनियादी तर्क उन्हें बताते हैं तो बात उन्हें धीरे-धीरे जँचने लगती है।

प्रचार और शिक्षा की इस कार्रवाई को कम्युनिस्ट उपदेशकों-अध्यापकों के अन्दाज़ में नहीं चलाते। रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के मुद्दों पर रुटीनी संघर्षों और आन्दोलनात्मक कार्रवाइयों के दौरान इसे अंजाम दिया जाता है। गाँवों की आम आबादी के सामने नागरिक एवं जनवादी अधिकारों के अपहरण, नौकरशाही-नेताशाही के भ्रष्टाचार, पुलिसिया दमन आदि से जुड़ी समस्याएँ शहर की आम आबादी के मुक़ाबले बहुत अधिक होती हैं। बुनियादी सुविधाओं (शिक्षा-स्वास्थ्य सुविधाएँ, पेयजल की सुविधा आदि-आदि के अनगिनत मुद्दे होते हैं, जिन पर संगठित होने के अभाव में गाँव की आम आबादी लड़ नहीं पाती। इन अगणित मुद्दों को गिनाना न यहाँ सम्भव है, न ही ज़रूरी। इन तमाम मुद्दों पर, एक कम्युनिस्ट संगठनकर्ता गाँव के मज़दूरों से लेकर छोटे-मँझोले मिल्कियों तक के रोज़मर्रा के संघर्ष संगठित करता है, उनकी वर्गीय एकजुटता को मज़बूत बनाता है और स्वयं उनके साथ गहरे विश्वास का रिश्ता बनाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रक्रिया में एक कुशल कम्युनिस्ट संगठनकर्ता सुधार के बहुतेरे काम भी हाथ में लेता है। वह मज़दूर और ग़रीब-मध्यम किसान घरों के नौजवानों को साथ लेकर युवा संगठन बनाता है, खेलकूद-पुस्तकालय-वाचनालय-सांस्कृतिक टोली आदि संगठित करता है और इस प्रक्रिया में जनता के विभिन्न वर्गों की वर्गीय एकजुटता के आधार को परोक्ष रूप से पुख़्ता बनाने के साथ ही युवाओं के बीच से सीधे क्रान्तिकारी भर्ती के काम को भी आगे बढ़ाता है (और इस बात पर भी विशेष ध्यान देता है कि इन्हीं ग़रीब युवाओं के बीच से एक बड़ा हिस्सा रोज़ी-रोटी के लिए गाँव छोड़ने के बाद, शहरी सर्वहाराओं की जमात में शामिल होता रहता है)।

इतनी पृष्ठभूमि स्पष्ट करने के बाद हम अपने मूल प्रश्न पर वापस लौट सकते हैं। आख़िरकार वे कौन-सी ठोस माँगें होंगी, जिन पर गाँव के छोटे-मँझोले मालिक किसानों को संगठित किया जायेगा? उन्हें बड़े मालिक किसानों से अलग करके मेहनतकशों के पक्ष में खड़ा करने के लिए, समाजवादी प्रचार एवं शिक्षा के अतिरिक्त, आन्दोलन के ठोस मुद्दे क्या होंगे?

सबसे पहले, इस बात पर स्पष्ट हो लेना ज़रूरी है कि भूमि-सम्बन्धों में पूँजीवादी बदलाव के बाद (चाहे वह जिस रास्ते से भी हो और जिस रूप में भी हो), गाँव की आम आबादी और शहर की आम आबादी की बुनियादी माँगों के बीच, ग्रामीण मध्य वर्ग और शहरी मध्य वर्ग की बुनियादी माँगों के बीच, तथा ग्रामीण और शहरी मज़दूरों की बुनियादी

माँगों के बीच, काफ़ी हद तक की एकरूपता आ जाती है और व्यापक आबादी के व्यापक आन्दोलनों के लिए ज़्यादा अनुकूल वस्तुगत आधार तैयार हो जाता है। साथ ही, गाँव की आम जनता का शोषण-उत्पीड़न शहरों के मुक़ाबले और अधिक बढ़ जाता है और उसके राजनीतिक अधिकारों (नागरिक एवं जनवादी अधिकारों) का अपहरण एवं दमन भी ज़्यादा बड़े पैमाने पर होता है, जिन्हें मुद्दा बनाकर आन्दोलन संगठित करना कम्युनिस्ट संगठनकर्ताओं की एक अहम ज़िम्मेदारी होती है।

1. कम्युनिस्ट संगठनकर्ता गाँव के छोटे और मँझोले किसानों को इस माँग पर लामबन्द करता है कि सभी क़िस्म के परोक्ष करों को पूरी तरह से मंसूख कर दिया जाना चाहिए। बहुत कम आम लोग इस सच्चाई से परिचित हैं कि कारख़ानेदारों, व्यापारियों और चल-अचल सम्पत्ति वाले धनी लोगों पर आय कर, सम्पत्ति कर, गृह कर, व्यापार कर, उत्पादन कर आदि के रूप में जो प्रत्यक्ष कर लगते हैं, उन्हें, तथा टोल टैक्स, चुँगी, आबकारी तथा आयात-निर्यात पर लगने वाले प्रत्यक्ष करों को मिलाकर, सरकारी ख़ज़ाने में जो धन आता है, उससे कई गुना अधिक रक़म सरकार उपभोग के सामानों पर कर लगाकर आम लोगों से वसूल लेती है। नागरिक जो भी सामान ख़रीदते हैं उनकी क़ीमत में ये सरकारी कर शामिल होते हैं। लुटेरों के लूटतन्त्र को सुरक्षित रखने के लिए जो राज्यसत्ता क़ायम है, उसका ख़र्च भी मुख्यतः वही उठाते हैं जिन्हें लूटा और निचोड़ा जाता है। इसलिए सभी परोक्ष करों की मंसूखी एक ऐसी माँग है जो शहर और गाँव की मज़दूर आबादी के साथ शहरी मध्य वर्ग और गाँव के छोटे-मँझोले किसानों एवं अन्य ग्रामीण मध्यवर्गीय तबक़ों को जोड़ने का काम करती है।

2. उपरोक्त माँग के साथ ही गाँव के छोटे-मँझोले किसानों को कृषि पर तथा डेयरी-पोल्ट्री-फ़िशरी व तमाम कृषि आधारित उद्यमों पर भी आय कर लगाने की माँग अवश्य ही करनी चाहिए और इसकी ज़द में उन सभी बड़े किसानों को शामिल करने की माँग उठानी चाहिए जो मुनाफ़े के लिए पैदा करते हैं, तथा उन सभी ग्रामीण उद्योगों को शामिल करने की माँग उठानी चाहिए, जो मज़दूरों से काम कराते हैं। उन्हें इन सभी धनिक ग्रामीण वर्गों पर सम्पत्ति कर भी लगाने की माँग करनी चाहिए। उन्हें उन सभी तिकड़मों के विरुद्ध आवाज़ उठानी चाहिए, जिनका सहारा लेकर, सरकार और नौकरशाही की मिलीभगत से, धनिक वर्ग कर अदा करने से बच निकलते हैं।

3. ग़रीब और मँझोले किसानों की माँग यह होनी चाहिए कि ज़मीन सहित उत्पादन के साधनों के स्वामित्व की एक सुनिश्चित मात्रा को पैमाना बनाकर, धनी किसानों और अन्य ग्रामीण पूँजीपतियों से बिजली और पानी की क़ीमत वसूली जानी चाहिए, जबकि उन सभी किसानों को, जो मुनाफ़े के लिए नहीं पैदा करते, सापेक्षतः रियायती दर पर बिजली-पानी आदि मिलनी चाहिए। साथ ही, उन्हें यह माँग करनी चाहिए कि घरों में उपयोग के लिए गाँव की ग़रीब आबादी को निःशुल्क और मध्यम तबक़े को अत्यधिक रियायती दरों पर बिजली मिलनी चाहिए, जबकि मुनाफ़ाख़ोर तबक़ों से उसकी वही क़ीमत वसूली जानी चाहिए, जो शहरी उपभोक्ताओं से वसूली जाती है। शहरों में भी यह एक महत्त्वपूर्ण माँग बनती है कि आम मध्यवर्गीय नौकरीपेशा लोगों को निःशुल्क बिजली-पानी मिलना चाहिए, जबकि (आय और

बिजली के ख़र्च को पैमाना बनाकर) धनी तबक़ों से ऊँची दरों पर इसकी क़ीमत ली जानी चाहिए, तथा कारख़ानों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों से इतनी ऊँची दरों पर बिजली की क़ीमत ली जानी चाहिए कि बिजली पैदा करने का मुख्य ख़र्च उसी से निकले (आज इसके ठीक उलटा होता है, उद्योगपतियों को अत्यन्त सस्ती दरों पर बिजली दी जाती है और उसकी भी क़ीमत अदा करने के बजाय वे अरबों रुपये डकार जाते हैं)। गाँव के छोटे-मँझोले किसानों को पूरे देश की जनता की इस आम माँग के इर्दगिर्द संगठित किया जाना चाहिए कि जनता को बिजली-पानी जैसी बुनियादी सुविधाएँ निःशुल्क उपलब्ध कराना सरकार की ज़िम्मेदारी है और इसे उसको हर क़ीमत पर निभाना चाहिए।

4. गाँव के छोटे और मँझोले किसानों को इस माँग पर ग़रीब मेहनतकशों के साथ एकजुट किया जाना चाहिए कि आम आबादी घर बनाने-मरम्मत कराने, हारी-बीमारी जैसे घरेलू संकटों-ज़रूरतों के लिए बैंक से जो क़र्ज़ ले, उस पर ब्याज की दर एकदम कम होनी चाहिए और सबसे ग़रीब आबादी को ब्याज-मुक्त क़र्ज़ मिलना चाहिए, जबकि उत्पादन के साधनों की ख़रीद के लिए धनी किसानों द्वारा लिये जाने वाले क़र्ज़ों पर ब्याज दर अधिक होनी चाहिए।

5. गाँव के छोटे और मँझोले किसानों की सर्वहारा आबादी से एकता क़ायम करने के लिए कम्युनिस्टों द्वारा उन्हें इस माँग पर संगठित किया जाना चाहिए कि सार्वजनिक वितरण-प्रणाली द्वारा (आय-वर्ग के सुनिश्चित पैमाने पर धनी-ग़रीब तय करके) रियायती दरों पर (और अकाल के समय में मुफ़्त) राशन, चीनी, किरासन तेल आदि बुनियादी ज़रूरत की चीज़ें ग़रीब और मध्यम तबक़े को पूरे देश के पैमाने पर उपलब्ध कराना सरकार की ज़िम्मेदारी है। इसे एक बुनियादी अधिकार बनाकर पूँजीवादी राज्यसत्ता के विरुद्ध जन-लामबन्दी की जानी चाहिए, सार्वजनिक वितरण-प्रणाली को तोड़ने की मौजूदा सरकारी साज़िशों को जनता के बुनियादी हक़ छीने जाने का मुद्दा बनाकर, संघर्ष के माध्यम से किसानों को भी व्यापक ग़रीब आबादी के साथ एकजुट किया जाना चाहिए।

6. सभी बच्चों के लिए मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा की माँग समूची जनता की और विशेष तौर पर ग़रीबों की एक ऐसी माँग है जिस पर छोटे ही नहीं बल्कि मध्यम किसान भी साथ आ जायेंगे क्योंकि शिक्षा के ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ते बाज़ारीकरण के वर्तमान माहौल में केवल गाँवों के धनी लोगों के बच्चों को ही बेहतर शिक्षा के अवसर मिल पाते हैं। मुफ़्त शिक्षा के साथ ही कम्युनिस्टों का अनिवार्य दायित्व है कि वे शिक्षा के समान अवसर की माँग पर सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी के साथ ही गाँवों-शहरों के मध्य वर्ग और मँझोले किसानों को भी संगठित करें क्योंकि यह जनता का बुनियादी राजनीतिक अधिकार है जिसे पूँजीवादी जनवादी गणतन्त्र भी सिद्धान्त रूप में स्वीकार करता है, पर व्यवहार में कभी लागू नहीं करता। यह मसला पूँजीवादी जनवाद की असलियत उजागर करने का एक अहम मुद्दा होना चाहिए जिसे सिर्फ़ क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन के एजेण्डा पर ही रखकर सन्तोष करने के बजाय व्यापक आम आबादी के आन्दोलन का मुद्दा बनाया जाना चाहिए।

7. यही बात समान शिक्षा के साथ ही सबको रोज़गार के नारे के साथ भी लागू होती

है। वास्तव में इस माँग को कभी भी, छात्र-युवा आन्दोलन के अतिरिक्त, जनता के विभिन्न वर्गीय आन्दोलनों की एक बुनियादी माँग के रूप में रखते हुए आन्दोलन की लम्बी तैयारी, और बुर्जुआ जनवाद के 'एक्सपोज़र' का काम किया ही नहीं गया है। महज औपचारिकता के रूप में इस माँग की चर्चा बार-बार की जाती रही है और इसे एक घिसा हुआ सिक्का बना दिया गया है। यह एक ऐसी ज्वलन्त माँग है जो छोटे-मँझोले मालिक किसानों को व्यापक ग़रीब आबादी के साथ एकजुट करने के साथ ही हमें यह अवसर देती है कि हम लोगों को यह ज़रूरी शिक्षा दे सकें कि किस प्रकार सामाजिक जीवन में रोज़गार की कमी कभी नहीं हो सकती, किस प्रकार बेरोज़गारी पूँजीवादी मुनाफ़ाख़ोरी की व्यवस्था का एक अपरिहार्य परिणाम है। इस मसले पर जनता को शिक्षित करते हुए हमें आरक्षण की सरकारी तिकड़म, और प्रतिक्रियावादी अवस्थिति से किये जाने वाले उसके विरोध के बारे में बताने का अवसर मिलता है और तभी हम लोगों को यह भी बता सकते हैं कि आज इतने रोज़गार पैदा ही नहीं हो रहे हैं कि आरक्षण का आम आबादी के किसी हिस्से को लाभ मिल सके या किसी हिस्से को नुक़सान हो सके। अतः सबसे ज़रूरी है कि जनता 'समान शिक्षा, सबको रोज़गार' की माँग पर एकजुट होकर लड़े। इस लम्बी लड़ाई की प्रक्रिया के दौरान आरज़ी या तात्कालिक तौर पर बेरोज़गारी भत्ता की माँग भी उठायी जानी चाहिए। ध्यान रहे कि सबको रोज़गार के हक़ की लड़ाई एक ऐसी लड़ाई है जो बुर्जुआ जनवाद के दोग़लेपन और पूँजीवादी उत्पादन-प्रणाली की असलियत उजागर करने के साथ ही हमें यह अवसर भी देती है कि हम जनता के बीच के जातिगत बँटवारों और आरक्षण की आज की सच्चाई को जनता के सामने सही ढंग से स्पष्ट करें, जनता को बाँटने की साज़िशों को बेनक़ाब कर सकें और वर्गीय एकजुटता को ठोस रूप में आगे बढ़ा सकें। इसी प्रक्रिया में कम्युनिस्टों को समाजवाद के इस प्रोग्राम को भी स्पष्ट करने का सबसे सही अवसर मिलता है कि समाजवादी व्यवस्था (और केवल वही) किस प्रकार सभी काम करने योग्य नागरिकों को काम देती है और किस प्रकार उनकी सभी ज़रूरतों को पूरा करने की स्थिति पैदा करती है।

8. निःशुल्क चिकित्सा की सार्विक सुविधा भी जनता की ऐसी ही एक बुनियादी राजनीतिक माँग है, जिसका अभाव प्रकारान्तर से जनता के जीने के अधिकार पर ही हमला है। इस मसले पर भी बुर्जुआ जनवाद की दोमुँही असलियत को उजागर करते हुए तथा चिकित्सा-व्यवस्था को निजी हाथों में सौंपकर पूरी तरह से ख़रीद-फ़रोख़्त की वस्तु बना देने, दवा-कम्पनियों की बेशुमार लूट और धोखाधड़ी तथा सार्वजनिक चिकित्सा-व्यवस्था को ध्वस्त करने के वर्तमान सिलसिले के ख़िलाफ़ व्यापक आबादी को संघर्ष के लिए तैयार करते हुए, सर्वहारा वर्ग की एक सही-सच्ची पार्टी गाँव के छोटे-मँझोले किसानों को भी समाजवाद की लड़ाई में शामिल करने में तथा समाजवाद के ख़िलाफ़ उनके पूर्वाग्रहों को तोड़ने में क्रमशः ज़्यादा से ज़्यादा कामयाबी हासिल करेगी।

9. सबको शिक्षा, रोज़गार और दवा-इलाज की सुविधा की ही तरह सभी के लिए आवास को भी जनता के एक बुनियादी राजनीतिक अधिकार के रूप में प्रस्तुत करते हुए प्रचार और लामबन्दी का काम किया जाना चाहिए। इस माँग का मध्यम किसान कम से कम विरोध नहीं

करेंगे और छोटे किसानों की भारी आबादी इस मुद्दे पर गाँवों-शहरों की सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी का साथ देगी।

10. हमें देश की बुर्जुआ जनवादी व्यवस्था में संसदीय चुनावों, संसद-विधानसभा की कार्रवाइयों, सरकार और एम.पी.-एम.एल.ए. के वेतन-भत्तों, नौकरशाही के विराट तन्त्र और सेना-पुलिस पर सालाना होने वाले विशाल ख़र्चों की असलियत व्यापक आम जनता के सामने बार-बार लानी चाहिए, यह भी दिखलाना चाहिए कि इन सबके मुक़ाबले, जनता से ही वसूले गये धन का कितना छोटा हिस्सा शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सबसे बुनियादी ज़रूरतों पर ख़र्च होता है। हमें यह माँग उठानी होगी कि ख़र्चीले चुनावों की प्रणाली समाप्त की जाये, कथित जनप्रतिनिधियों और मन्त्रियों की विलासिता, शानो-शौक़त और तमाम विशेषाधिकारों को तत्काल समाप्त किया जाये, नौकरशाही के भी बेहिसाब वेतन-भत्तों में कटौती की जाये, उसके सभी विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया जाये और पूरे नौकरशाही तन्त्र को काट-छाँटकर एकदम छोटा, कम से कम आज का दसवाँ हिस्सा कर दिया जाये। हमें यह माँग उठानी होगी कि नौकरशाही के ज़्यादातर ज़रूरी कामों को जनता की चुनी गयी समितियों के सुपुर्द कर दिया जाये और फ़ालतू की लाल फ़ीताशाही को ख़त्म करके दफ़्तरी कामों को आसान बना दिया जाये। यही आम पहुँच कोर्ट-कचहरी के विराट परजीवी तन्त्र पर भी लागू होनी चाहिए। हमें पुरज़ोर शब्दों में यह माँग करनी चाहिए कि स्थायी सेना के विराट ढाँचे को विघटित कर देना चाहिए और उसकी जगह आम नागरिकों को सैन्य-प्रशिक्षण देना चाहिए। यह एक ज़रूरी माँग है क्योंकि जनता से निचोड़ी गयी सरकारी रक़म का एक बड़ा हिस्सा उस सेना पर ख़र्च होता है और देशभक्ति के नाम पर अन्धराष्ट्रवादी भावनाएँ उभाड़कर इस सच्चाई पर पर्दा डाल दिया जाता है कि इस सेना का मुख्य उद्देश्य शासक वर्गों की हिफ़ाज़त करना और उसके ख़िलाफ़ उठ खड़ी होने वाली जनता का दमन करना होता है। हमें यह भी माँग करनी चाहिए कि प्रतिरक्षा की ज़रूरत के नाम पर गुप्तता की उस व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाना चाहिए जिसकी आड़ में हर वर्ष रक्षा-सौदों के घोटालों में जनता से वसूले गये धन में से अरबों-खरबों रुपये नेता-नौकरशाह और दलाल हड़प कर जाते हैं। हमें यह माँग उठानी चाहिए कि क़ानून-व्यवस्था की आड़ में जनता पर ही ज़ुल्म ढाने वाली पुलिस-व्यवस्था को भी भंग कर देना चाहिए और यह काम नागरिकों की चुनी हुई कमेटियों और प्रशिक्षित दस्तों को सौंप देना चाहिए जो अपने रोज़ी-रोज़गार के साथ-साथ इस काम को, पारी बाँधकर अंजाम देंगे और इस तरह से होने वाली अरबों की बचत को विकास-कार्यों में लगाया जा सकेगा। समाजवाद की लड़ाई के लिए जनता को तैयार करने के लिए ये माँगें बेहद ज़रूरी हैं। एक ताक़तवर, व्यापक आधार वाली पार्टी ही इन माँगों पर आन्दोलन खड़ा कर सकती है, पर इन माँगों पर समुचित तथ्यों और तर्कों से जनता को शिक्षित करने का काम एकदम शुरू से ही चलना चाहिए और आम प्रचार की कार्रवाइयों से लेकर गाँव-गाँव, बस्ती-बस्ती की बैठकों-सभाओं तक में चलना चाहिए तथा लगातार अख़बारों-पर्चों के ज़रिये भी चलना चाहिए। जनता को यह बताया जाना चाहिए कि सिर्फ़ सरकार, विधायिका, नौकरशाही और सेना-पुलिस के फ़ालतू ख़र्चों और विशेषाधिकारों

में ही कटौती कर दी जाये तो जनता की सभी बुनियादी ज़रूरतें आराम से पूरी की जा सकती हैं तथा विकास के तमाम कामों को नयी रफ़्तार दी जा सकती है। इन माँगों के लिए लड़ते हुए जनता व्यवहार में पूँजीवादी आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था के जनविरोधी चरित्र की भयंकरता की और समाजवादी व्यवस्था की अनिवार्य ज़रूरत की क्रमशः गहरी समझ हासिल करती चलती है। ये ऐसी माँगें हैं, जिन पर गाँवों के छोटे-मँझोले किसान और शहर के परेशानहाल मध्यवर्गीय तबक़े मेहनतकशों के साथ आ खड़े होंगे और उनके बीच समाजवाद के लिए संघर्ष की स्वीकार्यता ज़्यादा से ज़्यादा स्थापित होती चली जायेगी।

11. छोटे और मँझोले किसानों के बीच कम्युनिस्ट 'प्रोपेगैण्डा' और 'एजिटेशन' का एक अहम मसला यह भी होना चाहिए कि वे गाँवों में इस तरह की किसान समितियाँ संगठित करें जिनमें धनी किसान, महाजन और ग्रामीण पूँजीपतियों जैसा कोई भी मुनाफ़ाख़ोर तबक़ा न हो। ये समितियाँ व्यापक आम आबादी के हितों की रक्षा करेंगी, उनसे जुड़ी माँगों को उठायेंगी तथा छोटे-मँझोले मालिक किसानों को यह अवसर मुहैया करायेंगी कि वे धनी किसानों की दबंगई से आज़ाद रहकर अपने हितों की रक्षा कर सकें और अपने हक़ की लड़ाई लड़ सकें। कम्युनिस्ट पार्टी की भरपूर कोशिश यह रहती है कि धनी होने की मृग मरीचिका से बाहर निकलकर छोटे और मँझोले किसान ज़्यादा से ज़्यादा मुद्दों पर गाँव (और शहरों के भी) के ग़रीबों के साथ खड़े हों। इसके लिए उन्हें यथार्थवादी ढंग से, ऐसे ही व्यापक मुद्दों पर व्यावहारिक ढंग से लड़ाई के लिए संगठित होने की प्रेरणा लगातार देने की ज़रूरत होती है। इसमें यह भी बात ध्यान रखने की होती है कि छोटे-मँझोले देहाती मिल्की वर्गों के जो उन्नत (और प्रायः युवा) तत्त्व पूँजीवादी व्यवस्था में छोटे मालिकाने के हश्र को समझकर, सर्वहारा वर्ग की विचारधारा को और फिर उसकी क्रान्तिकारी पार्टी की मातहती को स्वीकार करते हैं, उनकी, पूरे वर्ग को जनपक्ष में ला खड़ा करने में एक अहम भूमिका होगी।

12. छोटे और मँझोले किसानों को ग्राम पंचायतों और ब्लॉक समितियों आदि के स्तरों पर कुलकों-फ़ार्मरों के वर्चस्व को तथा स्थानीय नौकरशाही के साथ गठबन्धन के सहारे चलने वाली उनकी दादागिरी को ख़त्म करने के लिए ग्रामीण मज़दूरों के साथ एकताबद्ध करने का प्रयास लगातार करना चाहिए, पंचायतों के तहत होने वाले विकास-कार्यों की जन-निगरानी संगठित की जानी चाहिए, पंचायत चुनावों में धन के ज़ोर के ख़िलाफ़ तथा पंचायत समितियों के जनवादी ढंग से काम करने के सवाल पर व्यापक ग़रीब आबादी के साथ मध्यम किसानों को ला खड़ा करने की हरचन्द कोशिश की जानी चाहिए। कहने की ज़रूरत नहीं कि ज़मीनी स्तर पर सुधारपरक, शिक्षापरक और प्रचारपरक कार्रवाई के एक लम्बे सिलसिले के बाद ही लोगों की वर्ग-चेतना उन्नत करने की बुनियादी समस्याओं को हल किया जा सकेगा, जिनमें से सर्वप्रमुख वह जातिगत बँटवारा है, जो एक हद तक वर्गीय अन्तर्वस्तु को भी प्रकट करता है, लेकिन आज मुख्यतः वर्गीय ध्रुवीकरण और वर्ग-चेतना के उन्नतिकरण को बाधित करने का काम कर रहा है। यह प्रश्न अलग से प्रचार, शिक्षा, सांस्कृतिक कार्य और आन्दोलन की एक सुसंगत नीति पर विचार करने की माँग करता है। यहाँ यह न सम्भव है, न ज़रूरी। व्यापक ग़रीब आबादी के साथ मँझोले मालिक किसानों की एक हद तक की जुझारू एकजुटता

स्थापित हो जाने के बाद, यह प्रयास किया जाना चाहिए कि पंचायतों पर कुलक-नौकरशाही गँठजोड़ के वर्चस्व को तोड़ने के लिए, पंचायत चुनावों में भी ग्रामीण सर्वहारा आबादी और छोटे-मँझोले किसान एकजुट हस्तक्षेप करें और इन संस्थाओं को गाँवों में वर्ग-संघर्ष का एक प्लेटफ़ॉर्म बना देने की कोशिश करें।

13. लेकिन एक सुसंगत कम्युनिस्ट नीति सिर्फ़ इतने से ही तसल्ली नहीं कर सकती। सरकारी ग्राम पंचायतों (ग्राम-सभाओं) से अलग, गाँवों में ग्रासरूट स्तर पर ऐसे जन-प्लेटफ़ॉर्म संगठित करने की लगातार कोशिश एक लम्बे सिलसिले के रूप में जारी रहनी चाहिए, जिस पर ग्रामीण शोषक वर्गों की कोई भागीदारी न हो और जहाँ व्यापक आम जनता की आबादी की जुटान अपनी साझा माँगों-समस्याओं पर जनवादी ढंग से विचार करे, फ़ैसला ले और आन्दोलन का कार्यक्रम बनाये। इसी बोध के तहत 'बिगुल' ने विभिन्न क्रान्तिकारी जनसंगठनों के साथ मिलकर गाँवों और शहर की मज़दूर बस्तियों में **'क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य पंचायत'** की अवधारणा प्रस्तुत की है, जिसके बारे में 'बिगुल' में पहले लिखा जा चुका है। यह जनता की उस वैकल्पिक सत्ता का ग्रासरूट स्तर पर भ्रूण विकसित करने की एक कोशिश है (ऐसे अन्य प्रयोग भी हो सकते हैं), जो समाजवादी क्रान्ति के विकास की उन्नत अवस्था में, सामाजिक-राजनीतिक संकट के उथल-पुथल के दौर में देशस्तर पर एक दोहरी सत्ता की मौजूदगी जैसी स्थिति में रूपान्तरित हो सकती है। यह मुद्दा भारतीय क्रान्ति के मार्ग पर चर्चा से जुड़ा है जो अलग से विस्तार की माँग करता है। वर्तमान चर्चा के प्रसंग में, फ़िलहाल इतना ही उल्लेख काफ़ी है।

14. छोटे-मँझोले मालिक किसानों के बीच छोटे पैमाने के पूँजीवादी उत्पादन से (और प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के अतीत से भी) पैदा हुई कूपमण्डूकता के कारण धार्मिक पूर्वाग्रहों, अन्धविश्वासों की भी मज़बूत मौजूदगी होती है। आज भारत में धार्मिक कट्टरपन्थी फ़ासीवाद का जो व्यापक उभार हुआ है, उसका एक व्यापक सामाजिक आधार गाँवों के पूँजीवादी भूस्वामियों-कुलकों-फ़ार्मरों में भी विकसित हुआ है। धार्मिक पूर्वाग्रहों, भावनाओं को बढ़ावा देकर (तथा जातिगत ध्रुवीकरण की मदद से भी), गाँवों के साम्प्रदायिक फ़ासीवाद-समर्थक धनी वर्ग, मँझोले और छोटे मालिक किसानों को भी अपने साथ खड़ा कर लेते हैं। इससे एक ओर गाँवों में जनता की एकजुटता का आधार टूट रहा है और दूसरी ओर साम्प्रदायिक फ़ासीवाद को ताक़त मिल रही है। कम्युनिस्ट यदि उपरोक्त आर्थिक और राजनीतिक मसलों पर छोटे-मँझोले किसानों को जागृत, गोलबन्द और संगठित करने की ज़मीनी कार्रवाई कर रहे हों तो उन्हें धर्म की राजनीति के विरुद्ध जमकर तथा हर सम्भव तरीक़े से प्रचार करना चाहिए, इसके असली उद्देश्य एवं चरित्र का भण्डाफोड़ करना चाहिए, बुर्जुआ राजनीति व संविधान की धर्मनिरपेक्षता के नक़लीपन को उजागर करना चाहिए, मज़दूर राजनीति की सच्ची धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप स्पष्ट करना चाहिए तथा पुरज़ोर शब्दों में यह माँग रखनी चाहिए कि :

(i) धर्म को और धार्मिक संस्थाओं को राजनीतिक-सामाजिक जीवन तथा सार्वजनिक शिक्षा-संस्कृति के दायरे से एकदम अलग कर दिया जाना चाहिए।

(ii) हर नागरिक को निजी धार्मिक (या अधार्मिक) विश्वास की पूरी आज़ादी होनी

चाहिए तथा इसमें राज्य का या किसी अन्य संस्था का कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, न ही किसी भी नागरिक को दूसरे के ऊपर, या आबादी के एक हिस्से को दूसरे के ऊपर, अपने धार्मिक विश्वास को थोपने की इजाज़त दी जानी चाहिए। यह काम आज साम्प्रदायिक फ़ासीवाद के विरुद्ध तैयारी की फ़ौरी ज़रूरत है और गाँवों में समाजवादी क्रान्ति के वर्ग-संश्रय को क़ायम करने और मज़बूत बनाने के लिए भी ज़रूरी है। हमें गाँव के ग़रीबों से लेकर मध्यम किसानों तक के बीच लगातार प्रचार करके यह माँग उठाने के लिए उन्हें अवश्य ही तैयार करना चाहिए कि मठों-मन्दिरों-गुरुद्वारों में जमा अरबों रुपये, सोना-चाँदी और हज़ारों एकड़ ज़मीन ज़ब्त करके सार्वजनिक हित के कार्यों में लगा दिया जाना चाहिए। साधु-सन्तों-महन्तों को पूजा-पाठ का पूरा अधिकार होना चाहिए, लेकिन अकूत सम्पत्ति की जमाख़ोरी का अधिकार उन्हें क़त्तई नहीं होना चाहिए। कम्युनिस्टों को न केवल धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वास, धर्म के राजनीतिक इस्तेमाल और धार्मिक कट्टरपन्थ के विरुद्ध लगातार प्रचार और शिक्षा का काम चलाना चाहिए, बल्कि उन्हें बुनियादी राजनीतिक एवं आर्थिक प्रश्नों पर जनता को गोलबन्द और संगठित करने के साथ-साथ, धर्म के प्रश्न पर कम्युनिस्ट विचारों का लगातार प्रचार करना चाहिए तथा लेनिन की शिक्षा का अनुसरण करते हुए, इस भ्रान्ति का क़त्तई शिकार नहीं होना चाहिए कि इससे जनता बिदक जायेगी। हम अपने धर्म-विषयक विचारों को जनता पर लादते नहीं हैं और इसे समाजवाद के लिए संघर्ष की शर्त नहीं बनाते हैं, लेकिन अपने विचारों को छिपाते भी नहीं हैं। इससे समाजवाद के लिए संघर्ष को नुक़सान ही पहुँचता है। जनता हमेशा इतनी व्यावहारिक होती है कि इस बात को समझती है। समाजवाद के लिए संघर्ष की अपरिहार्य आवश्यकता उसकी अपनी ज़रूरत है, यह बात जनता वस्तुगत परिस्थितियों से समझती है और हम उसे लगातार यह अहसास भी कराते हैं।

ऊपर की चर्चा में सभी मुद्दे शामिल नहीं हैं, पर हमने केन्द्रीय मुद्दों को, और उससे भी अधिक, छोटे और मँझोले किसानों को मज़दूर आन्दोलन के साथ जोड़ने के प्रति कम्युनिस्ट पहुँच को, स्पष्ट करने की कोशिश की है। इन्हीं ठोस माँगों पर कम्युनिस्ट गाँवों में मँझोले और छोटे मालिक किसानों को संगठित करने की कोशिश करते हैं, पर यह याद रखना बेहद ज़रूरी है कि हर हमेशा हमारा ज़ोर उनके सामने यह स्पष्ट करने पर होता है कि पूँजीवाद के अन्तर्गत उनका कोई भविष्य नहीं है, कि छोटे मालिकाने, छोटी पूँजी और छोटे पैमाने के पूँजीवादी उत्पादन की तबाही सुनिश्चित है और इसलिए छोटे-मँझोले मालिकों के सामने एकमात्र व्यावहारिक विकल्प यही है कि वे समाजवाद के पक्ष में आ खड़े हों। एक सच्चा कम्युनिस्ट गाँव के इन मिल्की वर्गों को लगातार समाजवाद के बारे में शिक्षित करता है, ज़मीन के निजी मालिकाने के प्रति उनके हवाई और रूढ़िवादी मोह के ख़िलाफ़ संघर्ष करता है और उन्हें यह समझाने की कोशिश करता है कि समाजवाद उनसे उनके मिथ्या भ्रम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं लेता है और बदले में उन्हें समूची आज़ादी और हज़ार गुना बेहतर ज़िन्दगी की गारण्टी देता है।

साथ ही, कम्युनिस्ट दृष्टिकोण हमें छोटे मालिक किसानों और मध्यम मालिक किसानों के बीच फ़र्क़ करने की भी शिक्षा देता है। लगातार, तेज़ी के साथ, उजड़ते छोटे किसानों को

कम्युनिस्टों की बात अपनी ज़िन्दगी के हालात से जल्दी समझ में आ जाती है, जबकि मँझोले किसान लम्बे समय तक बीच में झूलते रहते हैं। वे अन्ततोगत्वा समाजवादी क्रान्ति के ढुलमुल दोस्त ही होते हैं। उनका छोटा-सा ऊपरी हिस्सा धनी बनने की ओर उन्मुख होता है, बीच का एक हिस्सा दोनों ओर ताकता रहता है और नीचे का हिस्सा गाँव के ग़रीबों का पक्ष लेता है।

कम्युनिस्ट वस्तुगत परिस्थितियों की आन्तरिक गति को देखते हुए भविष्य के मद्देनज़र काम करते हैं और नारे देते हैं। भारतीय समाज के तीव्र पूँजीवादीकरण की वर्तमान दिशा को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि एक दशक के भीतर ही गाँवों में वर्गीय ध्रुवीकरण की तस्वीर बहुत अधिक स्पष्ट हो जायेगी, छोटे मालिकों का बड़ा हिस्सा तबाह होकर गाँवों-शहरों की सर्वहारा जमातों में शामिल हो जायेगा और मध्यम किसानों की आबादी भी सिकुड़कर काफ़ी छोटी हो जायेगी।

वैसे आज की ही स्थिति यह है कि गाँवों और शहरों की सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी कुल आबादी के पचास प्रतिशत के आसपास पहुँच रही है। कम्युनिस्ट इसी आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं। यही समाजवादी क्रान्ति की नेतृत्वकारी शक्ति है, जो अब तेज़ी से (आबादी की दृष्टि से) मुख्य शक्ति भी बनती जा रही है। शहरी निम्न मध्य वर्ग की भारी, परेशानहाल आबादी इसकी मुख्य सहयोगी बनेगी क्योंकि इसे अपना कोई भविष्य नहीं दीख रहा है और निजी भू-स्वामित्व के मोह जैसी बाधा से भी यह मुक्त है। गाँवों के छोटे किसान सर्वहारा वर्ग के दूसरे क़रीबी दोस्त हैं। मध्यम किसान इसके ढुलमुल दोस्त हैं और आबादी की दृष्टि से भी इसकी कोई वजह नहीं दीखती कि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को छोड़कर इस ढुलमुल दोस्त की चिन्ता में ही दुबले हुए जा रहे हैं। यह नरोदवादी भटकाव नहीं तो भला और क्या है?

(बिगुल, फ़रवरी 2003)

मँझोले किसानों के बारे में सर्वहारा दृष्टिकोण का सवाल – एक

एस. प्रताप

खेती में पूँजीवादी विकास के साथ ही ग्रामीण आबादी में वर्गीय ध्रुवीकरण की प्रक्रिया तीखी हो उठती है और शहरों की तरह ही गाँवों में भी सर्वहारा वर्ग और पूँजीपति वर्ग (धनी किसान या पूँजीवादी भूस्वामी) आमने-सामने आ खड़े होते हैं। समाजवादी क्रान्ति के दौर में गाँवों में असली और निर्णायक युद्ध तो इन्हीं के बीच होना है। इस युद्ध में गाँव का अर्द्धसर्वहारा वर्ग (यानी मुख्यतः ग़रीब किसान) भी सर्वहारा की सेना में ही लामबन्द होता है क्योंकि उसका जीवन वस्तुतः सर्वहारा का जीवन बन चुका है, अपने छोटे से खेत के टुकड़े से उसका पेट नहीं भरता और उसे भी मज़दूरी करके अपने परिवार का पेट पालना पड़ता है। लेकिन ग्रामीण आबादी के भीतर एक तीसरा वर्ग भी है – मँझोला किसान। अलग-अलग देशों के इतिहास, पूँजीवादी विकास की मंज़िलों, आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप ग्रामीण आबादी में इसका प्रतिशत कम या अधिक हो सकता है। पूँजीवादी विकास जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, इसकी तबाही और बरबादी भी बढ़ती जाती है। यह किसी भी तरह अपने अस्तित्व को नहीं बचा सकता, यह भावी सर्वहारा है। लेकिन इस प्रक्रिया की गति भी परिस्थितियों पर ही निर्भर करती है। हमारे देश में मँझोले किसानों की अच्छी-ख़ासी आबादी अभी भी मौजूद है और सर्वहाराकरण की तीव्र प्रक्रिया के बावजूद ग्रामीण आबादी में उनका प्रतिशत घटा ज़रूर है, लेकिन अभी भी ऐसी स्थिति नहीं आयी है कि पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ ग्रामीण सर्वहारा के संघर्ष में उनकी भूमिका को नज़रअन्दाज़ कर दिया जाये और सर्वहारा के एक संश्रयकारी वर्ग के रूप में उनकी लामबन्दी के सवाल से आँखें मूँद ली जायें। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना भी समीचीन होगा कि उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर ग्रामीण आबादी में मध्यम किसानों के प्रतिशत के बारे में सिर्फ़ मोटा-मोटा अन्दाज़ा ही लगाया जा सकता है, क्योंकि आँकड़े जोतों पर आधारित हैं और जोतों की उत्पादकता और कृषि उपजें देश के अलग-अलग हिस्सों में इतनी अधिक बदलती रहती हैं कि जोतों के आधार पर एक इलाक़े का मध्यम किसान दूसरे इलाक़े का धनी किसान हो सकता है और तीसरे इलाक़े का ग़रीब किसान। इन आकड़ों से देशव्यापी स्तर पर उस मध्यम किसान आबादी का प्रतिशत पता करना टेढ़ी खीर है, जो अपने ही श्रम से अपनी खेती करता है, मज़दूर नहीं लगाता और उसकी जोत

न तो उसके भरण-पोषण से कम है, न अधिक। यह बात करना यहाँ इसलिए आवश्यक हो गया कि आजकल कुछ लोग ज़ोरशोर से यह बात कहना शुरू कर चुके हैं कि गाँवों में सर्वहारा और अर्द्धसर्वहारा की आबादी 60 प्रतिशत के आसपास पहुँच चुकी है, तथा यह कि समाजवादी क्रान्ति में अब मँझोले किसानों की भूमिका अप्रासंगिक हो चुकी है। हालाँकि, वे इसका ज़िक्र नहीं करते कि बकाया चालीस फ़ीसदी में मध्यम किसानों और धनी किसानों का प्रतिशत क्या है। यदि चालीस फ़ीसदी में मध्यम किसानों का अच्छा-ख़ासा हिस्सा है और वह भावी सर्वहारा है और सर्वहारा का संश्रयकारी है, तो उसे क्यों गोलबन्द नहीं किया जाना चाहिए? राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा करने की लड़ाई के साथ ही उसके बाद समाजवादी निर्माण की समस्याओं के मद्देनज़र भी क्या उसे सर्वहारा के संश्रयकारी के रूप में गोलबन्द करना आवश्यक नहीं है?

कोई भ्रम पैदा न हो इसलिए यहीं पर यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि समाजवादी क्रान्ति में मँझोले किसानों की भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर और एक पक्षीय तरीक़े से आँकना भी ग़लत होगा। जिस तरह सामन्तवाद विरोधी क्रान्ति में धनी किसान एक ढुलमुल संश्रयकारी वर्ग था, उसी तरह समाजवादी क्रान्ति में मँझोला किसान भी एक ढुलमुल संश्रयकारी ही है। उसका दोहरा चरित्र है। एक तरफ़ तो वह मेहनतकश है और भावी सर्वहारा है, लेकिन दूसरी तरफ़ बावजूद इसके कि वह भाड़े के श्रम का शोषण नहीं करता वह एक माल उत्पादक निम्न पूँजीपति है और उसका यह चरित्र उसे सर्वहारा के विरोधी के रूप में बदल देता है। इसलिए ग्रामीण सर्वहारा वर्ग को संगठित किये बिना उसे संगठित करने की बात करना पूँजीवादी भूस्वामी वर्ग के हाथों में खेलने जैसे ही बात होगी। मँझोले किसानों के साथ सर्वहारा वर्ग का संश्रय एक संयुक्त मोर्चा के रूप में ही अभिव्यक्त हो सकता है और जब सर्वहारा वर्ग संगठित ही न हो तो भला वह संयुक्त मोर्चा क़ायम ही कैसे कर सकता है। इससे पहले मँझोले किसानों को संगठित करने पर ज़ोर देने का मतलब होगा कि वे सर्वहारा वर्ग को अपने हितों के लिए ही इस्तेमाल करेंगे और सर्वहारा वर्ग उन्हें अपने प्रभाव में लाने में और उनके वैचारिक रूपान्तरण में अक्षम साबित होगा। गन्ना किसानों की समस्या पर बात करते हुए ही सही, गन्ना किसानों पर मेरी टिप्पणी में यह भटकाव किसी न किसी रूप में मौजूद रहा है और इस पर चली बहस में, हालाँकि यह सवाल इस रूप में नहीं उठा है फिर भी इसके बाद, इसे समझने में काफ़ी मदद मिली है। यह बात कितनी महत्त्वपूर्ण है, इसे इसी से समझा जा सकता है कि आज क्रान्तिकारी आन्दोलन में ग्रामीण सर्वहारा वर्ग को अलग वर्गीय संगठन में गोलबन्द करने पर ज़ोर न के बराबर दिखायी देता है और नरोदवादी भटकावों के शिकार बहुतेरे संगठन धनी किसानों की माँगों पर पूरी ग्रामीण आबादी को एक ही झण्डे तले गोलबन्द करने के प्रतिक्रियावादी काम में जुटे हुए हैं।

लेकिन फिर भी मँझोले किसानों का सवाल समाजवादी क्रान्ति के कार्यक्रम का महत्त्वपूर्ण सवाल है। इसलिए इस पर सही दृष्टिकोण का होना बेहद ज़रूरी है। मँझोले किसानों पर चली बहस पर आने से पहले एक अन्य सवाल को भी यहीं पर उठा देना उचित होगा कि किसानों के वर्ग विश्लेषण में आमतौर पर उत्पादन प्रक्रिया में भागीदारी के आधार पर नहीं, बल्कि

ग़रीबी-अमीरी के आधार पर वर्गों को परिभाषित करने की एक प्रवृत्ति दिखायी देती है। इस ग़ैर-मार्क्सवादी पद्धति ने पहले भी आन्दोलन का काफ़ी बेड़ा गर्क किया है और अभी भी कर रही है। उत्पादन प्रक्रिया में हिस्सेदारी के आधार पर मध्यम किसान उसे ही कहा जा सकता है जो मूलतः और मुख्यतः अपना श्रम लगाकर अपनी खेती करता है, अपवादस्वरूप ही और आपात परिस्थितियों में ही वह मज़दूर लगाने को मजबूर होता है। मार्क्सवादी साहित्य में लेनिन आमतौर पर उसके लिए मँझोला किसान शब्द का इस्तेमाल करते हैं और एंगेल्स छोटा किसान। लेनिन के अनुसार, "उनमें से (मँझोले किसानों में से) बहुत ही कम ऐसे किसान हैं जो उजरत पर खेत-बनिहार या दिहाड़ीदार लगाते हों, दूसरों की मेहनत से धनी बनने और दूसरों की पीठ पर सवार होकर दौलतमन्द बनने की कोशिश करते हों। मँझोले किसानों में से अधिकतर के पास इतना पैसा ही नहीं कि वे उजरत पर मज़दूर लगायें – वास्तव में वे ख़ुद ही उजरत पर काम करने को मजबूर होते हैं...।" (गाँव के ग़रीबों से, पेज 36)

एंगेल्स कहते हैं : "छोटे किसान से हमारा तात्पर्य भूमि के ऐसे टुकड़े के मालिक या कारोबार से है, जो आमतौर से उतने से बड़ा नहीं, जितना वह और उसका परिवार जोत सकता है, और उतने से छोटा भी नहीं, जितने से कि उसके परिवार का भरणपोषण हो सकता है। अतः यह छोटा किसान छोटे दस्तकार की तरह ही मेहनतकश होता है...।"

मँझोले किसानों के सवाल पर 'बिगुल' में चली बहस में साथी नीरज और सम्पादक-मण्डल के लेख में लेनिन का ज़िक्र तो ख़ूब आता है लेकिन उन्होंने मँझोले किसानों को जिस रूप में परिभाषित किया है वह एक ग़ैर-मार्क्सवादी दृष्टिकोण है। सम्पादक-मण्डल कहता है – "मँझोले किसानों का मामला थोड़ा अलग है। चूँकि यह वर्ग अपने खेत में थोड़े बहुत मज़दूर लगाकर भी काम कराता है और उनके अतिरिक्त श्रम को हड़पकर मुनाफ़ा कमाता है, इसलिए एक मालिक के रूप में तरक़्क़ी करके धनी हो जाने का भ्रम इसके भीतर अधिक होता है।..." लेनिन की परिभाषा और इस परिभाषा में अन्तर काबिलेग़ौर है। मुख्यतः और मूलतः मध्यम किसानों के बारे में अपनी इसी धारणा को आधार बनाकर सम्पादक-मण्डल और साथी नीरज लागत मूल्य कम करने की माँग पर मँझोले किसानों की गोलबन्दी को सर्वहारा विरोधी मानते हैं। उनका सवाल है : "किसानों की लागत का एक हिस्सा तो उजरती श्रम भी होता है। क्या लेखक (एस. प्रताप) उसको भी कम करने के हक़ में है?" लेकिन जहाँ तक मँझोले किसानों का सवाल है, वे मज़दूर लगाकर खेती नहीं करते तो वे भला मज़दूरी कम करने की माँग क्यों उठायेंगे?

सम्पादक-मण्डल कहता है : "लाभकारी मूल्य की माँग हो या उत्पादन लागत घटाने की अथवा आम कृषि सब्सिडी की – ये सभी गाँव के ग़रीबों की शोषक और पूरे देश के मेहनतकशों के शोषण के साझीदार धनी किसानों की माँगें हैं।..."

सम्पादक-मण्डल ने यहाँ लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य घटाने और कृषि सब्सिडी की माँग को एक ही झटके में निपटा दिया। कृषि सब्सिडी को तो अलग कर दिया जाये, क्योंकि या तो यह लाभकारी मूल्य से जुड़ी होती है या लागत मूल्य घटाने के सवाल से। जहाँ तक लाभकारी मूल्य का सवाल है, यह सीधे-सीधे जनविरोधी, सर्वहारा विरोधी माँग हैं और बहस

में शामिल लोग इस पर एकमत हैं। मेरे लेख में जहाँ वाजिब मूल्य के लिए दबाव बनाने की रणनीति अपनाने की बात कही गयी है; वह एक विशेष सन्दर्भ में है जब चीनी मिलों ने बिना किसी उपयुक्त कारण के पिछले साल के मुक़ाबले गन्ने का दाम एकाएक काफ़ी काम कर दिया था। इसी मुद्दे को लेकर वह आन्दोलन था और वह लेख इसी आन्दोलन पर एक टिप्पणी था। यहाँ जिस मूल्य के लिए दबाव बनाने की बात कही गयी है, उसमें और लाभकारी मूल्य की माँग में अन्तर है। लेख में स्पष्टतः यह कहा भी गया है कि लाभकारी मूल्य धनी किसानों की माँग है और इसके समानान्तर ही मँझोले किसानों के लिए लागत मूल्य घटाने की माँग उठाने की वकालत की गयी है।

अब सवाल उठता है लागत मूल्य घटाने की माँग का। यह सच है कि लागत मूल्य घटाने का भी कुल मिलाकर सबसे अधिक फ़ायदा धनी किसानों को ही होगा। यहाँ तक कि पूँजीवाद के रहते जब तक भूमि के निजी मालिकाने के ख़िलाफ़ संघर्ष का सवाल केन्द्र में नहीं लाया जाता या यूँ कहा जाये कि निजी मालिकाने के ख़ात्मे का सवाल केन्द्र में नहीं लाया जाता, तब तक खेती में सुधार की किसी भी बात का सर्वाधिक फ़ायदा धनी किसानों को ही होता है। मँझोले और ग़रीब किसानों को इससे मामूली राहत ही मिल सकती है और ऐसी कोई भी बात उनकी तबाही-बरबादी को नहीं रोक सकती है। वे भावी सर्वहारा हैं; यही उनकी नियति है और यही इतिहास की गति है। इस संकट का समाधान सिर्फ़ और सिर्फ़ समाजवादी समाज की स्थापना, ज़मीन पर सामूहिक मालिकाना और सामूहिक खेती है।

लेकिन उन्हें आज ही तो तबाह होकर सर्वहारा नहीं बन जाना है। तबाह होते हुए वे लम्बे समय तक एक वर्ग के रूप में विद्यमान रहेंगे। हमारी कोशिश यही होनी चाहिए कि वे चुपचाप घुटते हुए नहीं, लड़ते हुए तबाह हों और इस प्रक्रिया में पूँजीवाद के शोषणकारी चरित्र को समझें और समाजवादी भविष्य का सपना लेकर सर्वहारा के संश्रयकारी के रूप में पूँजीवाद को उखाड़ फेंकने के लिए लामबन्द हों। इस दृष्टि से खेती किसानी से जुड़ी ऐसी कौन-सी माँग हो सकती है, जो उन्हें सर्वहारा वर्ग के साथ खड़ा कर सकती है? हमारी केन्द्रीय और दूरगामी माँग स्पष्ट है और वह है भूमि पर निजी मालिकाने का ख़ात्मा और समाजवादी समाज में सामूहिक खेती की व्यवस्था की स्थापना। सवाल है तात्कालिक माँगों का। इस दृष्टि से मँझोले किसानों की लागत मूल्य घटाने की माँग एक ऐसी माँग के रूप में दिखायी देती है जो उन्हें सर्वहारा के क़रीब खड़ा कर सकती है; क्योंकि यह महँगाई पर रोक लगाने की व्यापक जनता की माँग से जुड़ती है।

लेनिन के ज़माने में खेती पिछड़ी हुई थी और किसान लागतों के लिए इस क़दर औद्योगिक मालों पर निर्भर नहीं थे। लेकिन फिर भी लेनिन ने इस सवाल को छुआ है और इसे सर्वहारा विरोधी माँग का दर्जा देते नहीं दिखायी देते। हाँ, वे बार-बार आगाह करते हैं कि इससे उनकी तबाही-बरबादी रुक जायेगी, ऐसा भ्रम किसानों को नहीं पालना चाहिए। वह उन बुर्जुआ कोशिशों का भण्डाफोड़ करते हैं जो इस तरह की माँग को किसानों के उद्धार के लिए केन्द्रीय माँग के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। इसके ख़िलाफ़ वे किसानों से कहते हैं : “सुधरी गृहस्थी बढ़िया चीज़ है, ज़्यादा सस्ते हल ख़रीदने में कोई बुराई नहीं है... लेकिन जब

किसी ग़रीब या मँझोले किसान से कहा जाता है कि सुधरी गृहस्थी और ज़्यादा सस्ते हल तुम सबको ग़रीबी से पिण्ड छुड़ाने और अपने पैरों पर खड़ा होने में मदद करेंगे और यह काम धनियों को हाथ लगाये बग़ैर ही हो सकता है, तो यह सरासर धोखा है। ये सारे सुधार कम क़ीमतें और सहकार (माल ख़रीदने-बेचने के संघ) धनियों को ही अधिक लाभ पहुँचायेंगे.. .(गाँव के ग़रीबों से, पेज 38)।"

स्पष्ट है कि यहाँ प्रहार उन पर किया जा रहा है जो लागत कम करने या ऐसी ही अन्य माँगों को किसानों के उद्धार के लिए केन्द्रीय रणनीति के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं और यह भ्रम पैदा कर रहे हैं कि इससे मँझोले और ग़रीब किसानों की तबाही रुक जायेगी। गन्ना किसानों के आन्दोलन पर मेरी टिप्पणी भी इस नज़रिये से एकांगी है और उसमें यह भटकाव मौजूद है। हालाँकि टिप्पणी लिखते समय यह मानकर चला गया है कि हम सभी खेती के संकट का एकमात्र समाधान भूमि पर निजी मालिकाने के ख़ात्मे के रूप में ही देखते हैं और यह मानते हैं कि पूँजीवाद के भीतर मँझोले किसानों की तबाही ही उनकी नियति है। लेकिन टिप्पणी में इसका ज़िक्र न होने से उससे यह भ्रम पैदा होता है गोया लागत मूल्य घटाने की लड़ाई लड़कर मध्यम किसान अपनी तबाही रोक सकता है।

अब ज़रा मँझोले किसानों और लागत मूल्य घटाने की माँग को एक अन्य पहलू से भी देखने की कोशिश की जाये। राज्यसत्ता हाथ में आने के बाद सर्वहारा वर्ग का इनके प्रति क्या नज़रिया होगा। रूस की बोल्शेविक पार्टी की 1919 में हुई कांग्रेस में एक प्रस्ताव पास किया गया था जिसमें ग़रीब और मँझोले किसानों को सर्वतोमुखी सहायता देने के लिए ब्योरेवार निर्देश दिये गये थे। उन्हें उन्नत बीज, खाद आदि की आपूर्ति, भाड़े पर औज़ार आदि देने और उनकी सहायता के लिए एक बड़ा राजकीय कोष निर्धारित करने का निर्णय लिया गया था। एंगेल्स ने भी समाजवाद के भीतर छोटे और मँझोले किसानों के प्रति ठीक यही दृष्टिकोण अपनाने की बात कही थी और यहाँ तक कहा था कि जितने अधिक किसानों को तबाह होने से पहले किसान के रूप में हम अपने साथ खड़ा कर सकेंगे उतनी ही जल्दी सामाजिक कायापलट होगा। रूस में लागतों का बोझ कम करके छोटे-मँझोले किसानों की स्थिति सहनीय बना दी गयी। लेकिन इससे उनमें अपनी स्थिति को लेकर कोई भ्रम पैदा होने की गुंजाइश नहीं थी, क्योंकि उनके सामने ही समाजवादी संस्थाएँ खड़ी हो रही थीं, और कम्युनिस्ट उनकी चेतना उन्नत करने में जुटे हुए थे। इससे उनमें समाजवादी जीवन के प्रति आस्था पैदा हुई थी। और बाद में उन्होंने भूमि पर निजी मालिकाने का परित्याग कर सामूहिक खेती को अपना लिया। समाजवादी समाज और पूँजीवाद की परिस्थितियों में कोई मेल नहीं है। लेकिन एक हद तक ही सही मँझोले किसानों के प्रति हमारा दृष्टिकोण वहीं से तय होता है कि राज्यसत्ता हाथ में आने के बाद उनके प्रति हमारा रवैया क्या होगा। इस तर्क को पुष्ट करने के लिए भी यहाँ इसका ज़िक्र किया गया है कि लागत मूल्य घटाने जैसी माँगों पर लड़ाई मँझोले किसानों की स्थिति कुछ सहनीय बना सकती है, लेकिन यह अपनेआप में किसानों के भीतर अपनी स्थिति को लेकर भ्रम नहीं पैदा करती है और न ही यह उनकी तबाही रोक सकती है। भ्रम तब पैदा होगा, जब इस लड़ाई को पूँजीवाद के ख़िलाफ़ समाजवादीकरण की लड़ाई से

अलग-थलग करके लड़ा जाये, इस माँग को एक केन्द्रीय माँग के रूप में उनके सामने प्रस्तुत किया जाये और सबसे बड़ी बात देश में पूँजीवाद के ख़िलाफ़ कम्युनिस्ट आन्दोलन मज़बूत न हो और ग्रामीण सर्वहारा वर्ग लामबन्द न हो। और शहरी व ग्रामीण सर्वहारा वर्ग को लामबन्द किये बग़ैर मँझोले किसानों को गोलबन्द कर उनकी तबाही रोकने के लिए इसे एक केन्द्रीय माँग के रूप में प्रस्तुत किया जाये।

अब सीधे सम्पादक-मण्डल व साथी नीरज के उन तर्कों पर आते हैं, जिनके आधार पर वे लागत मूल्य घटाने की माँग को सर्वहारा विरोधी माँग करार देते हैं। उनके उस तर्क का तो पहले ही जवाब दिया जा चुका है, जिसमें वे यह सवाल उठाते हैं कि लागत मूल्य घटाने की माँग मज़दूरी घटाने की माँग बन सकती है। यहाँ मँझोले किसानों की बात हो रही है और मँझोला किसान मज़दूर लगाकर खेती नहीं करता है। इसलिए उसकी माँग में मज़दूरी घटाने या किसी भी तरह श्रम लागत कम करने की माँग शामिल नहीं हो सकती है। इसके साथ ही वह सारे तर्क ख़ारिज हो जाते हैं जिसमें कहा गया है कि लागत मूल्य घटाने का मतलब यही होगा कि किसान मज़दूरों को और अधिक निचोड़ेगा। गन्ना किसानों पर मेरे लेख में भी यह स्पष्ट था और सम्पादक-मण्डल का लेख छपने से पहले सम्पादक-मण्डल के एक साथी से इस पर हुई चर्चा में भी यह बात स्पष्ट कर दी गयी थी।

दूसरा तर्क है : "लागत मूल्य कम होने से क्या फ़सलों के मूल्य में गिरावट नहीं आयेगी?" अगर फ़सलों के दाम नहीं गिरते तो क्या यह उपभोक्ताओं के साथ धोखाधड़ी नहीं होगी? सवाल है कि लागत मूल्य घटने से फ़सलों का दाम आख़िर क्यों न गिरे। फ़सलों का दाम गिरना ही चाहिए और अवश्य गिरना चाहिए और यदि ऐसा नहीं होता है तो इस धोखाधड़ी के ख़िलाफ़ आम जनता को लामबन्द किया जाना चाहिए। फ़सलों का दाम गिरना मध्यम किसानों के भी ख़िलाफ़ नहीं है। वह अगर एक ही फ़सल बोता है और उसे बाज़ार में बेचता है तो भी उसे अन्य फ़सलें तो बाज़ार से ख़रीदकर ही खानी पड़ती हैं। उसकी पैदावार बस इतनी ही होती है। वह मुनाफ़े के लिए पैदा नहीं करता है। फ़सल का दाम घटने का तर्क उसकी फ़सल के साथ-साथ उन फ़सलों पर भी तो लागू होगा जिन्हें वह ख़रीदकर खाता है। इसलिए यह बात उसके ख़िलाफ़ नहीं जाती है। जबकि धनी किसानों को इससे नुक़सान होगा। उनकी माँग लाभकारी मूल्य ही हो सकती है, लागत मूल्य घटाने की माँग नहीं। अनाज का दाम घटना सर्वहारा वर्ग के भी हित में है। इसीलिए लागत मूल्य घटाने की माँग मँझोले किसानों को सर्वहारा वर्ग के साथ खड़ा कर सकती है।

एक अन्य तर्क देते हुए सम्पादक-मण्डल कहता है : "थोड़ी देर के लिए यह मान लें कि किसानों के किसी आन्दोलन की माँग मानकर उद्योगपति ट्रैक्टर, खाद, कीटनाशक, डीज़ल, बिजली आदि की क़ीमत कम कर दें और किसी तरह से धोखाधड़ी करके यह घटोत्तरी कृषि उत्पादों के मूल्य में संक्रमित न होने दी जाये (यानी अनाज का दाम न घटे)। तो ऐसी सूरत में अर्थशास्त्र का सामान्य विद्यार्थी भी यह जानता है कि (औद्योगिक) उत्पादों (यानी खाद, कीटनाशक, बिजली आदि) के सस्ते होने से पूँजीपति का मुनाफ़ा कम नहीं होता, बल्कि इसकी क़ीमत भी कारख़ाने के मज़दूरों को ही चुकानी पड़ती है..." इसके बाद यह बताया गया है

कि औद्योगिक उत्पादों का दाम घटने पर कैसे पूँजीपति मशीनें लगाकर मज़दूरों को और अधिक निचोड़ेगा, मज़दूरी कम कर देगा और मज़दूरों की भारी आबादी को सड़कों पर धकेल देगा आदि-आदि।

यह अजीबोग़रीब मार्क्सवाद है। लेकिन इस मार्क्सवाद के एकांगीपन पर चर्चा की यह जगह नहीं है। यहाँ हम सिर्फ़ कुछ सवाल उठाकर इस तर्क के अन्तरविरोधों को दिखाना चाहेंगे। औद्योगिक उत्पादों, यानी खाद, डीज़ल, ट्रैक्टर, बिजली आदि के दाम घटने की क़ीमत मज़दूरों को ही चुकानी पड़ती है। सच है। तो क्या सम्पादक-मण्डल महँगाई के ख़िलाफ़ व्यापक जनता के आन्दोलन के विरोध में खड़ा होगा? क्योंकि यह माँग भी अन्य औद्योगिक उत्पादों के दाम घटने या उनका दाम बढ़ने से रोकने की वकालत करती है। ऐसे में उन उद्योगों में काम करने वाले मज़दूरों को ही इसकी क़ीमत चुकानी पड़ेगी। ऐसा होने पर सम्पादक-मण्डल के तर्क के अनुसार उन उद्योगों में भी पूँजीपति मज़दूरों को और अधिक निचोड़ेगा और मज़दूरों की भारी आबादी को सड़क पर धकेल देगा! यही नहीं मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ाने की माँग का भी क्या आप विरोध करेंगे? क्योंकि मज़दूरी बढ़ने पर भी क्या पूँजीपति के सामने वैसी ही परिस्थितियाँ नहीं पैदा होतीं? सम्पादक-मण्डल कह सकता है कि मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ने और महँगाई की वृद्धि पर रोक लगाने से तो कुल मिलाकर पूँजीपतियों का शोषण बढ़ने के बावजूद मज़दूरों का फ़ायदा होता है। ऐसी स्थिति में खेती का लागत मूल्य घटने से भी मज़दूरों का फ़ायदा होगा क्योंकि इससे अनाज का दाम घट सकता है।

दरअसल, सम्पादक-मण्डल अपने पूरे विश्लेषण में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की भूमिका को नज़रअन्दाज़ कर देता है। वह बार-बार डराता है कि औद्योगिक उत्पादों का दाम घट जाने पर अपना मुनाफ़ा क़ायम रखने के लिए पूँजीपति यह कर देगा और वह कर देगा। लेकिन वह इसे नहीं देखता कि इसके ख़िलाफ़ औद्योगिक सर्वहारा वर्ग क्या करेगा और इससे क्या परिस्थितियाँ निर्मित होंगी। सिर्फ़ उत्पादों का दाम घटने पर ही नहीं और सिर्फ़ मजबूरियों में ही नहीं, पूँजीपति हर समय हरसम्भव तरीक़े से उसकी जितनी कुव्वत है, अधिक से अधिक मुनाफ़ा बटोरने के लिए वह सब करता ही है जो वह कर सकता है। हाँ, उनके उत्पाद का दाम घटने से, तात्कालिक तौर पर अन्य सेक्टरों के पूँजीपतियों के मुक़ाबले की उनकी मुनाफ़े की दर गिरेगी और वे इस सेक्टर से अपनी पूँजी निकालकर किसी अन्य सेक्टर में भागने की या मशीनीकरण करके मज़दूरों को और अधिक निचोड़ने की कोशिश करेंगे। लेकिन औद्योगिक सर्वहारा गाय तो है नहीं कि वह चुपचाप पूँजीपतियों की इस और अधिक निचोड़ने की कोशिश को बरदाश्त कर लेगा। मज़दूर वर्ग इसका डटकर विरोध करेगा और उन्हें अपनी फ़ैक्ट्रियों में आन्दोलनों का विस्फोट झेलना पड़ेगा। पूँजीपतियों की इन कोशिशों से मज़दूर वर्ग का आक्रोश बढ़ेगा और पूँजीपति वर्ग की मौत का दिन नज़दीक आयेगा।

अब अन्त में, उस बात पर आते हैं कि कैसे लागत मूल्य कम करने की माँग को सर्वहारा विरोधी बताते हुए सम्पादक-मण्डल ख़ुद इस माँग की वकालत करता है। 'किन माँगों पर लड़ेंगे मँझोले किसान' में सम्पादक-मण्डल ने छोटी से लेकर बड़ी माँगों तक की एक लम्बी फ़ेहरिस्त दी है। इन माँगों में से एक को छोड़कर लगभग अन्य सभी माँगें देश

की पूरी मध्यवर्गीय और ग़रीब आबादी की सामान्य माँगें हैं। खेती किसानी से जुड़ी ग़रीब व मध्यम किसानों की प्रत्यक्षतः एक ही माँग इसमें शामिल है और वह लागत मूल्य कम करने की ही माँग है : "ग़रीब और मँझोले किसानों की माँग यह होनी चाहिए कि ज़मीन सहित उत्पादन के साधनों के स्वामित्व की एक सुनिश्चित मात्रा को पैमाना बनाकर, धनी किसानों और अन्य ग्रामीण पूँजीपतियों से बिजली और पानी की क़ीमत वसूली जानी चाहिए, जबकि उन सभी किसानों को जो मुनाफ़े के लिए पैदा नहीं करते सापेक्षतः रियायती दर पर बिजली-पानी आदि मिलनी चाहिए।..."

क्या यह ग़रीब और मँझोले किसानों के लिए लागत मूल्य कम करने की माँग नहीं है? फिर यह तर्क बिजली-पानी पर ही क्यों लागू किया जाये? खाद, बीज, डीज़ल, कीटनाशक आदि को "रियायती दर" पर देने की माँग क्यों नहीं की जानी चाहिए? क्या इसलिए कि इसे निजी कम्पनियाँ पैदा करती हैं और बिजली-पानी सरकार? लेकिन अब तो बिजली-पानी भी निजी कम्पनियों के हाथ में जा रहा है। फिर चाहे सरकार हो या निजी कम्पनियाँ विभिन्न लागत मालों के प्रति अलग-अलग और अन्तरविरोधी दृष्टिकोण क्यों?

(बिगुल, नवम्बर 2004)

किसानी के सवाल को पेटी बुर्जुआ चश्मे से नहीं सर्वहारा के नज़रिये से देखिये जनाब!

सुखदेव

लगभग दो साल के लम्बे सोच-विचार के बाद साथी एस. प्रताप ने किसान प्रश्न पर अपनी अवस्थिति फिर से लिखकर भेजी है। इस सुदीर्घ शोध-अध्ययन में साथी को सिर्फ़ तीन उद्धरण ही मिल पाये, उनमें से भी उन्हें एक उद्धरण का मूल स्रोत नहीं मिल पाया।

'बिगुल' के दिसम्बर, 2002 अंक में छपे साथी एस. प्रताप के लेख, 'चीनी मिल-मालिकों की लूट से तबाह गन्ना किसान' पर साथी नीरज की टिप्पणी से किसान प्रश्न पर बहस विशेष सन्दर्भ में शुरू हुई थी। यह सन्दर्भ है आज का समय और देश में कम्युनिस्ट तथा मज़दूर आन्दोलन के आज के हालात। आज जब पूरे देश के पैमाने पर कम्युनिस्ट आन्दोलन कमज़ोर है और ट्रेडयूनियन आन्दोलन भी ठहराव का शिकार है, मज़दूरों में हताशा-निराशा और विभ्रम का माहौल हावी है, तो ऐसे समय में ख़ुद को कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी कहने वाले बहुत से संगठन, करोड़ों-करोड़ औद्योगिक मज़दूरों और खेत मज़दूरों को छोड़कर मालिक किसानों और यहाँ तक कि धनी किसानों को संगठित करने की क़वायदों में जुटे हुए हैं। आज जब पूँजी के अपने ही तर्क से छोटे माल उत्पादकों के उजरती सर्वहाराओं में रूपान्तरण की प्रक्रिया गति पकड़ रही है तो इन्हें छोटे माल उत्पादकों के रूप में ही बचाये रखने के लिए कई संगठनों और व्यक्तियों के रूप में प्रूधों, सिसमोन्दी तथा रूसी नरोदवादियों की आत्माओं का पुनर्जन्म हो रहा है। ऐसे माहौल में छोटे पैमाने के माल उत्पादन के प्रति मार्क्सवादी पहुँच की हिफ़ाज़त करना, तथा इससे सर्वहारा वर्ग को शिक्षित करना, भारत के सर्वहारा क्रान्तिकारियों का अहम कार्यभार है।

'बिगुल' के दिसम्बर 2002 अंक में एस. प्रताप के लेख में जो बातें कही गयी हैं, वे वही बातें हैं जो किसान प्रश्न पर भारतीय "नरोदवादी" मार्क्सवादी संगठन कर रहे हैं। अपने उक्त लेख में श्री एस. प्रताप ने लागत मूल्य कम किये जाने की माँग को छोटे-मँझोले किसानों की मुख्य माँग बताते हुए लाभकारी मूल्य की माँग तक की हिमायत की है। अपने ताज़ा लेख (बिगुल, नवम्बर 2004) में उन्होंने अपनी पहली अवस्थितियों से थोड़ा दायें-बायें होते हुए, मूलतः वही बातें कही हैं, जो वह पहले कह चुके हैं। आइये, हम किसान प्रश्न पर उनकी 'नयी' दलीलों पर एक-एक करके विचार करते हैं।

मँझोले किसान की परिभाषा का सवाल

अपने लेख 'चीनी मिल-मालिकों की लूट से तबाह गन्ना किसान' (बिगुल दिसम्बर, 2002) में एस. प्रताप द्वारा लागत मूल्य कम किये जाने की माँग को छोटे-मँझोले किसानों की मुख्य माँग के रूप में पेश किया गया था। इस पर टिप्पणी करते हुए साथी नीरज ने यह सवाल उठाया था कि मँझोले किसानों की लागत का एक हिस्सा तो उजरती श्रम-शक्ति की ख़रीद पर होने वाला ख़र्च भी होता है, तो क्या लेखक (एस. प्रताप) लागत मूल्य कम करने की वकालत करेंगे? इसके जवाब में जनाब एस. प्रताप का कहना है कि मँझोले किसान तो उजरती मज़दूरों से काम ही नहीं करवाते तो भला वह मज़दूरी कम करने की माँग ही क्यों उठायेंगे? अपने इस दावे की पुष्टि के लिए उन्होंने लेनिन से भी मदद लेने की कोशिश की है। उन्होंने इक्कीसवीं सदी के शुरू में भारत के मँझोले किसान को परिभाषित करने के लिए बीसवीं सदी के शुरू में रूस के मँझोले किसान की लेनिन द्वारा दी गयी परिभाषा को भारत में हूबहू फ़िट करने की कोशिश की है। उन्होंने पिछले सौ सालों के समय में भारत सहित पूरी दुनिया में खेती के तौर-तरीक़ों में आये बदलावों को बिलकुल ही नज़रअन्दाज़ कर दिया। श्रीमान एस. प्रताप, अगर थोड़ी देर के लिए हम आप से सहमत भी हो जायें कि रूस का मँझोला किसान उजरती मज़दूर लगाकर खेती नहीं करता था, तो क्या भारत में भी ऐसा होना ज़रूरी है? यहाँ पर तो मँझोले किसान उजरती मज़दूरों से अपने खेतों में काम करवाते हैं। इसकी वजह यह है कि भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास 1903 के रूस के मुक़ाबले कहीं अधिक परिपक्व अवस्था में है। कृषि में बड़े पैमाने पर मशीनीकरण हुआ है, कृषि की मण्डी पर निर्भरता रूस के मुक़ाबले कहीं अधिक है। साल में दो फ़सलों की पैदावार तो यहाँ पर आम बात है, कई इलाक़ों (जैसेकि पंजाब) में तो साल में तीन-तीन फ़सलों का चलन भी है। फ़सल की कटाई-बुआई के समय तो छोटे से छोटे किसानों को भी मज़दूरों की ज़रूरत पड़ती है। फ़सल की कटाई के समय मौसम का मिज़ाज बिगड़ जाने के डर से भी उन्हें मज़दूरों से फ़सल कटवानी पड़ती है।

पंजाब की कपास पट्टी का उदाहरण लें। पंजाब के दक्षिण-पश्चिमी ज़िलों (फ़रीदकोट-भटिण्डा-मानसा) में नरमे (कपास की एक क़िस्म) की बहुतायत थी, और आज भी है। पिछली सदी के आख़िरी दशक में अमेरिकन कीट का प्रकोप शुरू होने से यहाँ के ग़रीब से ग़रीब किसानों को भी धान की खेती की तरफ़ रुख़ करना पड़ा। नरमे की फ़सल की बुआई तथा नरमे की चुगाई (संग्रह) में तो छोटे किसान मुख्यतः अपने परिवार की मेहनत से काम चला लेते थे तथा मज़दूरों पर उनकी निर्भरता बहुत कम थी। मगर धान की फ़सल की रोपाई का मामला ही ऐसा है कि किसान तो क्या पंजाब के खेत मज़दूर भी यह काम उतनी दक्षता से नहीं कर पाते, जिस तरह यू.पी., बिहार से आने वाले मज़दूर करते हैं। इसलिए धान की रोपाई के लिए किसान (छोटे-बड़े सभी) पुरबिया मज़दूरों पर ही निर्भर हैं। बाक़ी पंजाब में भी जहाँ अब बड़े पैमाने पर धान की फ़सल होती है, वहाँ भी यही आलम है। धान की कटाई यहाँ छोटे-बड़े सभी किसान अब हारवेस्टर कम्बाइन से ही करवाते हैं। देश के अन्य

इलाक़ों से भी इस तरह के अनेक उदाहरण लिये जा सकते हैं। एस. प्रताप पता नहीं किन तथ्यों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भारत में मँझोले किसान उजरती मज़दूर नहीं लगाते। लगता है श्रीमान एस. प्रताप, भारत की ज़मीनी हक़ीक़तों, भारतीय जनता से पूरी तरह कटे हुए बस अपने अध्ययन कक्ष तक ही सीमित हैं। इनकी जानकारी में थोड़ा इज़ाफ़ा करते हुए इन्हें इतना और बता दें कि भारत के औद्योगिक केन्द्रों पर किसान पृष्ठभूमि से आने वाले औद्योगिक मज़दूर, जो अभी तक ज़मीन से पूरी तरह मुक्त नहीं हुए हैं, उनमें भी कई ऐसे केस सामने आते हैं कि छुट्टियों में गाँव जाने पर वे अपने खेतों में मज़दूरों से काम करवाते हैं। और ये मज़दूर विकसित खेती के इलाक़ों से नहीं, बल्कि ऐसे इलाक़ों से सम्बन्धित हैं, जहाँ पर खेती बहुत पिछड़ी हुई है। इसलिए हमारी एस. प्रताप को नेक सलाह है कि आप अध्ययन कक्ष से निकलकर जनता के सम्पर्क में आयें तो आपका दृष्टिदोष दूर होने की काफ़ी सम्भावना है, क्योंकि हर सवाल का जवाब किताबों में नहीं होता।

अब ज़रा एस. प्रताप द्वारा दिये गये लेनिन के उस उद्धरण को लें, जिसके ज़रिये उन्होंने मँझोले किसान को परिभाषित करने की कोशिश की है। यह उद्धरण लेनिन की पुस्तक 'गाँव के ग़रीबों से' में से लिया गया है, जिसे लेनिन ने 1903 के शुरू में लिखा था। उस समय रूस में खेती में पूँजीवादी विकास अभी बहुत अपरिपक्व अवस्था में था। मगर उद्धरण को ज़रा ग़ौर से देखें तो मँझोले किसानों द्वारा उजरती मज़दूरों को काम पर लगाने की बात को लेनिन बिलकुल ख़ारिज नहीं करते। उनका कहना है कि मँझोले किसानों में भी ऐसे किसान हैं (भले ही बहुत कम) जो उजरती मज़दूर लगाते हैं। मगर जैसे-जैसे रूसी खेती में पूँजीवादी विकास आगे बढ़ता गया, खेत मज़दूरों की संख्या भी बढ़ती गयी और खेतों में दिहाड़ीदार मज़दूरों से काम करवाना आम चलन बनता गया। यहाँ तक कि मँझोले किसानों में भी दिहाड़ी मज़दूरों से काम करवाने की प्रवृत्ति बढ़ती गयी।

1908 में लेनिन लिखते हैं : *"यह नज़र आ जायेगा कि ख़ुशहाल गृहस्थी की मुख्य विशेषता है बड़े परिवारों का होना, ग़रीब गृहस्थी की तुलना में ऐसी गृहस्थी में परिवार के सदस्यों को खेती के काम में अधिक लगाया जाता है। निस्सन्देह, वे अतुलनीय रूप से भाड़े पर अधिक मज़दूर रखते हैं...। ऊँचे समूहों में मज़दूरों को भाड़े पर रखना स्पष्टतः एक प्रणाली बनती जा रही है, जो विस्तृत पैमाने पर खेती की शर्त है। इससे भी अधिक, दिनभर के लिए भाड़े पर मज़दूर रखना किसानों के मँझोले समूहों के बीच भी अधिकाधिक व्यापक होता जा रहा है* (संकलित रचनाएँ, अंग्रेज़ी संस्करण, खण्ड 15, पृ. 119, अनुवाद हमारा)।"

1912 में लिखे एक लेख में लेनिन लिखते हैं : *"हम इन आँकड़ों को लेंगे : पाँच से दस हेक्टेयर की 652,798 (1907) जोतों पर 487,704 उजरती मज़दूर लगाये जाते हैं, यानी आधे से अधिक उजरती मज़दूर का शोषण करते हैं।*

दस से बीस हेक्टेयर के कुल 412,741 फ़ार्मों में 711,867 उजरती मज़दूरों से काम लिया जाता है, यानी सभी या लगभग सभी उजरती मज़दूर का शोषण करते हैं।

...वास्तविकता यह कि "छोटे एवं मँझोले किसानों" का विशाल बहुमत...श्रम-शक्ति को या तो बेचता है या ख़रीदता है, या तो ख़ुद को भाड़े पर लगाता है या भाड़े पर मज़दूर रखता है।

...छोटे किसानों से सर्वहाराओं का कहना है कि तुम अर्द्धसर्वहारा हो, इसलिए मज़दूरों की अगुवाई में चलो, सिर्फ़ इसी में तुम्हारी मुक्ति है (संकलित रचनाएँ, अंग्रेज़ी संस्करण, खण्ड 20, पृ. 215-16, अनुवाद हमारा)।" यानी छोटे किसान (अर्द्धसर्वहारा) अपनी श्रम-शक्ति बाहर बेचते हैं और मध्यम किसान श्रम-शक्ति के ख़रीदार हैं। लेनिन 5 हेक्टेयर से लेकर 20 हेक्टेयर के मालिकाने वाले किसानों को मध्यम किसानों की कैटेगरी में रखते हैं।

मँझोले किसानों को परिभाषित करने में एस. प्रताप बहुत "जल्दबाज़ी" (पौने दो साल का छोटा-सा अन्तराल) के शिकार हो गये। अगर उन्होंने लेनिन को ही ठीक तरह से पढ़ लिया होता तो मँझोले किसानों के बारे में इतने ग़लत निष्कर्ष पर न पहुँचे होते।

समाजवादी क्रान्ति में मँझोले किसानों की भूमिका

समाजवादी क्रान्ति की मंज़िल में भारत के देहात में ग्रामीण सर्वहारा और अर्द्धसर्वहारा (ग़रीब किसान) आबादी ही शहरी मज़दूरों की पक्की और भरोसेमन्द दोस्त है। मँझोले किसान समाजवादी क्रान्ति के प्रति बहुत ही ढुलमुल रुख़ अपनाते हैं। उजरतों में बढ़ोत्तरी ग्रामीण सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी की मुख्य आर्थिक माँग है। ग्रामीण सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी को एक झण्डे तले लामबन्द किया जा सकता है। भले ही यहाँ पर जाति व्यवस्था की मौजूदगी इस काम को अधिक कठिन बना देती है। सर्वहारा क्रान्ति की विजय, सर्वहारा अधिनायकत्व की सुदृढ़ता के लिए यह ज़रूरी है कि शहरी मज़दूरों तथा ग्रामीण सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी के बीच एक मज़बूत संश्रय क़ायम किया जाये। इसलिए समाजवादी क्रान्ति की मंज़िल में ग्रामीण सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी को संगठित करने का कार्यभार, सर्वहारा वर्ग की पार्टी के सामने एक अहम कार्यभार है। जहाँ तक मँझोले किसानों का सवाल है तो जिस हद तक वे ख़ुद अपनी ज़मीन पर मेहनत करते हैं, उस हद तक मेहनतकश हैं और क्योंकि वे दिहाड़ीदार मज़दूरों को भी अपने खेतों में लगाते हैं, इसलिए वे मज़दूरों की लूट में भागीदार भी हैं। अर्थव्यवस्था में इस दोहरे चरित्र के चलते वे मध्यम हैं, यानी पूरी तरह उजरती श्रम की लूट पर निर्भर धनी किसानों तथा उजरती सर्वहाराओं-अर्द्धसर्वहाराओं के बीच डोलते रहने वाला वर्ग। अर्थव्यवस्था में इसी दोहरे चरित्र के कारण इसका राजनीतिक व्यवहार भी दोहरा होता है। भले ही मँझोले किसान उजरती श्रम का शोषण करते हैं – पर वे इतना अधिक मुनाफ़ा नहीं कमा पाते कि वह इसे खेती में पुनः निवेश कर, और ज़मीन ख़रीदकर, धनी किसानों की जमात में शामिल हो सकें। ऐसा इनमें से बहुत कम ही कर पाते हैं। इनमें से ज़्यादातर की नियति यही होती है कि इन्हें देर-सबेर उजरती सर्वहाराओं-अर्द्धसर्वहाराओं की क़तारों में ही शामिल होना होता है।

इसलिए सर्वहारा वर्ग इनके प्रति दोस्ताना रुख़ अपनाता है। समाजवादी क्रान्ति में जहाँ कुलकों की पूरी सम्पत्ति (ज़मीन, खेती, औज़ार आदि) बलपूर्वक छीन ली जायेगी, वहाँ मँझोले किसानों के मामले में ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता। उन्हें प्रेरणा से ही सामूहिक खेती में शामिल किया जाता है, ज़ोर-ज़बरदस्ती से नहीं। यह भी एक तथ्य है कि निजी सम्पत्ति से

गहरे लगाव के चलते एक नये इन्सान में इनके रूपान्तरण का काम बहुत कठिन होता है, जिससे समाजवादी निर्माण का काम बाधित होता है। समाजवादी समाज में छोटे पैमाने के माल उत्पादन की मौजूदगी पूँजीवादी पुनर्स्थापना के लिए भी ज़रखे़ज़ भूमि तैयार करती है।

समाजवादी क्रान्ति के दौर में सर्वहारा की कोशिश रहती है कि मँझोले किसानों को अगर सर्वहारा क्रान्ति के पक्ष में नहीं जीता जा सकता, तो वे उनके दुश्मन का साथ भी न दें, यानी मँझोले किसानों को तटस्थ करने की नीति अपनायी जाती है। इस सम्बन्ध में लेनिन लिखते हैं, "रूसी क्रान्ति की नियति और नतीजा... इस बात पर निर्भर करेगा कि शहरी सर्वहारा देहाती सर्वहारा और अर्द्धसर्वहारा की व्यापक आबादी को अपने पीछे खड़ा कर पाता है या यह आबादी किसान बुर्जुआजी के पीछे चलती है (भूमि प्रश्न पर प्रस्ताव, 7 मई, 1917, अखिल रूसी सम्मेलन, संकलित रचनाएँ, पृ. 291)।"

ध्यान देने की बात है कि मई 1917 में जब बोल्शेविक समाजवादी क्रान्ति की तैयारी कर रहे थे, उस समय लेनिन ग्रामीण सर्वहारा और अर्द्धसर्वहारा आबादी के शहरी मज़दूरों के नेतृत्व में गोलबन्द होने को क्रान्ति की सफलता की ज़रूरी शर्त मानते हैं। वह मध्यम किसानों की चर्चा तक नहीं करते।

एक अन्य जगह लेनिन लिखते हैं, "वर्ग सचेत मज़दूर का कार्यक्रम है ग़रीब किसानों के साथ घनिष्ठतम संश्रय और पूर्ण एकता, मँझोले किसानों के साथ रियायतें और समझौते, कुलकों का बेमुरव्वत दमन (संकलित रचनाएँ, खण्ड 28, पृष्ठ 58)।" लेनिन ने यह अगस्त 1918 में लिखा था, जब रूस में सर्वहारा सत्ता ग्रामीण क्षेत्रों में अपने पैर जमा रही थी।

एक अन्य जगह मँझोले किसानों के प्रति सर्वहारा के रुख़ के बारे में लेनिन ने बहुत साफ़-साफ़ लिखा है, "सामान्यतया सर्वहारा और किसानों के बीच संश्रय ही क्रान्ति के बुर्जुआ चरित्र को उजागर कर देता है, क्योंकि किसान छोटे उत्पादक होते हैं जो माल उत्पादन के आधार पर अस्तित्वमान होते हैं। आगे चलकर सर्वहारा वर्ग समूचे अर्द्धसर्वहारा वर्ग (सभी मेहनतकश और शोषित लोगों) को अपने पक्ष में करेगा, मध्यम किसानों को तटस्थ बनायेगा और बुर्जुआ वर्ग को उखाड़ फेंकेगा, यह समाजवादी क्रान्ति होगी (संकलित रचनाएँ, अंग्रेज़ी संस्करण, खण्ड 28, पृ. 294-95, अनुवाद हमारा)।" रूस में समाजवादी सत्ता के काफ़ी हद तक सुदृढ़ होने पर जब लेनिन मँझोले किसानों से सर्वहारा वर्ग के संश्रय की बात करते हैं तब मँझोले किसान भी वैसे नहीं रह गये जैसेकि वह क्रान्ति-पूर्व रूस में थे। अब वे निजी सम्पत्ति (ज़मीन) के मालिक नहीं रह गये थे, और न ही वे मज़दूरों का शोषण कर सकते थे। अब वे बस अनाज के मालिक थे जिसे वे बेचकर कुछ मुनाफ़ा बटोर लेते थे। इन्हीं अर्थों में अब वे मँझोले किसान थे।

लागत मूल्य कम करने के बारे में

एस. प्रताप के लेख, 'चीनी मिल-मालिकों की लूट से तबाह गन्ना किसान' पर टिप्पणी करते हुए साथी नीरज ने सवाल उठाया था कि लागत मूल्य में अगर कमी होगी तो इसका

नतीजा फ़सलों के दाम गिरने में होगा। ऐसा क्यों और कैसे होगा, 'बिगुल' के जनवरी 2003 अंक में सम्पादक-मण्डल द्वारा इस सम्बन्ध में लिखे लेख में इसकी व्याख्या की गयी है। क्योंकि श्री एस. प्रताप भी इस बात से सहमत हैं, इसलिए यहाँ इसके अधिक विस्तार में जाने या इसके दुहराव की ज़रूरत नहीं है।

लागत मूल्य घटाने में किसानों को कोई फ़ायदा नहीं होगा। क्योंकि लागत मूल्य (अचल पूँजी पर होने वाला ख़र्च) में जितनी कमी होगी, उसी अनुपात में फ़सलों के दाम गिरने से किसानों का मुनाफ़ा भी कम हो जायेगा। किसानों का मुनाफ़ा सिर्फ़ एक ही सूरत में बढ़ सकता है, वह है – उनके पास अपनी श्रम-शक्ति बेचने वाले खेत मज़दूरों की मज़दूरी कम कर दी जाये। क्योंकि मुनाफ़ा कच्चे माल से नहीं श्रम-शक्ति से पैदा होता है। श्री एस. प्रताप का लागत मूल्य कम करके मँझोले किसानों को राहत देने का तर्क यहीं तक जाता है। मँझोले किसानों के लिए अतिचिन्तित श्रीमान एस. प्रताप को यह बात साफ़-साफ़ कहनी चाहिए।

एस. प्रताप का कहना है कि "लागत मूल्य घटाने का भी सबसे अधिक फ़ायदा धनी किसानों को ही होगा।" मगर फिर भी वह इस माँग की हिमायत पर डटे हुए हैं। उनके इस धनी किसान प्रेम पर हैरत होती है। आगे वह कहते हैं, "मँझोले और ग़रीब किसानों को इससे (लागत मूल्य घटाने से) मामूली राहत ही मिल सकती है। और कोई भी बात उसकी तबाही-बरबादी को नहीं रोक सकती है।" अगर उन्हें इससे मामूली राहत ही मिलती है और ज़्यादा फ़ायदा धनी ही ले जायेंगे, तो आप लागत मूल्य कम करने की ज़िद पर इतना क्यों अड़े हुए हैं। और सवाल तो यह भी है कि लागत मूल्य कम होने से जब फ़सलों के दाम भी गिर जायेंगे, तो छोटे-मँझोले किसानों को यह मामूली राहत भी कैसे मिल पायेगी? आप जब किसानों को लागत मूल्य कम होने से फ़सलों के दाम गिरने का राजनीतिक अर्थशास्त्र समझायेंगे तो कौन मूर्ख आपके नेतृत्व में लागत मूल्य घटाने की लड़ाई लड़ने आयेगा। ऐसा भी हो सकता है कि किसानों को सब्सिडी मिले और सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य पर किसानों की फ़सल ख़रीदकर फ़सलों के दामों में आने वाली गिरावट को रोक दे। तब एस. प्रताप क्या करेंगे? तब साथी एस. प्रताप इस धोखाधड़ी के ख़िलाफ़, फ़सलों के दाम गिराने के लिए आन्दोलन करेंगे। उन्हीं के शब्दों में, "लागत मूल्य घटने से फ़सलों का दाम आख़िर क्यों ना गिरे? फ़सलों का दाम गिरना ही चाहिए और अवश्य गिरना चाहिए और ऐसा नहीं होता तो इस धोखाधड़ी के ख़िलाफ़ आम जनता को लामबन्द किया जाना चाहिए।" श्री एस. प्रताप, पहले तो आप लागत मूल्य कम करने के लिए मँझोले किसानों को संगठित करने जायेंगे। थोड़ी देर के लिए मान लीजिये, लागत मूल्य घटने से फ़सलों के दाम गिर जाने का आपका अति सूक्ष्म अर्थशास्त्र समझ सकने में असमर्थ ये किसान आप के नेतृत्व में लामबन्द होकर लागत मूल्य घटाने में कामयाब हो जाते हैं, मगर इतने से तो आपको चैन मिलेगा नहीं, और जब आप लागत मूल्य घटने से फ़सलों का दाम घटाने के लिए मँझोले किसानों को (क्योंकि आम जनता में मँझोले किसान भी तो शामिल होंगे ही) लामबन्द करने जायेंगे तो आप किसानों के हाथों अपनी होने वाली दुर्गति की कल्पना भी कर सकते हैं।

मगर एस. प्रताप का मँझोला किसान तो बाज़ार से कुछ फ़सलें ख़रीदता भी है। इसीलिए

उनका कहना है कि फ़सलों का दाम गिरना मँझोले किसानों के ख़िलाफ़ नहीं है क्योंकि दाम तो उन फ़सलों के भी गिरेंगे जो वह ख़रीदता है। पर श्रीमान, जब आपके मँझोले किसान को अपनी फ़सलों की बाज़ार में बिक्री से पैसे भी कम मिलेंगे तो दूसरी फ़सलें ख़रीदने में उसे क्या मदद मिल सकती है? आप अर्थशास्त्र के तो नालायक़ विद्यार्थी हैं ही, लगता है आप गणित में भी काफ़ी कमज़ोर हैं।

श्रीमान एस. प्रताप ने लागत मूल्य के लिए भी लेनिन का सहारा लेने की कोशिश की है। इसलिए उन्होंने लेनिन के उद्धरण को काट-छाँटकर, अपने तर्क के अनुरूप बनाने की कोशिश की है। हम लेनिन का पूरा उद्धरण देंगे जिसे उन्होंने आधा-अधूरा दिया है :

"सभी मिल्की, सारा बुर्जुआ वर्ग मँझोले किसान की गृहस्थी सुधारने के लिए तरह-तरह की कार्रवाइयों (सस्ते हल, किसान बैंक, घास-बोवाई की व्यवस्था, सस्ती खाद और सस्ते मवेशी आदि) का वायदा करके उसे अपनी तरफ़ खींचना चाहते हैं। वे मँझोले किसानों को तरह-तरह के खेतिहर संघों (जिन्हें किताबों में "सहकार" कहा जाता है) में शामिल करने की कोशिश करते हैं, जो खेतीबाड़ी के तरीक़ों में सुधार करने के उद्देश्य से सभी प्रकार के मिल्कियों को ऐक्यबद्ध करते हैं। इस तरीक़े से बुर्जुआ वर्ग न केवल मँझोले बल्कि छोटे किसानों को भी, यहाँ तक कि अर्द्धसर्वहारा को भी, शहरी मज़दूरों के साथ ऐक्यबद्ध होने से रोकने और मज़दूरों के ख़िलाफ़, सर्वहारा के ख़िलाफ़ लड़ने में धनियों और बुर्जुआ वर्ग की ओर लाने की कोशिश करता है।

सामाजिक जनवादी मज़दूर इसका जवाब देते हैं : सुधरी गृहस्थी बढ़िया चीज़ है। ज़्यादा सस्ते हल ख़रीदने में कोई बुराई नहीं है; आजकल व्यापारी भी, अगर वह बेवक़ूफ़ नहीं, अधिक ख़रीदारों को अपनी ओर खींचने के लिए चीज़ों को सस्ते दामों पर बेचने की कोशिश करता है। लेकिन गृहस्थी और ज़्यादा सस्ते हल तुम सबको ग़रीबी से पिण्ड छुड़ाने और अपने पैरों पर खड़ा होने में मदद करेंगे ...तो यह सरासर धोखा है (**गाँव के ग़रीबों से**, राहुल फ़ाउण्डेशन, पृ. 37-38)।"

स्पष्ट है कि यहाँ पर लेनिन बुर्जुआ वर्ग द्वारा छोटे-मँझोले किसानों को अपने पक्ष में करने के लिए किये जाने वाले कृषि सुधारों की ही चर्चा कर रहे हैं, न कि लागत मूल्य घटाने को किसानों की मुख्य माँग के रूप में पेश कर रहे हैं। अब अगर हमारे यहाँ भी बुर्जुआ वर्ग या उसकी सरकार कृषि सुधारों का कोई काम करे जिससे छोटे-मँझोले किसानों को फ़ायदा होता हो तो क्या कम्युनिस्ट उसका विरोध करेंगे? बिल्कुल नहीं, पर वह ऐसे सुधारों के पीछे बुर्जुआ सरकार की नीयत को ज़रूर नंगा करेंगे। अगर सरकार कोई ऐसी नहर निकाले जिससे छोटे-मँझोले किसानों को भी सिंचाई की सुविधा मिले तो क्या कम्युनिस्ट उन्हें इस नहर का पानी न इस्तेमाल करने के लिए कहेंगे? श्रीमान एस. प्रताप आप दो बातों में फ़र्क़ कीजिये। एक तरफ़ तो बुर्जुआ सरकार की तरफ़ से किसानों को लुभाने के लिए उन्हें दी जाने वाली रियायतों का मामला है और दूसरी तरफ़ कम्युनिस्टों द्वारा लागत मूल्य घटाने की माँग को मँझोले किसानों की मुख्य माँग बनाकर उन्हें संगठित करने का सवाल है। दोनों बातों में यह फ़र्क़ इतना बारीक़ भी नहीं है कि आपको दिखायी न दे। मगर जब आप हक़ीक़तों को एक

निम्न पूँजीपति के चश्मे से ही देख रहे हैं, तो आपको इतने मोटे-मोटे फ़र्क़ भी कहाँ दिखायी देंगे। आपकी सारी दिक़्क़त ही यह है कि आप किन्हीं धारणाओं तक पहुँचने के लिए तथ्यों से प्रस्थान नहीं करते बल्कि अपने दिमाग़ में पहले से ही बनी हुई धारणाओं को हर हाल में सही सिद्ध करने के लिए तथ्य खोजते हैं। और जब वह तथ्य आपकी पूर्वधारणाओं से मेल नहीं खाते तो उन्हें मन-माफ़िक़ तरीक़े से तोड़ते-मरोड़ते हैं।

श्रीमान एस. प्रताप का कहना है, "यह (मँझोला किसान) किसी भी तरह अपने अस्तित्व को नहीं बचा सकता, यह भावी सर्वहारा है।...लेकिन उन्हें आज ही तो तबाह होकर सर्वहारा नहीं बन जाना है। तबाह होते हुए वे लम्बे समय तक एक वर्ग के रूप में विद्यमान रहेंगे। हमारी कोशिश यही होनी चाहिए कि वे चुपचाप घुटते हुए नहीं बल्कि लड़ते हुए तबाह हों और इस प्रक्रिया में पूँजीवाद के शोषणकारी चरित्र को समझें।" यहाँ पर सवाल यह नहीं है कि छोटे-मँझोले किसान पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ाई त्याग दें, सवाल तो उन माँगों का है जो किसान पूँजीवादी व्यवस्था के आगे रखते हैं। हमें देखना होगा कि ऐसी कौन-सी माँगें हैं जो मँझोले किसानों को सर्वहारा वर्ग के क़रीब लाती हैं, जो ग्रामीण सर्वहारा, अर्द्धसर्वहारा तथा मँझोले किसानों की साझा माँगें हैं, क्योंकि 'साझा मोर्चा' साझा माँगों पर ही बन सकता है। ऐसी माँगों की एक चर्चा 'बिगुल' के फ़रवरी 2003 अंक में की गयी है, जिसे यहाँ दुहराने की ज़रूरत नहीं है। कम्युनिस्ट किसानों के हर आन्दोलन की हिमायत नहीं करते, पूँजीवादी राज्यसत्ता के ख़िलाफ़ सभी किसान आन्दोलन क्रान्तिकारी नहीं होते, कम्युनिस्ट किसानों के उन्हीं आन्दोलनों की हिमायत करते हैं, जो सर्वहारा क्रान्ति को आगे बढ़ाने में मददगार हों।

साथी एस. प्रताप किसानों की जिन माँगों की हिमायत कर रहे हैं, वे किसानों की निम्न पूँजीवादी मानसिकता को ही बल प्रदान करती हैं और उन्हें बुर्जुआ वर्ग के पलड़े में धकेलने वाली हैं। वह लागत मूल्य घटाने की माँग को मँझोले किसानों की मुख्य माँग के बतौर पेश तो कर ही रहे हैं, और अभी उन्होंने लाभकारी मूल्य की माँग की हिमायत को भी नहीं छोड़ा है। भले ही उनका कहना है कि, लाभकारी मूल्य की माँग जनविरोधी, सर्वहारा विरोधी तथा धनी किसानों की माँग है। उनका कहना है कि उनके लेख में "जहाँ वाजिब मूल्य के लिए दबाव बनाने की रणनीति अपनाने की बात की गयी है, वह एक विशेष सन्दर्भ में है जब चीनी मिलों ने बिना किसी उपयुक्त कारण के पिछले साल के मुक़ाबले गन्ने का दाम एकाएक काफ़ी कम कर दिया था।" उनके कहने का तात्पर्य यह है कि उक्त "विशेष सन्दर्भ" में लाभकारी मूल्य की माँग उठाना जायज़ है। उनके इस धनी किसान प्रेम पर हमें एक बार फिर से हैरत हो रही है। लगता है श्रीमान इस बात को समझ सकने में ही अक्षम हैं कि लाभकारी मूल्य की लड़ाई असल में समाज में सर्वहारा वर्ग के शोषण से पैदा होने वाले कुल बेशी मूल्य में औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग, व्यापारिक बुर्जुआ वर्ग तथा अन्य शोषक वर्गों की बनिस्पत कृषि बुर्जुआ वर्ग का हिस्सा बढ़ाने की लड़ाई है। और इस लड़ाई में कृषि बुर्जुआ वर्ग का साथ देने का सवाल ही नहीं उठता।

समाजवादी व्यवस्था में मँझोले किसानों के प्रति सर्वहारा वर्ग के रवैये के बारे में

श्रीमान एस. प्रताप सवाल उठाते हैं कि, "...समाजवादी निर्माण की समस्याओं के मद्देनज़र भी क्या उसे (मँझोले किसान को) सर्वहारा के संश्रयकारी के रूप में गोलबन्द करना आवश्यक नहीं है?" जी हाँ, बिल्कुल आवश्यक है। सर्वहारा वर्ग और उसकी पार्टी ऐसा ही करेगी। मगर तब राज्यसत्ता पर सर्वहारा वर्ग का क़ब्ज़ा होगा जिसके पीछे करोड़ों अर्द्धसर्वहारा आबादी खड़ी होगी। तब सर्वहारा के पास ऐसे अनेक संसाधन मौजूद होंगे कि बहुत-सी रियायतें देकर भी मँझोले किसानों को अपने पक्ष में जीतना सम्भव होगा। तब मँझोले किसान भी आज जैसे नहीं रह जायेंगे। क्योंकि समाजवाद में ज़मीन की ख़रीद-फ़रोख़्त तथा भाड़े के मज़दूरों से काम कराने पर पाबन्दी होगी। इन अर्थों में न तो मँझोले किसान निजी सम्पत्ति के मालिक रह जायेंगे और न ही श्रम-शक्ति के शोषक। वे बस इन्हीं अर्थों में मँझोले किसान होते हैं कि वे अनाज बेचते हैं और बाक़ी समाज की क़ीमत पर मुनाफ़ा बटोरते हैं। रूस में अक्टूबर क्रान्ति के बाद सर्वहारा सत्ता ने किसानों की फ़सलों के दाम तीन गुना बढ़ा दिये थे, और किसानों को सस्ती खेती-मशीनरी सहित अन्य अनेक सुविधाएँ उपलब्ध करायीं, जिससे मँझोले किसानों का सर्वहारा राज्यसत्ता में विश्वास बना।

समाजवाद में सामूहिक खेती के ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद होते हैं, जिनके ज़रिये मँझोले किसानों को सामूहिक खेती में शामिल होने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। श्रीमान एस. प्रताप की जानकारी के लिए बता दें कि समाजवाद पूँजीवाद से गुणात्मक रूप से भिन्न होता है। मँझोले किसानों के प्रति सर्वहारा वर्ग की जो नीति समाजवाद में होगी, वही नीति पूँजीवाद में नहीं हो सकती है। आज हम किसानों के लाभकारी मूल्य तथा सब्सिडी आदि माँगों का विरोध करते हैं, मगर समाजवाद में सर्वहारा राज्य ख़ुद किसानों को यह सब देता है, क्योंकि तब यह सर्वहारा वर्ग के हित में होगा। इससे मज़दूर किसान संश्रय मज़बूत होगा, जोकि सर्वहारा अधिनायकत्व की सुदृढ़ता का आधार है।

(बिगुल, दिसम्बर 2004)

मँझोले किसानों के बारे में सर्वहारा दृष्टिकोण का सवाल – दो

एस. प्रताप

इस बार बहस में शामिल लेख में प्रवचन अधिक है और मार्क्सवादी विश्लेषण कम। अहम्मन्यतापूर्ण ग़ुस्से के अतिरेक से लगता है कि साथी सुखदेव की तबीयत ख़राब हो गयी है। मेरी सलाह है कि वे थोड़ी देर तक लम्बी-लम्बी साँस लें और आराम करें। मेरा यह लेख उनके लिए ग्लूकोज़ का काम करेगा। लेकिन साथ ही मैं साथी सुखदेव को इस बात के लिए धन्यवाद देना चाहता हूँ कि उनके लेख ने मुझे इस विषय पर और अधिक गहराई से सोचने-समझने में मदद दी है।

बहस को आगे बढ़ाते हुए अपनी बात शुरू करने से पहले यहाँ एक बात स्पष्ट होते हुए भी फिर से स्पष्ट कर देना ज़रूरी लग रहा है। यह बहस अब किसी एक लागत मूल्य घटाने की माँग पर केन्द्रित नहीं रह गयी है। मँझोले किसान कौन हैं और उनके प्रति सर्वहारा दृष्टिकोण क्या हो? बहस अब इस सवाल पर केन्द्रित है। मँझोले किसानों को सर्वहारा वर्ग के संश्रयकारी के रूप में कैसे और किन माँगों पर गोलबन्द किया जा सकता है? – इसी सन्दर्भ में मैंने धनी किसानों की लाभकारी मूल्य की माँग के समानान्तर छोटे-मँझोले किसानों के लिए लागत मूल्य घटाने की माँग उठाने की बात की है। इस माँग को सर्वहारा विरोधी बताते हुए सम्पादक-मण्डल के दो लेख आये और उसमें इसके समानान्तर छोटे-मँझोले किसानों को संगठित करने के लिए सम्पादक-मण्डल ने माँगों की एक लम्बी सूची भी पेश की। मैं मूरख सम्पादक-मण्डल और उससे पहले आये साथी नीरज के लेख के तर्कों से सहमत नहीं हो सका और लम्बे अन्तराल के बाद एक लेख लिखकर बहस को फिर से शुरू करने का पाप कर दिया। मैंने अपने लेख में मुख्यतः तीन सवाल उठाये थे :

1. मैंने अपने लेख में यह दिखाया था कि कैसे सम्पादक-मण्डल छोटे-मँझोले किसानों के लिए लागत मूल्य घटाने की माँग को सर्वहारा विरोधी बताते हुए भी ख़ुद उनके लिए लागत मूल्य घटाने की माँग की वकालत करता है। सम्पादक-मण्डल ने अपने लेख 'किन माँगों पर लड़ेंगे छोटे-मँझोले किसान' में माँगों की जो लम्बी सूची पेश की है – उनमें एक को छोड़कर अन्य सभी माँग देश में सभी पेशों-धन्धों से जुड़ी ग़रीब और मध्यवर्गीय आबादी की सामान्य माँगें हैं। एक ही माँग है और वह है छोटे-मँझोले किसानों को रियायती दर पर बिजली-पानी

देने की माँग। बिजली-पानी खेती की महत्त्वपूर्ण लागत है। यदि बिजली-पानी को रियायती दर पर देने की माँग उठायी जा सकती है तो यह तर्क खाद-बीज कीटनाशक आदि पर भी लागू किया जा सकता है। यानी, सम्पादक-मण्डल एक तरफ़ तो लागत मूल्य घटाने की माँग को सर्वहारा विरोधी बताता है और दूसरी तरफ़ ख़ुद यह माँग उठाने की वकालत भी करता है। साथी सुखदेव अपने लेख में इस पर चुप्पी साध गये हैं।

सम्पादक-मण्डल ने अपनी माँगों की लम्बी सूची प्रस्तुत करते हुए एक और बात भी कही है। उसका कहना है कि पूँजीवादी विकास ने सभी मध्यवर्गीय तबक़ों की माँगों में समानता ला दी है। लेकिन क्या उत्पादन में लगे मध्यवर्गीय तबक़ों और सेवाओं, व्यापार आदि में लगे मध्यवर्गीय तबक़ों को एक साथ गोलबन्द करना सम्भव है? और यदि ऐसा हो भी जाये तो भी उत्पादन में लगे मध्यवर्गीय तबक़ों की मुख्य माँग तो उत्पादन से ही जुड़ी हुई होगी। ऐसी स्थिति में माँगों की सूची में से खेती की लागत घटाने से जुड़ी बिजली-पानी को रियायती दर पर देने की माँग ही छोटे-मँझोले किसानों की मुख्य माँग होगी। इस हालत में क्या सम्पादक-मण्डल छोटे-मँझोले किसानों के लिए मुख्य माँग के रूप में लागत मूल्य घटाने की माँग की वकालत नहीं कर रहा है?

2. लागत मूल्य घटाने की माँग को सर्वहारा विरोधी बताते हुए सम्पादक-मण्डल ने जो मार्क्सवादी विश्लेषण प्रस्तुत किया है, मैंने अपने लेख में उसके एकांगीपन और उसके अन्तरविरोधों को उजागर कर दिया था। सम्पादक-मण्डल का कहना था कि लागत मूल्य घटाने यानी खाद-बीज, बिजली-पानी आदि का दाम घटने से इसकी क़ीमत खाद-बीज आदि के उद्योगों के मज़दूरों को ही चुकानी पड़ेगी। पूँजीपति अपना मुनाफ़ा क़ायम रखने के लिए मज़दूरों को और अधिक निचोड़ेंगे, मशीनीकरण आदि के द्वारा मज़दूरों की भारी आबादी को बेकारी के दलदल में धकेल देंगे। मैंने सवाल उठाया था कि महँगाई के ख़िलाफ़ आम जनता के आन्दोलन भी औद्योगिक उत्पादों के दाम घटाने की माँग करते हैं – ऐसे में सम्पादक-मण्डल के तर्कों के अनुसार इससे भी उन उद्योगों में काम करने वाले मज़दूरों पर क़हर टूटेगा। तो क्या सम्पादक-मण्डल महँगाई विरोधी आन्दोलनों के ख़िलाफ़ है? मैंने दिखाया था कि सम्पादक-मण्डल इस पूरे मामले में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की भूमिका को नज़रअन्दाज़ कर देता है। इसलिए उसका मार्क्सवादी विश्लेषण एकांगीपन का शिकार है। और यह कि इस तर्क के सहारे छोटे-मँझोले किसानों के लिए लागत मूल्य की माँग उठाने को सर्वहारा विरोधी नहीं कहा जा सकता है। साथी सुखदेव इस सवाल पर भी चुप्पी साध गये हैं।

3. लागत मूल्य घटाने की माँग को सर्वहारा विरोधी बताते हुए सम्पादक-मण्डल और साथी नीरज का मुख्य तर्क था, किसानों की लागत में मज़दूरी भी शामिल होती है और इसलिए इस माँग को उठाने का मतलब होगा – मज़दूरी कम करने की माँग। मैंने अपने लेख में कहा था कि मँझोला किसान मुख्यतः और मूलतः अपने श्रम पर आधारित खेती करता है और कभी-कभी और आपात स्थितियों में ही मज़दूर लगाता है, इसलिए उसकी माँग में मज़दूरी या किसी भी रूप में श्रम की लागत घटाने की माँग शामिल नहीं हो सकती है। इसलिए इस तर्क के सहारे इसे सर्वहारा विरोधी माँग का दर्जा नहीं दिया जा सकता है।

साथी सुखदेव ने इसी सवाल पर अपने को केन्द्रित किया है और मुक्का ठोंककर घोषित कर दिया है कि मँझोले किसान की खेती अब उजरत पर ही आधारित होती है। हालाँकि "वे इतना अधिक मुनाफ़ा नहीं कमा पाते कि वे इसे खेती में पुनः निवेश करके और ज़मीन ख़रीद कर धनी किसानों की जमात में शामिल हो सकें। ऐसा इनमें से बहुत कम ही कर पाते हैं। इनमें से ज़्यादातर की नियति यही होती है कि इन्हें देर-सबेर उजरती सर्वहाराओं-अर्द्धसर्वहाराओं की क़तारों में ही शामिल होना होता है।"

स्पष्ट है कि अब बहस मुख्यतः इस सवाल पर आकर टिक गयी है कि मँझोला किसान कौन है? हम किसे कहेंगे मँझोला किसान?

सबसे पहले तो मैं यह बात कहना चाहूँगा कि समाजवादी क्रान्ति के दौर में ऐसा कोई भी वर्ग सर्वहारा वर्ग का दोस्त नहीं हो सकता, जिसका अस्तित्व उजरती श्रम के शोषण पर टिका हो। साथी सुखदेव और सम्पादक-मण्डल जिसे मँझोला किसान कह रहे हैं अगर वही मँझोला किसान है तो उसे संगठित करने की बात ही भूल जानी चाहिए। वह अपने पूरे अस्तित्व के साथ सर्वहारा क्रान्ति का विरोधी है। ऐसे में सम्पादक-मण्डल द्वारा उसे संगठित करने के लिए जो लम्बी सूची पेश की गयी है – वह एक प्रतिक्रियावादी क़दम है। और दरअसल ऐसा ही है भी। क्योंकि जिसे वे मँझोला किसान कह रहे हैं, वह सर्वहारा का संश्रयकारी मँझोला किसान नहीं, छोटा-मोटा कुलक है, धनी किसान है।

दरअसल, खेती में पूँजीवादी विकास और वर्ग विभेदीकरण के साथ ही पाँच तरह के वर्ग अस्तित्व में आते हैं : पूँजीवादी भूस्वामी; जो लगभग उद्योग की तरह ही अपनी खेती करता है, उसकी खेती पूरी तरह उजरत पर आधारित होती है। लेकिन उत्पादन प्रक्रिया में वे ख़ुद अपना कोई श्रम नहीं लगाते हैं।

धनी किसान या कुलक; जिनकी खेती मुख्यतः और मूलतः उजरती श्रम पर आधारित होती है। लेकिन उत्पादन प्रक्रिया में वे ख़ुद भी अपना श्रम लगाते हैं।

मँझोला किसान; जिसकी खेती मुख्यतः और मूलतः उसके ख़ुद के श्रम पर आधारित होती है, लेकिन कभी-कभी वह मज़दूर भी लगाता है। मँझोले किसानों के वर्ग-चरित्र को समझने के लिए इसे तीन हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है – उच्च-मध्यम किसान का वर्ग-चरित्र कुलकों के नज़दीक का होता है और मँझोले किसानों का यही हिस्सा कभी-कभी मज़दूर लगाता है। मध्यम-मध्यम किसानों का हिस्सा अपने श्रम पर आधारित खेती करता है। निम्न-मध्यम किसानों का हिस्सा निचली पैड़ी पर खड़े ग़रीब किसानों के नज़दीक का होता है और यह कभी-कभी मज़दूरी भी करता है।

इसके बाद आते हैं ग़रीब किसान और मज़दूर। मँझोले किसानों का बुनियादी चरित्र उसके बीच वाले हिस्से से ही निर्धारित होता है, इसका ऊपर वाला हिस्सा और नीचे वाला हिस्सा उसके चरित्र के उन पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं, जो एक तरफ़ तो इसकी कुलकों से नज़दीकी और दूसरी तरफ़ सर्वहारा वर्ग से नज़दीकी दिखाते हैं और भविष्य की इसकी गति को चिह्नित करते हैं।

लेनिन जहाँ कहीं भी मँझोले किसानों को सर्वहारा वर्ग के दोस्त के रूप में साथ लेने की

वकालत करते हैं वहाँ वे इसके उस वर्ग-चरित्र पर ज़ोर देते हैं जो मुख्यतः और मूलतः अपने श्रम पर आधारित खेती करता है और उजरती श्रम का शोषण नहीं करता है। लेकिन जब वे ऐसे लोगों से निपट रहे होते हैं, मसलन मेंशेविकों से, जो मँझोले किसानों को सर्वहारा की तरह ही मेहनतकश बताते हैं, तो वे उनके मंसूबों का पर्दाफ़ाश करते हुए मँझोले किसान के उस वर्ग-चरित्र को पूरे ज़ोर के साथ चिह्नित करते हैं, जो उसे कुलकों का नज़दीकी बनाता है।

इसके अलावा, लेनिन द्वारा अलग-अलग समय पर लिखे लेखों में मँझोले किसान के अलग-अलग पक्षों पर ज़ोर शायद इसलिए भी हो कि पूँजीवादी विकास की अगली मंज़िलों में मँझोले किसानों के ऊपरी स्तर का अनुपात बढ़ा हो। लेकिन इस पर मेरा कोई अध्ययन न होने से मैं इस पर कोई टिप्पणी नहीं कर सकता।

दरअसल पूँजीवादी विकास जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, जैसे-जैसे कृषि पूरी तरह बाज़ार पर निर्भर होती जाती है और जैसे-जैसे उत्पादन प्रक्रिया का मशीनीकरण होता जाता है, मँझोले किसानों के बीच वाले और निचले हिस्से का तेज़ी के साथ सर्वहाराकरण होता जाता है, जबकि ऊपर वाले हिस्से का कुलकीकरण होता जाता है। ख़ासकर खेती के विकसित इलाक़ों और उनमें भी ख़ासकर नक़दी फ़सलों और औद्योगिक फ़सलों वाले इलाक़ों में यह प्रक्रिया तेज़ी के साथ घटित हुई और हो रही है। यहाँ मँझोले किसानों के बीच वाले हिस्से का अस्तित्व तेज़ी के साथ मिट रहा है। इस पर कोई ठोस अध्ययन मेरी जानकारी में नहीं है। लेकिन इतना तय है कि इन इलाक़ों में अपने श्रम पर आधारित खेती करने वाला मँझोले किसानों का यह हिस्सा नगण्य होता जा रहा है। इस बीच वाले हिस्से और निचले हिस्से के सर्वहाराकरण से सर्वहाराओं और ग़रीब किसानों की संख्या तेज़ी के साथ बढ़ रही है। इसके साथ ही मँझोले किसानों के ऊपरी हिस्से का कुलकीकरण भी बढ़ा है और अब वह क़र्ज़ लेकर खेती में निवेश करता है तथा मुख्यतः उजरत पर आधारित खेती करता है। दरअसल यह प्रक्रिया जैसे-जैसे आगे बढ़ती है हमारे लिए मँझोले किसानों का सवाल ही समाप्त हो जाता है। इसका बैरोमीटर है बीच वाला हिस्सा। अगर अपने श्रम पर आधारित खेती करने वाले मँझोले किसानों का हिस्सा संख्या की दृष्टि से नगण्य हो गया तो फिर सर्वहारा क्रान्ति के लिए मँझोले किसानों का जटिल पचड़ा ही समाप्त हो गया। क्योंकि इसके साथ इसी प्रक्रिया में उसके ऊपरी हिस्से का कुलकीकरण हो जाता है और निचला हिस्सा ग़रीब किसानों और सर्वहाराओं की जमात में जा खड़ा होता है। छोटी जोत वाले वे किसान जो क़र्ज़ लेकर मुख्यतः उजरत पर आधारित खेती करते हैं, वे मँझोले किसान नहीं छोटे-मोटे कुलक हैं। देहातों में सर्वहारा वर्ग की मज़दूरी की लड़ाई के ख़िलाफ़ वे बड़े कुलकों से कम उग्रता के साथ नहीं खड़े होंगे। बड़ी पूँजी छोटी पूँजी को निगल जाती है सो वे भी तबाह हो जायेंगे। लेकिन उनके बारे में हम तभी सोचेंगे जब वे तबाह होकर सर्वहारा की पाँतों में शामिल हो जायेंगे।

हाँ, एक बात यहाँ और ध्यान देने की है। जब तक छोटी जोत वाले इन कुलकों का आधार बना रहेगा और जब तक खेती का पूँजीवादी विकास उस मंज़िल पर नहीं पहुँचता कि अन्य वर्गों को हज़म कर पूँजीवादी भूस्वामी वर्ग एकमात्र शोषक वर्ग के रूप में खड़ा हो जाये तब तक समाजवादी क्रान्ति के बाद मँझोले किसानों की समस्या फिर से उठने की

सम्भावना बनी रहेगी, क्योंकि छोटी जोत वाले कुलक उस समय उजरत का शोषण नहीं कर सकेंगे और मँझोले किसान बन जायेंगे।

खेती के अपेक्षाकृत कम विकसित और पिछड़े इलाक़ों में भी उपर्युक्त प्रक्रिया जारी है और उदारीकरण के बाद तेज़ हुई है। लेकिन अभी यहाँ उन मँझोले किसानों का आधार इतना नहीं सिकुड़ा है जो अपने श्रम पर आधारित खेती करते हैं। हालाँकि, यहाँ भी मँझोले किसानों के ऊपरी हिस्से का कुलकीकरण और बीच व निचले हिस्से का सर्वहाराकरण तेज़ी से बढ़ा है। जिसके चलते ही ग़रीब किसानों और मज़दूरों की संख्या तेज़ी के साथ बढ़ी है। यहाँ एक ऐसी प्रक्रिया भी दिखायी देती है, जिसमें खेती में पूँजी के विकास के अलावा कई अन्य फ़ैक्टर भी मँझोले किसानों के एक हिस्से के कुलकीकरण को गति दे रहे हैं। ज़मींदारी टूटने के बाद उच्च जातियों के मँझोली जोत के किसानों ने ग़रीबी झेलते हुए भी लम्बे समय तक हल नहीं पकड़ा था, बाद में पूँजीवादी विकास से पैदा हुई अनुकूल परिस्थितियों और पूँजी की मार ने उन्हें सच्चे अर्थों में मँझोला किसान बना दिया था। हालाँकि फिर भी उच्च जातियों और मध्यम व निम्न जातियों के मँझोले किसानों में इतना अन्तर तो रहा ही कि उच्च जातियों की औरतें सामान्यतः खेत में काम करने नहीं जाती हैं। अब एक बार फिर परिवार की कृषि से इतर, नौकरी या अन्य व्यवसाय से आय बढ़ते ही इस मँझोले किसान का कुलकीकरण तेज़ी से बढ़ा है। भले ही उस ज़मीन से उसे कुछ ख़ास हासिल न हो, वह उसे बेचता नहीं है। वह उसकी नाक है। यहीं से उभयजीवी वर्गों (गाँव में मँझोले या धनी किसान और शहर में मज़दूर) की समस्या भी पैदा होती है। वह पूरी खेती बटाई पर दे देता है या मज़दूर लगाकर खेती करता है। उसमें से उसे कुछ मुनाफ़ा हासिल हो या नहीं, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, हम उसे मँझोला किसान नहीं कह सकते। वह अपने पूरे अस्तित्व के साथ सर्वहारा विरोधी है। अन्य जातियों के मँझोले किसानों में भी यह परिघटना दिखायी देती है। लेकिन उच्च जातियों के मँझोले किसानों में यह अधिक देखने को मिलती है। शायद ऐसा इसलिए भी हो कि उच्च जातियों के मँझोले किसानों की कृषि से इतर आय अन्यान्य कारणों से अधिक बढ़ी हो। लेकिन श्रम विरोधी जातिगत मानसिकता भी इसमें भूमिका निभाती है। अमूमन छोटी-मँझोली जोत के इन कुलकों को मँझोला किसान समझ लिया जाता है। ज़मींदारी टूटने के बाद पैदा हुए छोटी-मँझोली जोत के उच्च जातियों के कुलकों को भी मँझोला किसान समझने की ही सोच मौजूद रही है। देहात के इलाक़ों में मज़दूरों का सशक्त आन्दोलन ही इस जटिलता को समाप्त कर सकता है क्योंकि इससे या तो वे उजड़ जायेंगे, या फिर सच्चे अर्थों में मँझोले किसान बन जायेंगे।

इस तरह पूँजी की मार से तबाह होने के साथ ही अन्य प्रक्रियाओं के ज़रिये भी उस मँझोले किसान का आधार सिकुड़ रहा है जो अपने श्रम पर आधारित खेती करता है। लेकिन फिर भी ये प्रक्रियाएँ इतनी तेज़ नहीं हैं कि यहाँ भी मँझोले किसान के पचड़े से हमें जल्दी मुक्ति मिल सके। हालाँकि इस पर भी कोई अध्ययन उपलब्ध न होने से ठोस-ठोस कुछ भी कह पाना फ़िलहाल सम्भव नहीं है। मेरे ख़याल से उपर्युक्त चर्चा में साथी सुखदेव के तमाम सवालों का जवाब आ चुका है। और अब समझ के इस धरातल पर खड़े होकर ख़ुद मेरे

लिए भी यह सवाल खड़ा हो गया है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश के विकसित खेती के इलाक़ों में यदि मँझोले किसान का आधार तेज़ी के साथ सिकुड़ रहा है तो भला वहाँ मँझोले किसानों को संगठित करने के लिए लागत मूल्य की माँग क्यों उठायी जाये? यूँ तो अध्ययन के बाद ही किसी ठोस नतीजे पर पहुँचा जा सकता है, लेकिन ऐसा लगता है कि खेती के विकसित इलाक़ों में मँझोले किसानों का सवाल लगभग समाप्त हो चुका है या फिर निकट भविष्य में समाप्त हो जायेगा।

साथी सुखदेव की मूर्खतापूर्ण कटूक्तियों और उनके मार्क्सवादी विश्लेषण पर टिप्पणी करने की मूर्खता तो मैं नहीं करना चाहता, लेकिन यहाँ बिन्दुवार कुछ बातें कह देना उचित होगा।

मैंने अपने लेख में कहा था कि :

– मँझोले किसानों को संगठित करने का सवाल तब तक हाथ में नहीं लिया जा सकता जब तक देहात में कम्युनिस्टों के नेतृत्व में सशक्त मज़दूर आन्दोलन पैदा न हो गया हो। लागत मूल्य के सवाल पर किसानों को संगठित करने की समस्याओं को इस बात को ध्यान में रखकर ही देखा जाना चाहिए।

– मँझोला किसान मुनाफ़े के लिए खेती नहीं करता है। खेती पिछड़ी हुई थी, तो वह लगभग सभी फ़सलें खुद ही उगा लेता था। खेती में पूँजीवादी विकास के बाद किसान सिर्फ़ कुछ फ़सलें ही उगाते हैं और उन्हें बेचकर ज़रूरत की अन्य फ़सलें बाज़ार से ख़रीदते हैं। इसलिए फ़सलों का लाभकारी मूल्य बढ़ने से उनका कोई फ़ायदा नहीं होगा। दूसरी तरफ़, लागत मूल्य बढ़ने से पूँजी न होने के चलते उनके लिए खेती करना सम्भव नहीं रह गया है। लागत घटने से उनको यह फ़ायदा होगा। साथ ही यदि इससे अनाज का दाम गिरता है तो उनका नुक़सान नहीं होगा क्योंकि वे कुछ फ़सलें बेचते हैं और कुछ फ़सलें ख़रीदते हैं। यह सामान्य स्थिति है – छोटे-बड़े मँझोले किसानों के हिसाब से गणित लगाने पर इसमें उतनी जटिलता तो सामने आनी ही है, जितनी जटिलता मध्यम वर्ग के चरित्र के साथ जुड़ी है।

– उद्धरण को काँटने-छाँटने का आरोप ग़लत है – उससे उसका मतलब और सन्दर्भ नहीं बदला है। बल्कि एक बात को सुखदेव ने उलटा कर दिया है – मैंने उद्धरण के माध्यम से यह कहा है कि लेनिन लागत मूल्य घटाने की माँग को सर्वहारा विरोधी माँग का दर्जा देते नहीं दिखायी देते – सुखदेव ने ऐसे लिखा है जैसे उद्धरण देकर यह कह रहा हूँ कि लेनिन लागत मूल्य घटाने की माँग उठाने की वकालत कर रहे हैं। दोनों बातें अलग-अलग हैं।

– मेरे लेख में वाजिब मूल्य पर दबाव बनाने की बात इस सन्दर्भ में थी कि चीनी मिल-मालिकों ने एकाएक गन्ने का दाम घटा दिया था। ऐसे में गन्ने की खेती करने वाले मँझोले किसानों के संगठन की यह व्यावहारिक मजबूरी होगी कि वे इसके विरोध में बोलें। लेकिन फिर भी मेरे लेख में यह एक रणनीति जैसी लगती है, इसलिए वह ग़लत है। लेकिन इसको लाभकारी मूल्य से अलग करके देखा जाना चाहिए। लाभकारी मूल्य की माँग का मतलब होता है, लागत पर कुछ प्रतिशत मुनाफ़ा जोड़कर फ़सल का दाम तय करने की माँग।

(बिगुल, जनवरी 2005)

मध्यम किसान और लागत-मूल्य का सवाल

बहस का सम्पादकीय समाहार

चूँकि इस पूरी बहस की शुरुआत लागत मूल्य घटाने की माँग के, सर्वहारा दृष्टिकोण से औचित्य-अनौचित्य को लेकर हुई थी, इसलिए हम यहीं से अपनी बात शुरू करना उचित समझते हैं।

इस पूरी बहस में सम्पादक-मण्डल पूरी तरह से साथी सुखदेव और साथी नीरज की अवस्थिति के साथ है। मध्यम किसानों को साथ लेने के लिए खेती का लागत मूल्य घटाने की माँग का समर्थन करना या स्वयं इस माँग पर उन्हें संगठित करना, या उन्हें ऐसा सुझाव देना, एक सर्वहारा अवस्थिति न होकर ठीक इसके उलट है।

इस पक्ष में हमारा पहला तर्क वही है जो हम 'बिगुल' जनवरी 2003 के अंक में दे चुके हैं। मान लें कि यदि उद्योगपति किसी किसान आन्दोलन की माँग मानकर कृषि उपकरणों-उर्वरकों-कीटनाशकों आदि की क़ीमत कम भी कर दें और मान लें कि यह घटोत्तरी किसी तरह की तीन-तिकड़म करके कृषि-उत्पादों के मूल्य में संक्रमित न होने दी जाये, तो भी पूँजीपति का मुनाफ़ा कम नहीं होगा बल्कि इसकी क़ीमत उसके कारख़ाने में काम करने वाले मज़दूर को चुकानी पड़ेगी। यानी मध्यम किसान की यह माँग मज़दूर वर्ग की क़ीमत पर ही पूरी हो सकती है। दूसरी बात यह कि यदि कृषि उपकरण, उर्वरक, बिजली, बीज आदि की क़ीमत घट भी जाये तो यह घटोत्तरी सीधे कृषि-उत्पादों के मूल्य में संक्रमित हो जायेगी। चूँकि मध्यम किसान अपने उत्पादों का उपभोग करने के साथ ही, और कुछ अन्य अनाज (जो वह पैदा नहीं करता) ख़रीदने के साथ ही, अपनी विभिन्न ज़रूरतों के लिए कुछ कारख़ाना-उत्पाद भी ख़रीदता है और इसके लिए उसे अपने कृषि-उत्पाद का एक हिस्सा बाज़ार में बेचना भी पड़ता है, अतः लागत मूल्य घटाने की माँग वस्तुतः उसे कोई ख़ास लाभ भी नहीं पहुँचा सकती। हाँ, यह उसे मज़दूर वर्ग के विरुद्ध अवश्य खड़ा कर देगी।

हम 'बिगुल' जनवरी 2003 में यह भी उल्लेख कर चुके हैं कि लागत मूल्य घटाने का तर्क सिर्फ़ यहीं तक जा सकता है कि मध्यम किसान चल पूँजी को, यानी श्रम-शक्ति पर होने वाले ख़र्च को घटाये, यानी अपने खेतों में काम करने वाले उजरती मज़दूरों को और अधिक निचोड़े। इस बारे में साथी एस. प्रताप का जवाबी तर्क था कि मध्यम किसान अपने खेतों में ख़ुद परिवार सहित श्रम करता है, उजरती मज़दूरों से काम ही नहीं लेता (बाद में कुछ सुधारकर उन्होंने अपनी अवस्थिति यूँ रखी कि उच्च-मध्यम किसान उजरती मज़दूरों से थोड़ा बहुत काम लेता है)। इस प्रश्न पर हम आगे विचार करेंगे।

●

लागत मूल्य घटाने की माँग का विरोध करने के पीछे हमारा जो बुनियादी तर्क है, वह यह है कि लागत मूल्य घटाने की माँग छोटे/मँझोले मालिकाने की किसानी अर्थव्यवस्था के प्रति मध्यम किसान के मोहभ्रम को बढ़ाने का काम करती है और उसे सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी से दूर बड़े मालिक किसानों के निकटतर ले जाने का काम करती है। एकदम शुरू से ही कम्युनिस्ट आन्दोलन का बुनियादी काम यह होता है कि वह छोटे-मँझोले किसान का यह वहम दूर करे कि पूँजीवादी व्यवस्था में वह धनी हो सकता है, या यहाँ तक कि, उसकी अर्थव्यवस्था अपना अस्तित्व बनाये रख सकती है। यह वहम, जब तक और जिस हद तक, बना रहेगा, तब तक और उस हद तक, मँझोले किसान पूँजीवादी फ़ार्मरों-कुलकों-धनी किसानों के ही पिछलग्गू बने रहेंगे। मार्क्स ने काफ़ी पहले, *'लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर'* में ही यह महत्त्वपूर्ण स्थापना दे दी थी कि किसान *"जैसे ही छोटी खेती में अपना विश्वास त्याग देंगे, वैसे ही इस छोटी खेती पर खड़ी समूचे राज्य की अट्टालिका धराशायी हो जायेगी।"*

लेनिन ने किसानी के सवाल पर विचार करते हुए इस मसले पर बार-बार और बहुत अधिक ज़ोर दिया है कि कम्युनिस्ट छोटे मालिकाने की खेती की पूँजीवाद के अन्तर्गत अपरिहार्य तबाही के बारे में छोटे-मँझोले किसानों को लगातार बताते हैं और उन्हें इस सच्चाई से अवगत कराते हैं कि सर्वहारा वर्ग के साथ खड़ा होकर पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध संघर्ष ही उनके सामने एकमात्र व्यावहारिक विकल्प है। कम्युनिस्ट किसी भी परिस्थिति में ऐसे किसी नारे या माँग का समर्थन नहीं कर सकते जो छोटे-मँझोले मालिकों को थोड़ी देर के लिए भी सीधे सर्वहारा वर्ग के विरुद्ध बड़े मालिकों के पक्ष में खड़ा कर देती हो। सर्वहारा वर्ग सर्वहारा क्रान्ति के संश्रयकारी वर्ग के हितों का इस रूप में पक्षधर कदापि नहीं हो सकता कि उसे अपने शत्रु वर्ग के पाले में धकेल दे। एस. प्रताप स्वयं स्वीकार करते हैं कि "लागत मूल्य घटाने का भी कुल मिलाकर सबसे अधिक फ़ायदा धनी किसानों को ही होगा" लेकिन फिर भी एक "तात्कालिक माँग" के रूप में वे इस माँग के पक्षधर हैं। क्योंकि *"यह उन्हें सर्वहारा वर्ग के क़रीब खड़ा कर सकती है(?), क्योंकि यह महँगाई पर रोक लगाने की व्यापक जनता की माँग से जुड़ती है।"* यहाँ फिर साथी एस. प्रताप एक लचर तर्क प्रस्तुत करते हुए नज़र आते हैं। लागत मूल्य घटाने की माँग का बुनियादी चरित्र यह है कि यह भी मुख्यतः धनी किसान की ही माँग है, यह मध्यम व छोटे किसानों को एक विभ्रम का शिकार बनाकर गाँव के पैमाने के मुख्य शत्रु पूँजीवादी फ़ार्मरों-कुलकों के साथ नत्थी कर देती है और मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ ले जा खड़ा करती है।

साथी एस. प्रताप सवाल उठाते हैं कि "क्या सम्पादक-मण्डल महँगाई के ख़िलाफ़ व्यापक जनता के आन्दोलन के विरोध में खड़ा होगा? क्योंकि यह माँग भी अन्य औद्योगिक उत्पादों के दाम घटने या उनका दाम बढ़ने से रोकने की वकालत करती है। ऐसे में उन उद्योगों में काम करने वाले मज़दूरों को ही इसकी क़ीमत चुकानी होगी।" हमारा सीधा-सा उत्तर होगा – नहीं। महँगाई के ख़िलाफ़ व्यापक जनता का आन्दोलन बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी और निम्न मध्य वर्ग का साझा आन्दोलन होता है जो बाज़ार में राशन, कपड़ा, दवा व उपभोग

की अन्य वस्तुओं की बढ़ती क़ीमतों से परेशान होता है। ग़ौरतलब है कि महँगाई-विरोधी जन-आन्दोलन उसी बहुसंख्यक आबादी के सभी वर्गों का संयुक्त आन्दोलन होता है जो खेतों-कारख़ानों में उन सभी वस्तुओं का उत्पादन करती है। यह संयुक्त आन्दोलन जनता के किसी एक वर्ग को दूसरे के ख़िलाफ़ नहीं खड़ा करता, बल्कि उन सभी उत्पादक वर्गों द्वारा उपभोग की वस्तुओं की महँगाई के विरुद्ध संगठित होता है, जो इसके साथ-साथ अपनी पगार बढ़ाने के लिए भी लड़ते हैं। इस तरह पूँजीपतियों और पूँजीवादी फ़ार्मरों पर सभी मेहनतकश वर्गों का दबाव दोनों ओर से साथ-साथ पड़ता है। उपभोक्ता वस्तुओं की क़ीमतें घटाने के लिए बहुसंख्यक आबादी के संयुक्त आन्दोलन की तुलना कृषि का लागत मूल्य घटाने के लिए मालिक किसानों के आन्दोलन से करना सरासर मूर्खता होगी, क्योंकि यह आन्दोलन उत्पादक मेहनतकश वर्गों का साझा आन्दोलन नहीं है, बल्कि यह छोटे-मँझोले मालिक किसानों को लुटेरे बड़े मालिकों के साथ एकजुट करता है तथा सर्वहारा वर्ग के ख़िलाफ़ खड़ा करता है।

●

यहीं पर अपनी एक महत्त्वपूर्ण ग़लती की चर्चा, विश्लेषण और आत्मालोचना भी हम ज़रूरी समझते हैं। छोटे और मँझोले किसानों को मज़दूर वर्ग के साथ ऐक्यबद्ध करने वाली माँगों की चर्चा करते हुए 'बिगुल' के फ़रवरी, 2003 के अंक में हमने लिखा था : "ग़रीब और मँझोले किसानों की माँग यह होनी चाहिए कि ज़मीन सहित उत्पादन के साधनों के स्वामित्व की एक सुनिश्चित मात्रा को पैमाना बनाकर, धनी किसानों और अन्य ग्रामीण पूँजीपतियों से बिजली और पानी की क़ीमत वसूली जानी चाहिए, जबकि उन सभी किसानों को जो मुनाफ़े के लिए पैदा नहीं करते सापेक्षतः रियायती दर पर बिजली-पानी आदि मिलना चाहिए।" हमारी इस माँग की साथी एस. प्रताप ने सही ही आलोचना की है। यह माँग उक्त लेख में दी गयी अन्य माँगों से मेल नहीं खाती, बल्कि एकदम विपरीत चरित्र रखती है। ज़ाहिरा तौर पर उक्त "रियायती दरों" की भरपाई पूँजीपतियों या धनी किसानों से नहीं बल्कि मज़दूरों को निचोड़कर ही की जायेगी, इसलिए मज़दूर वर्ग की पार्टी, तात्कालिक तौर पर भी, इस माँग का समर्थन नहीं कर सकती। यह माँग भी, धनी किसानों से वर्ग-विभेद करने की शर्त जोड़ने के बावजूद, मध्यम और छोटे किसानों को मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ खड़ा करती है और छोटे पैमाने के मालिकाने की उम्र लम्बी करने या कम से कम ऐसा भ्रम बनाये रखने का ही काम करती है। इस माँग को शामिल करने के पीछे, (एस. प्रताप की ही तरह) हमारे दिमाग़ में भी यह भ्रामक तर्क काम कर रहा था कि समाजवादी क्रान्ति के बाद भी तो मध्यम और छोटे मालिकों को ऐसी बहुतेरी रियायतें देनी पड़ती हैं। साथी सुखदेव (दिसम्बर, 2004) ने सही इंगित किया है कि क्रान्ति के बाद न तो ज़मीन की ख़रीद-फ़रोख़्त की और न ही भाड़े के मज़दूरों से काम कराने की इजाज़त होगी और इस तरह मँझोला किसान न तो श्रम-शक्ति का शोषक रह जायेगा और न ही मुनाफ़ा निचोड़कर धनी किसान बन पायेगा। वह सिर्फ़ इन अर्थों में मँझोला किसान रह जायेगा कि बाज़ार में अभी भी जारी माल-मुद्रा व्यवस्था के अन्तर्गत अनाज बेचेगा और शेष समाज की क़ीमत पर मुनाफ़ा बटोरेगा। लेकिन उस समय राज्यसत्ता पर सर्वहारा का क़ब्ज़ा होगा, उसके पीछे समूची सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी का

समर्थन होगा, उसके पास विपुल संसाधन होंगे। साथ ही, सामूहिक और राजकीय फ़ार्मों के सैकड़ों ऐसे उदाहरण होंगे, जिनके ज़रिये मँझोले किसानों को सामूहिकीकरण के लिए राजी किया जा सकेगा। इन हालात में जनता की सम्पत्ति (सार्वजनिक कोष) पर बोझ डालकर मँझोले किसानों को सर्वहारा वर्ग की सत्ता स्वयं ही रियायतें देती है ताकि उन्हें समाजवाद के पक्ष में लाया जा सके। अक्टूबर क्रान्ति के बाद ऐसा ही किया गया। लेकिन इस नीति को पूँजीवाद के अन्तर्गत लागू करने का मतलब होगा मँझोले किसानों को सर्वहारा वर्ग की क़ीमत पर बेहतरी देकर पूँजीवादी भूस्वामियों-फ़ार्मरों के पाले में धकेलना। समाजवादी क्रान्ति की मंज़िल में छोटे और मँझोले किसानों के लिए आन्दोलन के मुद्दों की जो एक कामकाजू सूची हमने फ़रवरी, 2003 के अंक में प्रस्तुत की थी, उसमें "बिजली-पानी की रियायती दरों" की माँग को क़त्तई शामिल नहीं किया जा सकता। हाँ, आम उपभोग के लिए समूची जनता को बिजली-पानी भी (शिक्षा और चिकित्सा-सुविधा की ही तरह) निःशुल्क उपलब्ध कराना अवश्य एक ऐसी माँग है, जिसे उस सूची में स्थान दिया जा सकता है।

●

साथी एस. प्रताप ने (जनवरी, 2005) साथी सुखदेव के उद्धरणों-तर्कों (दिसम्बर 2004) की अनदेखी करते हुए उन पर प्रवचन एवं अहम्मन्यतापूर्ण कटूक्तियों का आरोप लगाया है, जबकि स्वयं अपनी टिप्पणी की शुरुआत वे काफ़ी तिलमिलाहट भरी अनर्गल कटूक्तियों से करते हैं और फिर कुछ मान्य मार्क्सवादी प्रस्थापनाओं का पिष्टपेषण करते हुए दायें-बायें खिसककर अपनी ग़लती कुछ हद तक "मानते हुए भी" अपनी इस बात पर कुछ अगर-मगर लगाकर डटे रहते हैं कि "एक तात्कालिक माँग" के तौर पर लागत मूल्य घटाने की माँग का समर्थन सर्वथा उचित है। गन्ना किसानों से सम्बन्धित टिप्पणी में "विशेष सन्दर्भ में" "वाजिब मूल्य के लिए दबाव बनाने की रणनीति" का औचित्य-प्रतिपादन करते हुए वे बिना किसी तर्क के इसे लाभकारी मूल्य के मुद्दे से अलग बताते हैं, लेकिन प्रकारान्तर से लाभकारी मूल्य का भी औचित्य-प्रतिपादन कर बैठते हैं (नवम्बर 2004)। यदि वे गन्ना किसानों पर अपनी टिप्पणी से लेकर अपने अन्तिम आलेख (जनवरी 2005) तक पर सरसरी निगाह डालें तो अपना दायें-बायें खिसकना और लीपापोती करना उन्हें स्वयं नज़र आ जायेगा।

नवम्बर 2004 की अपनी टिप्पणी में वे कहते हैं कि एंगेल्स जिसे छोटा किसान कहते हैं, उसे ही लेनिन मँझोला किसान कहते हैं। एंगेल्स को न केवल उन्होंने सर्वथा ग़लत समझा है, बल्कि अधूरा उद्धृत किया है। एंगेल्स मँझोले किसान को छोटा किसान नहीं कहते, बल्कि जर्मनी और फ्रांस की परिस्थितियों में उनका यह प्रवर्गीकरण ग़रीब किसानों और निम्न-मध्यम किसानों को ही अपने दायरे में समेटता है। *'फ्रांस और जर्मनी में किसानों का सवाल'* शीर्षक अपनी रचना में छोटे किसानों की स्थिति और उनके प्रति मज़दूर वर्ग की पार्टी के रुख़ की चर्चा के बाद उन्होंने अलग से बड़े भूमिधर किसानों और मँझोले किसानों की चर्चा की है। मँझोले किसानों के बारे में वे लिखते हैं : *"मँझोला किसान जहाँ छोटी जोत वाले किसानों के बीच रहता है, वहाँ उसके हित और विचार उनके हित और विचारों से बहुत अधिक भिन्न नहीं होते। वह अपने तज़रबे से जानता है कि उसके जैसे कितने ही लोग छोटे किसानों की*

हालत में पहुँच चुके हैं। पर जहाँ मँझोले और बड़े किसानों का प्राधान्य होता है और कृषि के संचालन के लिए आमतौर पर नौकरों और नौकरानियों की आवश्यकता होती है, वहाँ बात बिलकुल दूसरी ही है। कहने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों की पार्टी को प्रथमतः उजरती मज़दूरों की ओर से, यानी इन नौकरों-नौकरानियों और दिहाड़ीदार मज़दूरों की ओर से ही लड़ना है। किसानों से ऐसा कोई वायदा करना निर्विवाद रूप से निषिद्ध है, जिसमें मज़दूरों की उजरती गुलामी को जारी रखना सम्मिलित हो। परन्तु जब तक बड़े और मँझोले किसानों का अस्तित्व है, वे उजरती मज़दूरों के बिना काम नहीं चला सकते। इसलिए छोटी जोत वाले किसानों को हमारा यह आश्वासन देना कि वे इस रूप में सदा बने रह सकते हैं, जहाँ मूर्खता की पराकाष्ठा होगी, वहाँ बड़े और मँझोले किसानों को यह आश्वासन देना ग़द्दारी की सीमा तक पहुँच जाना होगा" (*'फ्रांस और जर्मनी में किसानों का सवाल', फ्रे. एंगेल्स*)। एंगेल्स की इस रचना को यदि साथी एस. प्रताप ने ठीक से पढ़ा होता तो वे ऐसा क़तई नहीं कहते कि एंगेल्स मँझोले किसान को ही छोटा किसान कहते हैं। साथ ही, उन्हें काफ़ी हद तक किसानी के सवाल पर कम्युनिस्ट नज़रिये को भी जानने में मदद मिलती और वे यह समझ जाते कि मज़दूर वर्ग की पार्टी किसी भी रूप में छोटी जोत को बरक़रार रखने या ऐसा भ्रम देने की कोशिश नहीं करती और लागत मूल्य घटाने की माँग ऐसी ही एक कोशिश है।

इसी तरह वे लेनिन को आधा-अधूरा उद्धृत करते हुए यह सवाल उठाते हैं कि "जहाँ तक मँझोले किसानों का सवाल है, वे मज़दूर लगाकर खेती नहीं करते, तो भला मज़दूरी कम करने की माँग क्यों उठायेंगे?"(नवम्बर, 2004)। साथी सुखदेव ने जब उनके द्वारा उद्धृत अंश के अधूरेपन को इंगित किया है और इस बारे में लेनिन के कुछ और उद्धरण दिये हैं (दिसम्बर, 2004) तो अपनी मूल बात से थोड़ा दायें-बायें खिसककर साथी एस. प्रताप मध्यम किसान वर्ग का सर्वमान्य विभेदीकरण (उच्च-मध्यम, मध्य-मध्यम और निम्न-मध्यम किसान) प्रस्तुत करते हुए यह कहने लगते हैं कि यह उच्च-मध्यम किसान है जो "**कभी-कभी**" (ज़ोर हमारा) मज़दूर लगाता है, लेकिन फिर भी वे इस बात पर डटे रहते हैं कि जिसे साथी सुखदेव और सम्पादक-मण्डल ने मँझोला किसान कहा है, "वह सर्वहारा का संश्रयकारी मँझोला किसान नहीं, छोटा-मोटा कुलक है, धनी किसान है"(जनवरी, 2005)।

साथी सुखदेव ने आज की भारतीय पूँजीवादी खेती की उन विशिष्टताओं की चर्चा की है, जिसमें उच्च और मध्य मँझोले किसानों द्वारा मज़दूर लगाना तो आम चलन-सा हो ही गया है, निम्न-मध्यम और ग़रीब किसानों को भी विशेष स्थितियों में ऐसा करना पड़ता है। इस मसले पर पूर्व स्थिति से हटने और फिर भी अपने को सही सिद्ध करने के लिए सचमुच साथी एस. प्रताप को काफ़ी मेहनत करनी पड़ी है।

लेनिन ने मध्यम किसान का बार-बार ग्रामीण समाज के एक ऐसे मध्यवर्ती संस्तर के रूप में उल्लेख किया है जिसकी क़तारों से ग्रामीण बुर्जुआ वर्ग और ग्रामीण सर्वहारा वर्ग – दोनों की भर्ती होती है और पूँजीवादी विकास की परिस्थितियों में जिसकी अवस्थिति नितान्त अस्थिर होती है। उन्होंने इसे एक *"मरणशील संस्तर"*('डाइंग स्ट्रैटम') की संज्ञा दी है, जिसका एक छोटा-सा ख़ुशक़िस्मत हिस्सा ही सामाजिक क्रम-विकास की प्रक्रिया में ऊपर जा पाता

है और बड़ा हिस्सा नीचे, सर्वहारा संस्तरों की ओर धकेल दिया जाता है (एस.पी. ट्रापेज़्निकोव : 'लेनिनिज़्म एण्ड द एग्रेरियन एण्ड पीज़ेण्ट क्वेश्चन', खण्ड-1, पृ. 47)।

●

पूँजीवादी विकास के साथ बढ़ता वर्ग-ध्रुवीकरण मध्यम किसानों के पूरे संस्तर को ही सिकोड़ता चला जाता है। इस वर्ग का स्वयं तीन हिस्सों में विभेदीकरण तीव्र हो जाता है। उच्च-मध्यम किसानों का छोटा हिस्सा कुलकों की जमात में और निम्न-मध्यम किसानों का बहुसंख्यक हिस्सा सर्वहारा-अर्द्धसर्वहाराओं की क़तारों में जा मिलता है। बचा हुआ मध्य हिस्सा तब फिर मध्यम किसानों का समूचा वर्ग बन जाता है जो फिर क्रमशः तीन संस्तरों में विभाजित होकर ऊपर और नीचे की ओर गतिमान होता है। इस तरह गाँवों में भी क्रमशः पूँजी और श्रम के बीच ध्रुवीकरण स्पष्ट और तीखा होता जाता है। कृषि-आधारित और सम्बद्ध क्षेत्र का विकास इस प्रक्रिया को और तेज़ कर देता है। पूँजीवादी विकास के साथ ही कृषि से विनियोजित अधिशेष को उद्योगों व वित्तीय क्षेत्र में लगाने से जहाँ एक स्तर पर गाँव और शहर का अन्तर बढ़ता जाता है, वहीं, दूसरे स्तर पर, जैसाकि लेनिन ने लिखा है, "वाणिज्य के विकास के आगे बढ़ने के साथ ही, गाँव शहर के क़रीब आता जाता है"(ट्रापेज़्निकोव : पूर्वोद्धृत, पृ. 48)। धीरे-धीरे गाँवों में भी पूँजीवाद के अन्तरविरोध उतने ही स्पष्ट होते जाते हैं जैसेकि शहर में। हालाँकि, यह अलग से विस्तृत चर्चा का विषय है, पर यहाँ इतना उल्लेख ज़रूरी है कि पूँजीवादी उत्पादन की विशिष्ट प्रकृति के कारण और पूँजीवादी विकास के साथ-साथ सेवा क्षेत्र के विस्तार के चलते जहाँ शहरी मध्य वर्ग की उपस्थिति तो आगे भी न केवल बनी रहेगी बल्कि उसकी संख्या भी बढ़ेगी, वहीं छोटे और मँझोले पूँजीपतियों की भी अपेक्षा तेज़ गति से, मध्यम किसान वर्ग सिकुड़ता चला जायेगा। अब जो नयी समाजवादी क्रान्ति भारत जैसे पिछड़े पूँजीवादी देशों के एजेण्डे पर है, उसमें मध्यम किसान की (पहले से ही ढुलमुल दोस्त की) भूमिका अक्टूबर क्रान्ति के मुक़ाबले भी काफ़ी कम होगी। हम (1) भूमण्डलीकरण के इस नये दौर में गाँवों में वित्तीय पूँजी की बढ़ती पैठ, (2) किसान आबादी के विभेदीकरण और मध्यम किसान आबादी के कंगालीकरण की तीव्र से तीव्रतर होती गति तथा (3) शहरीकरण की तीव्र गति के बारे में विभिन्न एजेंसियों द्वारा प्रस्तुत तथ्यों एवं प्रक्षेपणों (प्रोजेक्शंस) पर निगाह डालें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि लगभग आधी सदी की मन्थर गति के बाद अब भारत में, और ऐसे तमाम पिछड़े पूँजीवादी देशों में, पूँजी का घोड़ा तमाम प्राक्-पूँजीवादी संरचनाओं को निर्णायक रूप से रौंद देने के लिए तैयार है। यह एक अलग से विस्तृत चर्चा का विषय है, लेकिन इस पूरी प्रक्रिया की इस तार्किक परिणति का यहाँ उल्लेख ज़रूरी है कि मध्यम किसान के सवाल की बहुतेरी जटिलताओं को इतिहास स्वयं हल करने की दिशा में उन्मुख है। छोटी और मँझोली जोत की तबाही का भविष्य स्वयं छोटे-मँझोले किसानों के सामने पहले हमेशा की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होता जा रहा है। ऐसे में, तात्कालिक तौर पर भी मज़दूर वर्ग के हरावल दस्ते द्वारा कोई ऐसी माँग प्रस्तुत करना, जो मँझोले मालिक किसानों को धनी मालिक किसानों के पक्ष में खड़ा करे, अव्वल दर्जे की आत्मघाती मूर्खता होगी, सरासर पागलपन होगा।

●

यहाँ इस बात पर भी ग़ौर करना ज़रूरी है कि लेनिन समाजवादी क्रान्ति के कार्यभारों के सन्दर्भ में जहाँ कहीं भी वर्ग-संश्रय की प्रकृति की चर्चा करते हैं, वहाँ वे सर्वहारा वर्ग के साथ ग़रीब किसानों की सुदृढ़ मैत्री पर, या दूसरे ढंग से, औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के साथ ग्रामीण सर्वहारा एवं अर्द्धसर्वहारा आबादी की सुदृढ़ मैत्री पर बल देते हैं। अधिकांशतः वे मध्यम किसानों के ढुलमुलपन की, उनके विरोध को पंगु या निष्प्रभावी बनाने की, उन्हें धनी किसानों के पक्ष में न जाने देने की या तटस्थ कर देने की ही चर्चा करते हैं, कहीं-कहीं ही वे उसके निचले संस्तरों को सक्रिय रूप से साथ लेने की चर्चा करते हैं। स्तालिन ने भी *'लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त'* में रूसी क्रान्ति की दूसरी अवस्था (मार्च 1917 से अक्टूबर 1917 तक) का समाहार करते हुए, क्रान्ति की मुख्य सेना के रूप में सर्वहारा वर्ग तथा उसके मुख्य सहायक या कोतल सेना के रूप में ग़रीब किसान तक की ही चर्चा की है, मध्यम किसान का उल्लेख तक नहीं किया है। समाजवादी क्रान्ति के वर्ग-संश्रय के प्रति लेनिन और स्तालिन की यह पहुँच आज, उनके समय से भी कई गुना अधिक ज़ोर के साथ लागू करने की ज़रूरत है। मध्यम किसान के साथ हमारा ज़ोर इस बात पर होना चाहिए कि वह धनी किसानों के साथ, और सभी शासक वर्गों के पक्ष में, यथासम्भव न खड़ा हो, गाँव व शहर की सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी के विरोध पक्ष में यथासम्भव न जाये, भरसक पूँजीवादी सत्ता-विरोधी माँगों पर वह सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी के साथ खड़ा हो और धनी किसानों के हाथों अपनी तबाही (क्योंकि वही उसकी ज़मीनें ख़रीदता है) को ज़्यादा से ज़्यादा प्रखर रूप में महसूस करे। उसकी हर ऐसी तात्कालिक माँग, जो उसे थोड़ी देर के लिए भी मालिक किसानों के साथ खड़ा करे, गाँवों में वर्ग-संघर्ष को तीखा करने के बजाय वर्ग-अन्तरविरोधों को धूमिल करने का ही काम करेगी और इसलिए वह पूर्णतः सर्वहारा-विरोधी होगी।

मध्यम किसान जिस हद तक उजरती ग़ुलामी का पक्षधर है, उस हद तक उत्पादन से जुड़ी उसकी किसी माँग को सर्वहारा वर्ग की पार्टी नहीं उठा सकती। स्वयं एक हद तक उजरती ग़ुलामी करने वाले के रूप में और उजरती मज़दूरों को निचोड़ने वाले बड़े किसानों के हाथों तबाह किये जाने के चलते, जिस हद तक वह बड़े किसानों का विरोधी है और देहाती सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा के निकट खड़ा है, उसी हद तक, उत्पादन से जुड़ी उसकी ऐसी ही माँगों पर, सर्वहारा वर्ग की पार्टी मध्यम किसानों का पक्ष ले सकती है। और अधिक सूक्ष्म विभेदीकरण करते हुए कहा जा सकता है कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी ग़रीब किसानों के निकट खड़े मध्यम किसानों के निचले संस्तर को अपने पक्ष में करने, बीच के संस्तर को तटस्थ करने और ऊपर के संस्तर को अलग-थलग करने की दृष्टि से ही अपनी नीति तय करती है। प्रश्न केवल औद्योगिक पूँजीपतियों और पूँजीवादी राज्यसत्ता के विरुद्ध मध्यम किसानों को साथ लेने का नहीं है, इससे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न गाँव के पैमाने पर वर्ग-संघर्ष संगठित करने का है (जो निश्चित तौर पर पूँजीवादी भूस्वामियों-फ़ार्मरों-कुलकों और ग्रामीण सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी के बीच होगा), अतः इस संघर्ष के मद्देनज़र सर्वहारा वर्ग की पार्टी मध्यम किसानों की ऐसी किसी तात्कालिक वर्गीय माँग का किसी भी

स्थिति में समर्थन नहीं कर सकती जो मध्यम किसानों को पूँजीवादी मुनाफ़ाख़ोर बड़े किसानों के साथ अल्पकालिक तौर पर भी ला खड़ा करती हो।

साथी एस. प्रताप यदि 1903 से लेकर 1917 के बीच बोल्शेविकों द्वारा प्रस्तुत तीनों भूमि-सम्बन्ध विषयक कार्यक्रमों (एग्रेरियन प्रोग्राम्स) का, इनके निर्माण के दौरान प्लेख़ानोव, अन्य मेंशेविक नेताओं एवं दूसरों के साथ लेनिन की बहसों और मतभेदों का तथा पूँजीवादी विकास एवं अन्य राजनीतिक परिवर्तनों के साथ भूमि-सम्बन्ध-विषयक कार्यक्रम में क्रमशः होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन कर लेते तो उन्हें इस प्रश्न पर उलझावों से मुक्त होने में काफ़ी मदद मिलती।

लेनिन एकाधिक स्थानों पर यह स्पष्ट करते हैं कि जब तक भूस्वामी वर्ग और भूदासता के विरुद्ध संघर्ष लक्ष्य होता है, केवल तभी तक पूरी किसान आबादी कमोबेश एक एकीकृत वर्ग जैसा व्यवहार करती है। इसके आगे, केवल ग़रीब किसान ही जाते हैं जो मज़दूर वर्ग के साथ ऐक्यबद्ध होते हैं और समाजवाद के लक्ष्य के लिए लड़ते हैं। इसके साथ-साथ छोटे-मँझोले मिल्की वर्गों के इस निम्नपूँजीवादी विभ्रम के विरुद्ध संघर्ष लगातार जारी रहता है कि पूँजीवाद के अन्तर्गत वे समृद्ध हो सकते हैं या बराबरी हासिल कर सकते हैं (*दि वर्कर्स पार्टी ऐण्ड दि पीज़ेण्ट्री, लेनिन : कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड-4 और एस.पी. ट्रापेज़्निकोव : पूर्वोद्धृत, पृ. 91-92*)। इस प्रक्रिया में मँझोले किसानों का एक निचला हिस्सा साथ आ सकता है, जबकि उनके मध्यवर्ती संस्तर को तटस्थ किया जा सकता है और ऊपरी संस्तर के प्रतिरोध को पंगु बनाया जा सकता है।

रूसी पार्टी के पहले भूमि-सम्बन्ध विषयक कार्यक्रम के बारे में लिखते समय छोटे भूस्वामित्व के प्रश्न पर विचार करते हुए लेनिन ने ज़ोर देकर यह बात कही थी कि हम छोटे मालिकाने का समर्थन भूदासता के विरुद्ध संघर्ष में करते हैं, न कि पूँजीवाद के विरुद्ध संघर्ष में। उनके अनुसार यह समर्थन भूदास अर्थव्यवस्था और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की सीमारेखा पर खड़े रूसी छोटे किसानों की अन्तरविरोधी स्थिति को देखते हुए उचित है, हालाँकि यह एक अपवाद है और मात्र अस्थायी समर्थन है (*'एग्रेरियन प्रोग्राम ऑफ़ रशियन सोशल डेमोक्रेसी', लेनिन : कलेक्टेड वर्क्स, वॉल्यूम-6, पृ. 134-135*)। लेकिन ग़ौरतलब बात यह है कि उस समय भी रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी का मुख्य ज़ोर गाँव के ग़रीबों पर था। जैसे-जैसे पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ी, निजी मालिकाने को अस्थायी समर्थन की उपरोक्त अवस्थिति से पार्टी हट गयी और आगे बढ़ गयी। नतीजा भूमि-सम्बन्ध विषयक कार्यक्रम में बदलाव के रूप में आगे के दोनों कार्यक्रमों में दीखता है।

इसी पहुँच के आधार पर हमने मोटे तौर पर उन माँगों को सूत्रबद्ध किया था, जो छोटे-मँझोले किसानों और गाँव के सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी की, तथा कई मामलों में शहर की सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा व आम मध्यवर्गीय आबादी की भी, साझा माँगें हो सकती थीं। ये साझा माँगें विशुद्ध वर्गीय प्रकृति की हैं तथा अधिकांशतः पूँजीवादी उत्पादन व विनिमय से सीधे जुड़ी हुई हैं। यह पूँजीवाद की उन्नत अवस्था की एक विशिष्ट अभिलाक्षणिकता है कि विभिन्न मेहनतकश वर्गों की माँगें साझा हो जाती हैं, विभिन्न मध्यवर्गीय जमातों की माँगें साझा

हो जाती हैं तथा कई एक मामलों में जनता के सभी वर्गों की माँगें साझा हो जाती हैं। संयुक्त मोर्चे का सवाल सबसे पहले इन्हीं साझा माँगों की पहचान का सवाल है। सर्वहारा क्रान्ति के संश्रयकारी वर्ग को छूट देने का प्रश्न राज्यसत्ता सर्वहारा वर्ग के हाथ में आने के बाद आता है। आज मध्यम किसान यदि लागत मूल्य के प्रश्न पर लड़ता है तो बेशक लड़े, सर्वहारा वर्ग उसकी इस लड़ाई को समर्थन कदापि नहीं दे सकता। किसी भी स्थिति में नहीं, क्योंकि यह पूँजीवाद के विरुद्ध लड़ते हुए छोटे मालिकाने का समर्थन करने के समान होगा। बेशक एंगेल्स का यह कहना सही था कि पूँजी के हाथों छोटे किसानों की अपरिहार्य तबाही की प्रतीक्षा करने के बजाय उसके किसान रहते हुए क्रान्ति के पक्ष में खड़ा किया जाना चाहिए, लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि सर्वहारा के हरावल छोटी किसानी को बचाने के भ्रम या चेष्टाओं के हिस्सेदार बनें। इसका मतलब मात्र यह हुआ कि बड़े मालिक किसानों के साथ साझेदारी वाले मुद्दों को छाँटकर छोटे मालिक किसानों को उन माँगों पर संगठित किया जाये जिन पर उनकी साझेदारी ग्रामीण सर्वहारा और ग़रीब किसानों के साथ बनती है।

●

और अन्त में एक और बात। जैसाकि प्लेख़ानोव ने कहा था, ज़िन्दा लोग ज़िन्दा सवालों पर सोचते हैं। लागत मूल्य घटाने के सवाल का तो हम किसी भी सूरत में समर्थन नहीं कर सकते, मध्यम किसान की किसी वाजिब तात्कालिक माँग का भी आज की तारीख़ में समर्थन का कोई व्यावहारिक मतलब नहीं है। यह एक खानापूर्ति या ज़ुबानी जमाख़र्च मात्र ही होगा। लेनिन ने अपने एक शुरुआती लेख *"'जनता के मित्र' क्या हैं और वे सामाजिक जनवादियों से कैसे लड़ते हैं"* में ही यह स्पष्ट कर दिया था कि कम्युनिस्ट सबसे पहले अपना सारा ध्यान और अपनी सारी गतिविधियाँ मज़दूर वर्ग पर केन्द्रित करते हैं। जब मज़दूरों के उन्नत प्रतिनिधि वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों में पारंगत हो जाते हैं और मज़दूर वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका को भली-भाँति समझ लेते हैं, उसके बाद ही वे जनता के अन्य वर्गों को संगठित करने में सफल हो सकते हैं। इस दृष्टि से, आज की अपनी कमज़ोर स्थिति में, हमें सर्वोपरि तौर पर अपना ध्यान मज़दूर वर्ग के बीच क्रान्तिकारी प्रचार एवं आन्दोलन के काम पर; उसे जागृत, गोलबन्द और संगठित करने पर केन्द्रित करना होगा। हमें भारत के क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन में व्याप्त उस नव-नरोदवादी भटकाव से बचना होगा जिसके शिकार विभिन्न ग्रुप मज़दूर वर्ग के बीच काम को किनारे छोड़कर, छोटे-मँझोले ही नहीं बल्कि बड़े किसानों सहित समूची किसानी के संकट की चिन्ता में दुबले हुए जा रहे हैं। इस बहस को जारी रखने के पीछे भी हमारा उद्देश्य यही था कि किसानी के सवाल पर कम्युनिस्ट क़तारों और उन्नत सर्वहारा तत्त्वों के नज़रिये को साफ़ किया जा सके। मध्यम किसानों को संगठित करने या उनके किसी संघर्ष को समर्थन देने का मुद्दा अभी भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के एजेण्डे में ऊपर नहीं है। जब तक ऐसी स्थिति आयेगी, वस्तुगत परिस्थितियों का विकास छोटे-मँझोले मालिकाने वाली किसानी के मुद्दे को ख़ुद ही काफ़ी हद तक स्पष्ट कर देगा।

(बिगुल, फ़रवरी 2005)

कुतर्क, लीपापोती और अपने ही अन्तरविरोधों की नुमाइश की है एस. प्रताप ने

सुखदेव

इस बार (बिगुल, जनवरी 2005 के अंक में) श्री एस. प्रताप की टिप्पणी 'मँझोले किसानों के बारे में सर्वहारा दृष्टिकोण का सवाल – दो' पढ़कर बहुत निराशा हुई। इसमें वह अपने ही अन्तरविरोधों की नुमाइश लगाने के अलावा एक भी नयी बात कह सकने में अक्षम रहे हैं। बहुत-सी बातें जो वह पहले ही कह चुके हैं (बिगुल, नवम्बर 2004), उनको उन्होंने बोरियत की हद तक दुहरा दिया है। यह तो श्रीमान एस. प्रताप ही जानते होंगे कि काग़ज़, स्याही और 'बिगुल' के पन्नों से उनकी क्या दुश्मनी है? भले ही श्री एस. प्रताप के ऊल-जलूलवाद पर टिप्पणी कर सकना बहुत कठिन लग रहा है, पर फिर भी कुछ एक बिन्दुओं पर संक्षेप में यहाँ अपनी बात कह रहा हूँ :

(1) श्री एस. प्रताप के लेख का बड़ा हिस्सा सम्पादक-मण्डल के अन्तरविरोधों को 'उजागर' करने को समर्पित है। वैसे ये सब बातें काफ़ी विस्तार में वह पहले भी कह चुके हैं। इन सवालों के बारे में, जो उन्होंने सम्पादक-मण्डल पर उठाये हैं, उन्होंने मुझ पर चुप्पी साध लेने का आरोप लगाया है। श्री एस. प्रताप! मेरे पिछले लेख (बिगुल, दिसम्बर 2004) का मुख्य मकसद आपकी अनपढ़ता और अज्ञान को उजागर करना था। आप एक ऐसे विषय पर बहस कर रहे हैं, जिसके बारे में आपकी जानकारी बेहद अधकचरी है, जिसे आपने अपने ताज़ा लेख (बिगुल, जनवरी 2005) में मान भी लिया है। सम्पादक-मण्डल ने बहस को अभी बन्द नहीं किया है। आपको भरोसा करना चाहिए था कि आप द्वारा सम्पादक-मण्डल पर उठाये गये सवालों का जवाब दिया ही जायेगा। मगर श्रीमान आपने तो सम्पादक-मण्डल पर उठाये गये सवालों के बारे में उसका पक्ष जाने बग़ैर ही उसे मूर्ख घोषित कर दिया है।

(2) अपने पिछले लेख (बिगुल, नवम्बर 2004) में श्री एस. प्रताप ने बड़े ज़ोर-शोर से इस बात की वकालत की थी कि मँझोला किसान उजरती श्रम-शक्ति नहीं ख़रीदता। इस बात की पुष्टि के लिए उन्होंने लेनिन से भी मदद लेने की कोशिश की थी और उन्होंने इस सवाल पर साथी नीरज और सम्पादक-मण्डल को लेनिन के विरोध में खड़ा करने की कोशिश की थी। मगर जब हमने यह दिखाया कि लेनिन अपने लेखन में जगह-जगह मँझोले किसानों द्वारा उजरती श्रम-शक्ति ख़रीदे जाने का ज़िक्र करते हैं, तो श्री एस. प्रताप ने ख़ुद ही लेनिन

द्वारा दी गयी मँझोले किसान की परिभाषा को नकार दिया। अब वह उजरती श्रम-शक्ति ख़रीदने वाले मँझोले किसान को 'छोटा-मोटा' कुलक कह रहे हैं। स्पष्ट है कि साथी नीरज या सम्पादक-मण्डल यहाँ पर लेनिन के विरोध में नही खड़े हैं, बल्कि हमारे "मौलिक चिन्तक" श्री एस. प्रताप ही लेनिन के विरोध में हैं।

(3) श्री एस. प्रताप द्वारा लागत मूल्य घटाने की माँग को छोटे-मँझोले किसानों की मुख्य माँग के रूप में पेश किये जाने की मैंने अपने पिछले लेख (बिगुल, दिसम्बर 04) में काफ़ी विस्तार में चीरफाड़ की थी। मगर श्री एस. प्रताप इस सवाल पर मेरे किसी भी तर्क को काटने में अक्षम रहे हैं। इसके जवाब में उन्होंने कुछ ऊटपटाँग बातें करके ही सब्र कर लिया है और यह कहते हुए कि "मेरे ख़याल से उपर्युक्त चर्चा में साथी सुखदेव के तमाम सवालों का जवाब आ चुका है" ख़ुद ही अपनी पीठ थपथपा ली है। हालाँकि 'बिगुल' के पाठक ख़ुद ही देख सकते हैं कि उन्होंने मेरे द्वारा उठाये गये एक भी सवाल का जवाब नहीं दिया है।

मगर लागत मूल्य के सवाल पर उन्होंने एक नयी बात ज़रूर कही है। उनका कहना है "लागत मूल्य बढ़ने से पूँजी न होने के चलते उनके (मँझोले किसानों के) लिए खेती करना सम्भव नहीं रह गया है। लागत घटने से उनका यह फ़ायदा ज़रूर होगा।" मगर उनका यह फ़ायदा होगा या नहीं; इसके बारे में हम पहले ही काफ़ी (बिगुल, दिसम्बर 2004) चर्चा कर चुके हैं। यहाँ पर श्री एस. प्रताप की नीयत का ज़रूर पता चल गया है कि वह मँझोले किसान को छोटे मालिक के रूप में ही बचाये रखने के लिए अति चिन्तित हैं। वह एक ऐसी इच्छा पाल रहे हैं जो सामाजिक विकास और सर्वहारा आन्दोलन के विकास के लिए अति ख़तरनाक है। प्रूधों, सिसमोन्दी, रूसी नरोदवादी ऐसी ही इच्छाएँ रखते थे। हम पहले ही साबित कर चुके हैं; कि किसान सवाल को वह सर्वहारा के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि एक निम्न पूँजीपति के दृष्टिकोण से देखते हैं। श्री एस. प्रताप मार्क्स, एंगेल्स या लेनिन के नहीं, बल्कि प्रूधों, सिसमोन्दी तथा रूसी नरोदवादियों के ही सच्चे शिष्य हैं।

(4) 'वाजिब मूल्य' के सवाल पर तो उन्होंने कुतर्कों का ढेर ही लगा दिया है। अपने पिछले लेख में उन्होंने "विशेष सन्दर्भ" में इस माँग की हिमायत की थी। हमारा कहना है कि वाजिब मूल्य लाभकारी मूल्य ही होता है। इसके जवाब में वह कुतर्क देते हैं कि "मेरे लेख में वाजिब मूल्य पर दबाव बनाने की बात इस सन्दर्भ में थी कि चीनी मिल-मालिकों ने एकाएक गन्ने का दाम घटा दिया था। ...लेकिन इसको लाभकारी मूल्य की माँग से अलग करके देखना चाहिए। लाभकारी मूल्य की माँग का मतलब होता है, लागत पर कुछ प्रतिशत मुनाफ़ा जोड़कर फ़सल का दाम तय करने की नीति।" यहाँ पर श्री एस. प्रताप के अर्थशास्त्र की कंगाली एकदम सामने आ जाती है। श्री एस. प्रताप से यह सवाल पूछा जाना चाहिए कि क्या वाजिब मूल्य फ़सल को लागत मूल्य पर बेचना होता है? श्री एस. प्रताप का यह कुतर्क पढ़कर मुझे बहुत पहले सुना हुआ यह शेर याद आ गया "हर शाख पे उल्लू बैठा है, अन्जामे गुलिस्ताँ क्या होगा...।"

मैंने अपने पिछले लेख में यह दिखाया था कि लागत मूल्य के सवाल पर श्री एस. प्रताप ने लेनिन के उद्धरण को काँट-छाँटकर अपनी अवस्थिति के अनुरूप बनाने की कोशिश की

है। इसकी सफ़ाई में वह लिखते हैं, "सुखदेव ने ऐसे लिखा है जैसे उद्धरण देकर मैं यह कह रहा हूँ कि लेनिन लागत मूल्य घटाने की माँग उठाने की वकालत कर रहे हैं।" मगर श्रीमान अगर लेनिन लागत मूल्य घटाने की माँग की हिमायत ही नहीं कर रहे तो आपने वह उद्धरण दिया ही क्यों था? श्रीमान इस तरह की लीपापोती से आप किसको मूर्ख बनाने की कोशिश कर रहे हैं?

(5) श्री एस. प्रताप कहते हैं, "लेनिन जहाँ कहीं भी मँझोले किसानों को सर्वहारा वर्ग के दोस्त के रूप में साथ लेने की वकालत करते हैं वहाँ वे इसके उस वर्ग-चरित्र पर ज़ोर देते हैं जो मुख्यतः और मूलतः अपने श्रम पर आधारित खेती करता है और उजरती श्रम का शोषण नहीं करता है। लेकिन जब वे ऐसे लोगों से निपट रहे होते हैं, मसलन मेंशेविकों से, जो मँझोले किसानों को सर्वहारा की तरह ही मेहनतकश बताते हैं, तो वे उनके मंसूबों का पर्दाफ़ाश करते हुए मँझोले किसान के उस वर्ग-चरित्र को पूरे ज़ोर के साथ चिह्नित करते हैं, जो उसे कुलकों का नज़दीकी बनाता है।"

मगर लेनिन कब और कहाँ पर ऐसा करते हैं इसका वह कोई हवाला नहीं देते। उनके उक्त कथन का तो यह अर्थ निकलता है कि लेनिन बहुत बड़े मौक़ापरस्त थे। बिना किसी ठोस अध्ययन के ही श्री एस. प्रताप इस तरह के फ़तवे जारी किये जा रहे हैं।

आगे श्रीमान का कहना है, "लेनिन द्वारा अलग-अलग समय में मँझोले किसान के अलग-अलग पक्षों पर **ज़ोर शायद इसलिए** भी हो कि पूँजीवादी विकास की अगली मंज़िलों में मँझोले किसानों के ऊपरी स्तर का अनुपात बढ़ा हो। **लेकिन इस पर मेरा कोई अध्ययन न होने से मैं इस पर कोई टिप्पणी नहीं कर सकता।**" श्रीमान आप टिप्पणी कर तो चुके हैं वह भी बिना किसी अध्ययन के। आप इतनी गम्भीर बहस में भी अटकलबाज़ी से ही काम चला लेना चाहते हैं।

आइये श्री एस. प्रताप की कुछ और अटकलबाज़ियों के दीदार कर लें। वह लिखते हैं, "...पूँजी की मार से तबाह होने के साथ ही अन्य प्रक्रियाओं के ज़रिये भी उस मँझोले किसान का आधार सिकुड़ रहा है, जो अपने श्रम पर आधारित खेती करता है।...हालाँकि इस पर कोई ठोस अध्ययन उपलब्ध न होने से ठोस-ठोस कुछ भी कह पाना फ़िलहाल सम्भव नहीं है।" श्रीमान एस. प्रताप सब कुछ कहे भी जा रहे हैं और न कहने का पाखण्ड भी किये जा रहे हैं। आगे वह एक और अटकल का सहारा लेते हैं, **"ऐसा लगता है कि खेती के विकसित इलाक़ों में मँझोले किसानों का सवाल लगभग समाप्त हो चुका है या फिर निकट भविष्य में समाप्त हो जायेगा।"**

श्रीमान एस. प्रताप के पास न तो सर्वहारा वर्ग के शिक्षकों ने जो कुछ किसान प्रश्न पर लिखा है उसका ही कोई अध्ययन है और न ही भारतीय कृषि में आये परिवर्तनों का। और यह बात वह पूरी "दरियादिली" से मानते भी हैं। वह 'अलग सवालों पर,' 'शायद,' 'ऐसा लगता है,' 'अध्ययन नहीं है,' आदि उक्तियों से ही काम चला रहे हैं। वह बिना किसी अध्ययन के ही भारतीय क्रान्ति के अहम प्रश्न 'किसान प्रश्न' पर बहस में उतर पड़े हैं। इससे यही साबित होता है कि वह इस महत्त्वपूर्ण सवाल पर चल रही बहस में कितनी

ग़ैर-ज़िम्मेदारी वाला व्यवहार कर रहे हैं। इससे यही पता चलता है कि वह भारतीय क्रान्ति के इस अहम प्रश्न को सुलझाने के मक़सद से बहस नहीं चला रहे हैं, बल्कि कुछ अन्य कारण ही उनके प्रेरणा-स्रोत हैं।

अब जब श्रीमान एस. प्रताप ने किसान प्रश्न पर अपने अज्ञान को ख़ुद ही मान लिया है, तो अन्त में हम श्रीमान को मार्क्स का यह कथन ज़रूर याद दिलाना चाहेंगे, "अज्ञान एक राक्षसी शक्ति है और हमें डर है कि यह कई त्रासदियों का कारण बनेगा। सबसे महान यूनानी कवियों ने इसे मीकेन तथा थेब्स के शाही घरानों के जीवन के हृदयविदारक नाटकों में ठीक ही त्रासदीपूर्ण नियति के रूप में चित्रित किया है (मार्क्स-एंगेल्स, *'धर्म के बारे में'*, पंजाबी संस्करण, पृ. 40)।"

(बिगुल, फ़रवरी 2005)

मँझोले किसानों के बारे में सर्वहारा दृष्टिकोण का सवाल – तीन

एस. प्रताप

इस बार बहस में शामिल सम्पादक-मण्डल के सम्पादकीय समाहार और सुखदेव के लेख में बात तो एक ही कही गयी है और दोनों की पोज़ीशन भी एक ही है, बस फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि एक में गाली-गलौज की भाषा का इस्तेमाल किया गया है और दूसरे में विस्तार से विश्लेषण व थोड़ी सन्तुलित भाषा का इस्तेमाल किया गया है। सुखदेव के लेख को तो पढ़कर ऐसा लगता है कि उनका अहम्मन्यतापूर्ण ग़ुस्सा इस बार सभी सीमाओं को पार कर गया और उन्हें दौरा ही पड़ गया।

इस बार सम्पादक-मण्डल ने अपने सम्पादकीय समाहार में अपनी एक ग़लती तो स्वीकार कर ली। सम्पादक-मण्डल ने अपनी पोज़ीशन में इस अन्तरविरोध को माना है कि उसके द्वारा छोटे-मँझोले किसानों को संगठित करने के लिए प्रस्तुत की गयी माँगों की सूची में बिजली, पानी को रियायती दर पर देने की माँग अन्य माँगों से विपरीत चरित्र की है। लेकिन वह सीधी-सीधी भाषा में यह नहीं कहता कि लागत मूल्य घटाने की माँग को सर्वहारा विरोधी बताते हुए भी वह इन माँगों के ज़रिये लागत मूल्य घटाने की ही माँग की वकालत कर रहा था। सम्पादक-मण्डल कहता है, उसके दिमाग़ में यह भ्रामक तर्क काम कर रहा था कि समाजवादी क्रान्ति के बाद मध्यम व छोटे किसानों को ऐसी बहुतेरी रियायतें देनी पड़ती हैं और इसी के चलते वह इन माँगों की वकालत कर बैठा। लेकिन यह बात समझ में नहीं आती। सम्पादक-मण्डल यहाँ पूँजीवादी समाज में छोटे-मँझोले किसानों की लागत मूल्य घटाने की माँग को सर्वहारा विरोधी बताते हुए उसके ख़िलाफ़ बहस का नेतृत्व कर रहा है और इसी बहस को आगे बढ़ाते हुए उसने वह लेख लिखा था। ऐसे में दिमाग़ में उपर्युक्त भ्रामक तर्क आने से ही कोई उस माँग की वकालत कैसे कर सकता है जिसे वह उसी लेख में सर्वहारा विरोधी बता रहा हो? जहाँ तक मेरा ख़याल है, यह तभी सम्भव है जब कोई ख़ुद लम्बे समय से अपने विचारों में इस माँग को सही समझता रहा हो और विचारों में पूरी तरह बदलाव अभी न हुआ हो, फिर भी वह इसका विरोध करने लगा हो। लेकिन लेखनी ने उसके विचारों को सामने ला दिया।

अब हम बिन्दुवार सम्पादक-मण्डल की प्रस्थापनाओं और उठाये गये सवालों पर आते हैं :

1. सम्पादक-मण्डल कहता है कि लागत मूल्य घटाने की माँग के ख़िलाफ़ उसका पहला तर्क वही है जो पहले दिया गया था – "मान लें यदि उद्योगपति किसी किसान आन्दोलन की माँग मानकर कृषि उपकरणों-उर्वरकों-कीटनाशकों आदि की क़ीमत कम भी कर दें और मान लें कि यह घटोत्तरी किसी तरह तीन तिकड़म करके कृषि उत्पादों के मूल्य में संक्रमित न होने दी जाये तो भी पूँजीपति का मुनाफ़ा कम नहीं होगा, बल्कि इसकी क़ीमत उसके कारख़ाने में काम करने वाले मज़दूरों को ही चुकानी पड़ेगी।" यानी उद्योगपति मज़दूरों की तनख़्वाहें घटा देगा, उन्हें और अधिक निचोड़ेगा, मशीनीकरण करके मज़दूरों को बेकारी के दलदल में धकेलेगा आदि। मैंने पहले भी कहा था कि सम्पादक-मण्डल का यह मार्क्सवाद एकांगी है, वह इसमें औद्योगिक मज़दूरों की भूमिका को नज़रअन्दाज़ कर देता है और उन्हें निरी गाय बना देता है। उद्योगपति मज़दूरों के ऊपर यह क़हर बरपा कर सकेगा या नहीं, यह तो फ़ैक्ट्री और औद्योगिक क्षेत्रों में शक्ति सन्तुलन से ही तय होगा। उनके उत्पादों का दाम घटना उनके मुनाफ़े पर अवश्य असर डालेगा और अपना मुनाफ़ा क़ायम रखने के लिए वे मज़दूरों के ऊपर ही क़हर बरपा करना चाहेंगे। लेकिन उनकी यह चाहत उनकी फ़ैक्ट्री और औद्योगिक क्षेत्र में आन्दोलनों के विस्फोट को भी जन्म देगी।

दूसरी बात, मैंने यह भी कहा था कि यदि सम्पादक-मण्डल का यही मार्क्सवाद लागू किया जाये तो महँगाई विरोधी आन्दोलन भी सर्वहारा विरोधी आन्दोलन होगा, क्योंकि वह भी औद्योगिक उत्पादों के दाम घटाने की ही माँग करता है, और सम्पादक-मण्डल के तर्क के अनुसार इससे उन उद्योगों की भारी मज़दूर आबादी पर क़हर बरपा होगा। सम्पादक-मण्डल यहाँ तो महँगाई विरोधी आन्दोलन पर कोई बात नहीं करता क्योंकि इससे उसके मार्क्सवाद का एकांगीपन उजागर हो जाता। तीन लम्बे पैराग्राफ़ों में कुछ अन्य चर्चा के बाद वह अलग से महँगाई विरोधी आन्दोलन की बात करता है और वहाँ अपने मार्क्सवादी विश्लेषण को भूलकर वह कहता है कि वह महँगाई विरोधी आन्दोलन का समर्थन करता है क्योंकि यह व्यापक मेहतनकश आबादी और निम्न-मध्यमवर्गीय (मध्यवर्गीय नहीं) आबादी का सामूहिक आन्दोलन है। और यह कि इसकी तुलना लागत मूल्य घटाने की मालिक किसानों की माँग पर आन्दोलन से नहीं की जा सकती क्योंकि यह मेहनतकशों का साझा आन्दोलन नहीं है और यह छोटे-मँझोले किसानों को लुटेरे बड़े मालिकों के साथ एकजुट करता है। यहाँ पर वह मेरे इस तर्क को भूल जाता है कि खेती की लागत घटने से अनाज का दाम घटेगा और यह व्यापक मेहनतकश आबादी के हित में होगा। इसीलिए लागत मूल्य घटाने की माँग व्यापक जनता की महँगाई विरोधी माँग से जुड़ती है और यह छोटे-मँझोले किसानों को सर्वहारा वर्ग के साथ खड़ा कर सकती है।

अब इससे एक पैराग्राफ़ पहले ही, इससे अलग करके सम्पादक-मण्डल कहता है, एस. प्रताप का यह कहना कि लागत मूल्य घटाने की माँग व्यापक जनता की महँगाई पर रोक लगाने की माँग से जुड़ती है, एक लचर तर्क है। यहाँ पर सम्पादक-मण्डल दो पैराग्राफ़ पहले कही गयी अपनी ही बात को भूल जाता है कि – "कृषि उपकरण, बिजली, बीज आदि की क़ीमत घट भी जाये तो यह घटोत्तरी सीधे कृषि उत्पादों के मूल्य में संक्रमित हो जायेगी..."

इसका यही मतलब हुआ कि कृषि उत्पादों यानी अनाज आदि का दाम घट जायेगा। हालाँकि वह इसे सीधे-सीधे नहीं कहता। यदि लागत मूल्य घटने से अनाज का दाम घट जायेगा तो फिर लागत मूल्य घटाने की माँग महँगाई विरोधी आन्दोलन से क्यों नहीं जुड़ती है? सम्पादक-मण्डल जहाँ यह दिखाना चाहता है कि लागत मूल्य घटने से छोटे-मँझोले किसानों का फ़ायदा नहीं होगा, वहाँ तो वह कहता है कि इससे अनाज का दाम घट जायेगा और जहाँ उसे यह कहना है कि यह सर्वहारा विरोधी माँग है और महँगाई विरोधी आन्दोलन से नहीं जुड़ती है वहाँ वह कहता है कि यह लचर तर्क है।

इस पूरी बात में अपने को सही साबित करने की धुन में सम्पादक-मण्डल की पैंतरेबाज़ी काबिलेग़ौर है।

2. लागत मूल्य घटाने की माँग के विरोध में सम्पादक-मण्डल का दूसरा तर्क है : "लागत मूल्य घटाने का तर्क सिर्फ़ यहीं तक जा सकता है कि मध्यम किसान चल पूँजी को यानी श्रम-शक्ति पर होने वाला ख़र्च घटाये, यानी अपने खेतों में काम करने वाले मज़दूरों को और अधिक निचोड़े।" मेरा तर्क था कि मँझोला किसान मुख्यतः और मूलतः अपने श्रम पर आधारित खेती करता है, इसलिए उसकी माँग में मज़दूरी घटाने या किसी भी रूप में श्रम लागत घटाने की माँग शामिल नहीं हो सकती है। यहाँ से बहस मुख्यतः इस पर केन्द्रित हो गयी कि हम किसे कहेंगे मँझोला किसान।

साथी सुखदेव और सम्पादक-मण्डल का कहना है कि खेती के पूँजीवादी विकास के चलते "भारत की विशेष परिस्थितियों" में अब मँझोले किसानों द्वारा मज़दूर लगाकर खेती करना आम चलन हो गया है। पिछले लेख में सुखदेव ने कहा था कि मँझोले किसान की खेती अब मुख्यतः उजरती श्रम पर आधारित होती है।

मेरा मानना है कि खेती में इन बदली परिस्थितियों से वर्गों की मार्क्सवादी अवधारणा नहीं बदल जाती। उत्पादन में भागीदारी के आधार पर ही वर्गों को परिभाषित किया जा सकता है। क्योंकि इसी से उनके हित और अनहित तय होते हैं और वर्ग दोस्तों और दुश्मनों की पहचान होती है। समाजवादी क्रान्ति के दौर में ऐसा कोई भी वर्ग सर्वहारा का संश्रयकारी नहीं हो सकता जिसका अस्तित्व उजरती श्रम के शोषण पर टिका हो। मँझोला किसान इसीलिए सर्वहारा वर्ग का संश्रयकारी माना जाता है क्योंकि मुख्यतः और मूलतः वह अपने श्रम पर आधारित खेती करता है। वह कभी-कभी और आपात परिस्थितियों में ही मज़दूर लगाता है। खेती की बदली हुई परिस्थितियों में यदि मँझोले किसानों का एक हिस्सा मुख्यतः उजरती श्रम पर आधारित खेती करने लगता है तो इससे उसका वर्गीय रूपान्तरण हो जाता है और वह कुलकों की श्रेणी में शामिल हो जाता है। इसी आधार पर मैंने कहा था कि सम्पादक-मण्डल और सुखदेव जिसे मँझोला किसान कह रहे हैं, वह सर्वहारा वर्ग का संश्रयकारी मँझोला किसान नहीं, छोटा-मोटा कुलक है, धनी किसान है। और यदि उसी मँझोले किसान को गोलबन्द करने के लिए सम्पादक-मण्डल ने माँगों की लम्बी सूची प्रस्तुत की है, तो वह प्रतिक्रियावादी क़दम है। क्योंकि जिसे वे मँझोला किसान कह रहे हैं वह अपने समग्र अस्तित्व के साथ सर्वहारा विरोधी है। सम्पादक-मण्डल मेरे इन तर्कों से बच बचाकर निकल गया और जाते-जाते मेरे

ऊपर कीचड़ फेंक गया कि देखो-देखो जब सुखदेव ने मँझोले किसानों के बारे में लेनिन के अन्य उद्धरण दिये तो एस. प्रताप अब उसे छोटा-मोटा कुलक कहने लगे।

3. पहले मेरे द्वारा उद्धृत एंगेल्स की मँझोले किसान की परिभाषा पर सम्पादक-मण्डल द्वारा उठाये गये सवाल पर आते हैं और उसके बाद सुखदेव द्वारा उद्धृत लेनिन के उद्धरणों सम्बन्धी बात पर।

मैंने अपने लेख में कहा था कि फ्रांस और जर्मनी में किसानों का सवाल नामक अपने लेख में एंगेल्स ने जिसे छोटा किसान कहा है, उसे ही लेनिन मँझोला किसान कहते हैं। क्योंकि दोनों की परिभाषा मेल खाती है। मैंने उक्त लेख से एंगेल्स की और 'गाँव के ग़रीबों से' से लेनिन की परिभाषा उद्धृत की है। दोनों की परिभाषा का सार है मँझोला (एंगेल्स का छोटा) किसान मुख्यतः अपने श्रम पर आधारित खेती करता है।

सम्पादक-मण्डल कहता है कि मैंने एंगेल्स को ग़लत समझा है और अधूरा उद्धृत किया है। वह उक्त लेख का एक लम्बा उद्धरण देकर दिखाता है एंगेल्स बाद में मँझोला किसान प्रवर्ग का इस्तेमाल करते हैं और एंगेल्स का छोटा किसान लेनिन का मँझोला किसान नहीं है। वह कहता है कि एस. प्रताप लेख को ठीक से पढ़े होते यानी वहाँ तक जहाँ से उद्धरण दिया गया है तो बात उनकी समझ में आ जाती। सम्पादक-मण्डल कहता है कि एंगेल्स का छोटा किसान जर्मनी और फ़्रांस की विशेष परिस्थितियों में ग़रीब किसानों और निम्न-मध्यम किसानों को ही अपने में समेटता है। सम्पादक-मण्डल यह किस आधार पर कहता है इसे वह गुप्त ही रखता है। सम्पादक-मण्डल अपने को सही साबित करने की धुन में यह भूल जाता है कि ग़रीब किसान अर्द्धसर्वहारा है, वह मुख्यतः उजरत पर ही जीता है। यही सर्वमान्य मार्क्सवादी प्रस्थापना है। जबकि एंगेल्स अपनी परिभाषा में साफ़ कहते हैं कि छोटा किसान वह है जिसके पास खेती का टुकड़ा उतने से बड़ा नहीं है कि वह और उसका परिवार जोत सके और उतने से छोटा नहीं, जितने से कि उसके परिवार का भरण-पोषण हो सके। स्पष्ट है कि यह छोटा किसान मुख्यतः खेती पर ही जीता है उजरत पर नहीं। एंगेल्स यहाँ अर्द्धसर्वहारा की बात नहीं कर रहे हैं।

अब एंगेल्स के मँझोले किसान पर आते हैं। सम्पादक-मण्डल, दरअसल सिर्फ़ यह देखकर ही सन्तुष्ट हो गया कि एंगेल्स ने मँझोला किसान शब्द का इस्तेमाल किया है, लेकिन उसने यह समझने की कोशिश नहीं की कि वे यहाँ किसके लिए मँझोला किसान शब्द का इस्तेमाल कर रहे हैं। सम्पादक-मण्डल यदि इस लेख को अपने उद्धरण वाले अंश से थोड़ा और आगे तक पढ़कर मामले पर विचार करता तो बात समझ में आ जाती। पहली बात तो यह कि एंगेल्स ने लेख में बड़े और मँझोले किसानों को एक साथ रखकर बात की है, जबकि लेनिन अमूमन छोटे और मँझोले किसानों को एक साथ रखकर या मँझोले किसानों को अलग रखकर बात करते हैं। इसके अलावा, जिस पैराग्राफ़ को सम्पादक-मण्डल ने उद्धृत किया है, उसके अगले ही पैराग्राफ़ में एंगेल्स कहते हैं : "हमें आर्थिक दृष्टि से पक्का यक़ीन है कि छोटे किसानों की तरह बड़े और मँझोले किसान भी अवश्य ही पूँजीवादी उत्पादन और सस्ते विदेशी गल्ले का शिकार बन जायेंगे....बहुत सम्भव है कि यहाँ भी हमें बलात सम्पत्तिहरण

न करना पड़े और हम इस बात का भरोसा कर सकेंगे कि भविष्य का आर्थिक विकास इन कड़ी खोपड़ियों में भी बुद्धि का प्रादुर्भाव करेगा।"

इस उद्धरण से यह समझा जा सकता है कि यहाँ एंगेल्स धनी किसानों की बात कर रहे हैं। नीचे की लाइनों का मतलब यही है कि सामान्यतः हमें "बड़े और मँझोले किसानों" का बलात सम्पत्तिहरण करना होगा। लेकिन क्योंकि धनी किसान पूँजीवादी विकास की अगली मंज़िलों में तबाह होते हैं और उनको हज़म करके ही पूँजीवादी भूस्वामी वर्ग का प्राधान्य स्थापित होता है, इसलिए इस तबाही से एंगेल्स उनकी कड़ी खोपड़ियों में भी बुद्धि के प्रादुर्भाव की सम्भावना व्यक्त करते हैं। लेनिन कभी भी मँझोले किसानों के बलात सम्पत्तिहरण की बात नहीं करते हैं। सम्पादक-मण्डल की भी यही धारणा है। एंगेल्स की "छोटे" किसानों के बारे में यही धारणा है। इससे भी यह अधिक सही लगता है कि एंगेल्स का छोटा किसान मँझोला किसान है और उनका बड़ा और मँझोला किसान धनी किसान है। सम्पादक-मण्डल ने जिस उद्धरण को यह कहकर दिया है कि एंगेल्स मँझोले किसानों के बारे में लिखते हैं, वहाँ एंगेल्स धनी किसानों के बारे में लिख रहे हैं। सम्पादक-मण्डल की तरह अगर बिना किसी ठोस आधार के अटकल लगाये तो अधिक से अधिक उसमें उच्च-मध्यम किसान शामिल हो सकते हैं।

4. सुखदेव और सम्पादक-मण्डल ने कहा है कि मैंने लेनिन के उद्धरणों को काट-छाँटकर अपने अनुरूप बनाने की कोशिश की और इस बार तो यह भी आरोप जड़ दिया गया कि मैं लेनिन को अवसरवादी कह रहा हूँ। आइये ज़रा देखें कि यह मामला क्या है? मैंने अपने लेख में मँझोले किसानों को परिभाषित करते हुए 'गाँव के ग़रीबों से' से लेनिन को उद्धृत किया था : "उनमें से मँझोले किसानों में से बहुत कम ही ऐसे किसान हैं जो उजरत पर खेत-बनिहार या दिहाड़ीदार लगाते हों, दूसरों की मेहतन से धनी बनने और दूसरों की पीठ पर सवार होकर दौलतमन्द बनने की कोशिश करते हों। मँझोले किसानों में से अधिकतर के पास इतना पैसा ही नहीं कि वे उजरत पर मज़दूर लगायें – वास्तव में वे ख़ुद ही उजरत पर काम करने को मजबूर होते हैं...।" इस उद्धरण के ऊपर या नीचे या 'गाँव के ग़रीबों से' पुस्तक का कोई अंश उद्धृत कर सम्पादक-मण्डल या सुखदेव यह नहीं दिखा सके कि किस रूप में यह अधूरा है, लेकिन आरोप जड़ना था सो जड़ दिया। सुखदेव कहते हैं कि ग़ौर से देखें तो इसमें लेनिन मँझोले किसानों द्वारा उजरती मज़दूरों को काम पर लगाने की बात को बिल्कुल ख़ारिज नहीं करते हैं। सुखदेव ने लेनिन के उद्धरण को तो ग़ौर से देख लिया और मेरी परिभाषा को ग़ौर से देखने की जहमत नहीं उठायी। अब ज़रा मेरे उसी लेख में मँझोले किसानों की मेरी परिभाषा पर ग़ौर करें : "उत्पादन प्रक्रिया में हिस्सेदारी के आधार पर मध्यम किसान उसे ही कहा जा सकता है जो मूलतः और मुख्यतः अपना श्रम लगाकर खेती करता है, अपवादस्वरूप ही, आपात परिस्थितियों में ही वह मज़दूर लगाने को मजबूर होता है।" 'ग़ौर से देखें' तो यहाँ मँझोले किसानों द्वारा मज़दूरों को काम पर लगाने की बात ख़ारिज नहीं की गयी है। लगता है सुखदेव ने मुख्यतः और मूलतः शब्द को देखा ही नहीं।

इसके बाद सुखदेव कहते हैं कि 1903 में लिखे गये 'गाँव के ग़रीबों से' के बाद

परिस्थितियाँ बदलीं और रूस में भी मँझोले किसानों में दिहाड़ी मज़दूरों से काम लेने की प्रवृत्ति बढ़ती गयी, इसलिए बाद के अपने लेखों में लेनिन मँझोले किसानों के बारे में वह परिभाषा देते हैं जो सुखदेव और सम्पादक-मण्डल की है, यानी मँझोला किसान श्रम-शक्ति का ख़रीदार है या यह कि उसकी खेती बुनियादी तौर पर उजरती श्रम के शोषण पर आधारित होती है। मेरे ख़याल से लेनिन के बारे में ऐसी बात करना बेहद ग़लत है। वे हमेशा उत्पादन प्रक्रिया में भागीदारी के आधार पर ही वर्गों को परिभाषित करते हैं। मँझोले किसानों के दोहरे वर्गीय चरित्र के चलते बदलती परिस्थितियों में वे इसे रेखांकित करते हैं कि कैसे उसके ऊपरी हिस्से में कुलकीकरण की प्रवृत्ति बढ़ रही है और कैसे मँझोले किसान का अस्तित्व क़ायम रहने की परिस्थितियाँ समाप्त हो रही हैं। 1908 के लेख से सुखदेव द्वारा उद्धृत अंश के महत्त्वपूर्ण अंश को देखें : "...ऊँचे समूहों में मज़दूरों को भाड़े पर रखना स्पष्टतः एक प्रणाली बनती जा रही है, जो विस्तृत पैमाने पर खेती की शर्त है। इससे भी अधिक, दिनभर के लिए भाड़े पर मज़दूर रखना किसानों के मँझोले समूहों के बीच भी अधिकाधिक व्यापक होता जा रहा है।" पहली बात तो यह कि यहाँ 'मँझोले समूहों' शब्द सिर्फ़ मँझोले किसान के लिए इस्तेमाल नहीं किया गया है। यहाँ लेनिन धनी किसान, ग़रीब किसान, मँझोले किसान की बात करने की बजाय खेती की बड़ी और मँझोली जोतों में मज़दूर लगाकर खेती करने की प्रवृत्ति के व्यापक होने की बात कर रहे हैं। जिस हद तक इस बात को मँझोले किसानों पर लागू किया जायेगा, उसका मतलब यही होगा कि मँझोले किसानों के ऊपरी हिस्से में कुलकीकरण की प्रवृत्ति बढ़ रही है। लेनिन यहाँ यह नहीं कह रहे हैं कि अब मँझोले किसान की परिभाषा बदल गयी है तथा यह कि अब मूलतः और मुख्यतः उजरती श्रम का शोषण करने वाले को हम मँझोला किसान कहेंगे और उसे अपने साथ खड़ा करने के लिए माँगों की लम्बी सूची भी प्रस्तुत करेंगे।

उसके बाद सुखदेव ने 1912 में लिखे लेनिन के एक लेख का अंश उद्धृत किया है, उसके महत्त्वपूर्ण अंश को देखें : "...वास्तविकता यह है कि "छोटे एवं मँझोले किसानों" का विशाल बहुमत...श्रम-शक्ति को या तो बेचता है या ख़रीदता है, या तो ख़ुद को भाड़े पर लगाता है या भाड़े पर मज़दूर रखता है।..." यह लेख तो मैं नहीं देख सका, लेकिन एक ऐसा ही अन्य लेख 'किसान समुदाय और मज़दूर वर्ग' के नाम से 'मज़दूर वर्ग और किसानों की दोस्ती' वाले लेनिन के संकलन में है। इसमें भी लेनिन ने वही बातें कही हैं। सम्भवतः यह उद्धृत लेख का ही एक अंश है। इसमें लेनिन नरोदवादियों के उस दावे की धज्जी उड़ा रहे हैं, जिसमें वे कहते हैं कि मज़दूर और "मेहनतकश" किसान एक ही वर्ग के हैं। लेनिन कहते हैं कि नरोदवादी छोटे पैमाने के उत्पादन की जीवन शक्ति की प्रशंसा करते हैं और छोटे पैमाने के उत्पादन से उनका आशय होता है बिना उजरती श्रम की खेतीबारी। उसके बाद लेनिन आस्ट्रिया और जर्मनी में छोटे पैमाने की कुल जोतों में लगने वाले कुल उजरती श्रम का आँकड़ा देकर यह साबित करते हैं कि छोटे किसान की खेती लाखों-लाख उजरती मज़दूरों का शोषण करती है। इसके साथ ही वह यह भी कहते हैं कि किसान की गृहस्थी जितनी ही बड़ी है, उसमें उतनी ही बड़ी ही संख्या में मज़दूर लगते हैं। लेख को 'ग़ौर से' पढ़ें तो इसमें वे कहीं भी सुखदेव या सम्पादक-मण्डल के इस सिद्धान्त को प्रतिपादित नहीं करते हैं कि

छोटे-मँझोले किसान की खेती मुख्यतः और मूलतः अपने श्रम पर आधारित होने की बजाय उजरती श्रम के शोषण पर टिकी है। वे यहाँ पर नरोदवादियों से बहस कर रहे हैं जो मज़दूरों और छोटे किसानों को एक श्रेणी में शामिल करने की कोशिश करते हैं और इसलिए लेनिन छोटे-मँझोले किसानों के इस चरित्र को उद्घाटित करते हैं जो उसके एक हिस्से को कुलकों का नज़दीकी बनाता है और दूसरे को सर्वहारा का। उसका एक हिस्सा कभी-कभी मज़दूर लगाये बग़ैर काम नहीं चला सकता और दूसरे हिस्से को कभी-कभी मज़दूरी करनी पड़ती है।

लेनिन के इस उद्धरण और गाँव के ग़रीबों से मेरे द्वारा दिये गये उद्धरण में मँझोले किसानों के चरित्र के अलग-अलग पहलुओं पर ज़ोर दिया गया है। इसी सन्दर्भ में मैंने कहा था कि लेनिन जहाँ मँझोले किसानों को सर्वहारा वर्ग के दोस्त के रूप में साथ लेने की वकालत करते हैं वहाँ वे उसके उस वर्ग-चरित्र पर ज़ोर देते हैं कि वह मुख्यतः और मूलतः अपने श्रम पर आधारित खेती करता है और जहाँ वे ऐसे लोगों से निपट रहे होते हैं जो मँझोले किसानों को सर्वहारा की तरह ही मेहनतकश बताते हैं तो वे पूरे ज़ोर के साथ मँझोले किसानों के उस वर्ग-चरित्र को चिह्नित करते हैं जो उसे कुलकों का नज़दीकी बनाता है। सुखदेव को इतनी समझ और बहस की इतनी तमीज़ तो हासिल कर ही लेनी चाहिए कि बहस के केन्द्र में जो पहलू होता है, बहस में उसी पहलू पर ज़ोर दिया जाता है। जिन दोनों पहलुओं पर लेनिन ने अपने अलग-अलग समय में लिखे गये लेखों में ज़ोर दिया है वे मँझोले किसानों के वर्ग-चरित्र के ही दो पहलू हैं। 'गाँव के ग़रीबों से' के बाद 1919 में क्रान्ति के बाद के प्राथमिक वर्षों में लेनिन ने अपने कई लेखों में मँझोले किसानों को ठीक उसी रूप में परिभाषित किया है। उस समय तक अभी मज़दूर लगाकर खेती की जा रही थी, तभी लेनिन उसे धनी किसानों से अलग श्रेणी में रखते हैं और कहते हैं कि मँझोला किसान बुनियादी तौर पर मुख्यतः अपने श्रम पर आधारित खेती करता है।

अब एक अन्य सवाल पर आते हैं जहाँ लेनिन के उद्धरण को अधूरा उद्धृत करने का आरोप लगाया गया है। सुखदेव ने मेरे द्वारा उद्धृत हिस्से की नीचे की दो लाइनें छोड़कर और ऊपर से उद्धरण का कुछ और अंश लेकर उद्धृत किया है। बात को स्पष्ट करने के लिए यहाँ इस उद्धरण को पूरा का पूरा देना एक मजबूरी है : "सभी मिल्की, सारा बुर्जुआ वर्ग मँझोले किसान की गृहस्थी सुधारने के लिए तरह-तरह की कार्रवाइयों (सस्ते हल, किसान बैंक, सस्ती खाद और सस्ते मवेशी आदि) का वायदा करके उसे अपनी तरफ़ खींचना चाहते हैं। वे मँझोले किसानों को तरह-तरह के खेतिहर संघों (जिन्हें किताबों में सहकार कहा जाता है) में शामिल करने की कोशिश करते हैं; जो खेतीबाड़ी के तरीक़ों में सुधार करने के उद्देश्य से सभी प्रकार के मिल्कियों को ऐक्यबद्ध करने की कोशिश करते हैं। इस तरीक़े से बुर्जुआ वर्ग को न केवल मँझोले किसानों बल्कि छोटे किसानों को भी, यहाँ तक कि अर्द्धसर्वहारा को भी, शहरी मज़दूरों के साथ ऐक्यबद्ध होने से रोकने और मज़दूरों के ख़िलाफ़, सर्वहारा के ख़िलाफ़ लड़ने में धनियों और बुर्जुआ वर्ग की ओर लाने की कोशिश करता है।

"सामाजिक जनवादी मज़दूर इसका जवाब देते हैं : सुधरी गृहस्थी बढ़िया चीज़ है। ज़्यादा सस्ते हल ख़रीदने में कोई बुराई नहीं है; आजकल व्यापारी भी अगर वह बेवक़ूफ़ नहीं, अधिक

ख़रीदारों को अपनी ओर खींचने के लिए चीज़ों को सस्ते दामों पर बेचने की कोशिश करता है। लेकिन जब किसी ग़रीब या मँझोले किसान से कहा जाता है कि सुधरी गृहस्थी और ज़्यादा सस्ते हल तुम सबको ग़रीबी से पिण्ड छुड़ाने और अपने पैरों पर खड़ा होने में मदद करेंगे और **यह काम धनियों को हाथ लगाये बग़ैर ही हो सकता है,** तो यह सरासर धोखा है। **ये सारे सुधार कम क़ीमतें और सहकार (माल ख़रीदन-बेचने के संघ) धनियों को ही अधिक लाभ पहुँचायेंगे...**" नीचे की दो लाइनें जो मैंने अण्डरलाइन की हैं उन्हें सुखदेव ने छोड़ दिया है।

मैंने अपने लेख में कहा था : "लेनिन ने इस सवाल को (लागत मूल्य के सवाल को) छुआ है और वे इसे सर्वहारा विरोधी माँग का दर्जा देते नहीं दिखायी देते। हाँ, वे बार-बार आगाह करते हैं कि इससे उनकी तबाही-बरबादी रुक जायेगी, ऐसा भ्रम किसानों को नहीं पालना चाहिए। वह उन बुर्जुआ कोशिशों का भण्डाफोड़ करते हैं जो इस तरह की माँगों को किसानों के उद्धार के लिए केन्द्रीय माँग के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। इसके ख़िलाफ़ वे किसानों से कहते हैं : "सुधरी गृहस्थी....अधिक लाभ पहुँचायेंगे।"

अब ज़रा देखा जाये कि क्या मैंने लेनिन के उद्धरण को अपने मुताबिक़ अपनी बात कहलवाने के लिए, काट-छाँटकर, सन्दर्भ से अलग हटाकर प्रस्तुत किया है? क्या उद्धरण के पहले वाले हिस्से को जिसे मैंने उद्धृत नहीं किया था, उसमें कही गयी लेनिन की बात को समेटते हुए ही मैंने उद्धरण का नीचे वाला अंश नहीं दिया है? क्या मैंने लेनिन से लागत मूल्य की माँग उठाने की वकालत करायी है? सुखदेव अपने इस बार वाले लेख में कहते हैं कि यदि ऐसा नहीं है तो मैंने यह उद्धरण दिया ही क्यों। हालाँकि यह स्पष्ट है, लेकिन फिर भी अब एक बार फिर इसकी चर्चा करनी होगी।

सम्पादक-मण्डल और साथी सुखदेव ने लागत मूल्य घटाने की माँग के ख़िलाफ़ जो 'मार्क्सवादी विश्लेषण' प्रस्तुत किया है – मसलन इससे औद्योगिक सर्वहारा वर्ग पर क़हर टूटेगा और दूसरी तरफ़ इसका असली मतलब यही होगा कि मँझोले किसान श्रम लागत को घटाएँ व मज़दूरों को और अधिक निचोड़ें आदि आदि, अगर यह सही होता तो इस पर लेनिन की भाषा ही अलग होती। वे ताबड़तोड़ प्रहार करते हुए इसे सीधे-सीधे सर्वहारा विरोधी माँग का दर्जा देते। उनकी भाषा ही यही नहीं होती कि सुधरी गृहस्थी बढ़िया चीज़ है, ज़्यादा सस्ते हल ख़रीदने में कोई बुराई नहीं। वे सम्पादक-मण्डल और सुखदेव के 'मार्क्सवादी विश्लेषण' से सहमत होते तो सीधे-सीधे कहते कि इसमें बुराई है और बेमुरव्वत होकर इसका डटकर विरोध करते। यही दिखाने के लिए यह उद्धरण दिया गया था कि लेनिन लागत मूल्य घटाने की माँग को सर्वहारा विरोधी माँग का दर्जा देते नहीं दिखायी देते।

सुखदेव अब आगे कहते हैं : 'स्पष्ट है कि यहाँ पर लेनिन बुर्जुआ वर्ग द्वारा छोटे-मँझोले किसानों को अपने पक्ष में करने के लिए किये जाने वाले कृषि सुधारों की ही चर्चा कर रहे हैं, न कि लागत मूल्य घटाने को किसानों की मुख्य माँग के रूप में पेश कर रहे हैं। अब अगर हमारे यहाँ भी बुर्जुआ वर्ग या उसकी सरकार कृषि सुधारों का कोई काम करे, जिससे छोटे-मँझोले किसानों को फ़ायदा होता हो तो क्या कम्युनिस्ट उसका विरोध करेंगे? पर ऐसे सुधारों के पीछे बुर्जुआ सरकार की नीयत को ज़रूर नंगा करेंगे।"

बिल्कुल ठीक सुखदेव जी। सुखदेव कहते हैं कि लेनिन जिन कृषि सुधारों का उल्लेख कर रहे हैं, अगर बुर्जुआ सरकार उन्हें करती है तो हम उनका विरोध नहीं करेंगे। लेनिन का उद्धरण सामने है। वे जिन कृषि सुधारों की चर्चा कर रहे हैं उनमें शामिल हैं : सस्ते हल, सस्ते मवेशी, सस्ती खाद, किसान बैंक आदि। सस्ती खाद हो सकती है तो सस्ता बीज और सस्ता बिजली-पानी भी हो सकता है। यानी कुल मिलाकर यह लागत मूल्य घटाने का सवाल ही है। अब अगर खाद का दाम घटाना सर्वहारा विरोधी है तो भला सुखदेव इसका क्यों नहीं विरोध करना चाहते हैं? क्या सरकार यह काम अपनेआप करेगी तो यह सर्वहारा विरोधी नहीं होगा? क्या उस समय इसमें मार्क्सवादी विश्लेषण का दूसरा फ़ार्मूला लगेगा?

तो सुखदेव जी यह कृषि सुधार सर्वहारा विरोधी नहीं है, इसीलिए हम इनका विरोध नहीं करते हैं; यह तो तय हो गया। लेकिन बुर्जुआ सरकार यह काम करती है तो हम इसके पीछे उसकी नीयत को ज़रूर नंगा करेंगे। बिल्कुल ठीक। असली बात यह नीयत का सवाल ही है। अगर इन माँगों को अलग-थलग करके छोटे-मँझोले किसानों के उद्धार के लिए केन्द्रीय माँग के रूप में उठाया जाता है तो यह निश्चित तौर पर किसानों में यह भ्रम पैदा करेगा कि इस पूँजीवादी व्यवस्था में जिया जा सकता है और तबाही से बचा जा सकता है। यह बात उसे सर्वहारा आन्दोलन के विरोध में खड़ा करेगी लेकिन यदि सामाजवादी क्रान्ति की लड़ाई से जोड़कर तात्कालिक माँगों के रूप में इन्हें उठाया जाता है तो यह आन्दोलन उन्हें सर्वहारा वर्ग के साथ खड़ा करने में मदद देंगे। सुखदेव ने एक बहुत अच्छा उदाहरण दिया है : "अगर सरकार कोई नहर निकाले तो क्या कम्युनिस्ट उन्हें इस नहर का पानी न इस्तेमाल करने के लिए कहेंगे?" बिल्कुल नहीं सुखदेव जी। लेकिन सिंचाई सुविधा नहीं है तो कम्युनिस्ट क्या नहर बनाने की माँग नहीं उठा सकते हैं? क्या यह सर्वहारा विरोधी माँग होगी? हालाँकि नहर बनने पर इससे सबसे अधिक फ़ायदा धनी किसानों को ही होगा। लेकिन अगर कम्युनिस्ट इस आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे हों तो क्या इस आन्दोलन से उन्हें छोटे-मँझोले किसानों को अपने साथ खड़ा करने में मदद नहीं मिलेगी?

5. सम्पादक-मण्डल यह तर्क देता है कि लागत मूल्य घटाने की माँग छोटे-मँझोले किसानों को शत्रु वर्ग के पाले में धकेल देगी। इसके लिए वह कोई तर्क नहीं देता। मेरी कही हुई एक बात को ही वह इसके पक्ष में उद्धृत करता है : एस. प्रताप ख़ुद स्वीकार करते हैं कि लागत मूल्य घटाने का भी कुल मिलाकर सबसे अधिक फ़ायदा धनी किसानों को ही होगा। मैंने वहीं पर यह बात भी कही है कि जब तक खेती के मालिकाने का सवाल केन्द्र में नहीं लाया जाता तब तक ऐसी किसी भी माँग का सर्वाधिक फ़ायदा धनी किसानों को ही होगा क्योंकि अधिक ज़मीनें तो उन्हीं के पास हैं। लेकिन पहली बात तो यह कि यहाँ छोटे-मँझोले किसानों के लिए लागत मूल्य घटाने की माँग उठाने की बात हो रही है, श्रम लागत वाले सवाल पर बात करते हुए पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है।

दूसरी बात अधिक महत्त्वपूर्ण है, जो अभी तक बहस में नहीं उठी थी। धनी किसानों की लाभकारी मूल्य की माँग के समानान्तर और उसके ख़िलाफ़ ही छोटे-मँझोले किसानों के लिए लागत मूल्य घटाने की माँग उठाने की बात की जा रही है। हम लाभकारी मूल्य की माँग

का विरोध करते हैं और सर्वहारा आन्दोलन मज़बूत होगा तो वह सक्रिय रूप से लाभकारी मूल्य की माँग के ख़िलाफ़ उतरेगा। वह अनाज या अन्य कृषि उत्पादों का दाम बढ़ाने की हर कोशिश का विरोध करेगा। लागत मूल्य घटाने की माँग पर छोटे-मँझोले किसानों के आन्दोलन के समर्थन और लाभकारी मूल्य की माँग के ख़िलाफ़ खड़ा सर्वहारा आन्दोलन ही छोटे-मँझोले किसानों और धनी किसानों के बीच विभाजक रेखा खींच सकता है और उनके वर्गीय अन्तरविरोधों को तीखा कर सकता है। यही उस प्रक्रिया को भी गति देगा तब मँझोले किसानों का एक हिस्सा निर्णायक रूप से सर्वहारा वर्ग के साथ खड़ा हो जायेगा और दूसरा हिस्सा धनी किसानों से जा मिलेगा।

समझदारी के इस धरातल पर पहुँचने के बाद मैं बेलागलपेट यह बात स्वीकार करता हूँ कि वाजिब मूल्य पर दबाव बनाने या किसी भी रूप में किसी भी परिस्थिति में कृषि उत्पादों का दाम गिरने से रोकने या बढ़ाने की बात पूरी तरह प्रतिक्रियावादी है। सच है कि यह लाभकारी मूल्य की माँग से जुड़ती है। यह सच है कि विशेष परिस्थितियों में उदाहरण के तौर पर मिलों द्वारा कृषि उत्पादों का दाम घटाने पर मँझोले किसानों को अपने साथ बनाये रखने की चिन्ता से ही मेरे भीतर यह समझौतावादी सोच पैदा हुई थी। इस प्रतिक्रियावादी पोज़ीशन से मुझे मुक्त करने में सम्पादक-मण्डल, सुखदेव और कुछ अन्य साथियों ने भी भूमिका निभायी। बहस के शुरुआती दौरों में ही मुझे अपनी इस पोज़ीशन के अन्तरविरोध तो समझ में आने लगे थे, लेकिन पूरे तौर पर मामले को न समझ पाने के चलते मैं इसकी विसंगतियाँ ही दूर करने का प्रयास करता रहा था। इस मदद के लिए साथी सुखदेव की गालियों को भी धन्यवाद।

6. अब हम इस बात पर आते हैं कि लागत मूल्य घटाने की माँग यदि सामान्य तौर पर भी उठायी जाये तो वह किस रूप में मँझोले किसानों के हित में है जबकि वह धनी किसानों के ख़िलाफ़ जाती है। मँझोला किसान बस उतनी बड़ी जोत का ही मालिक होता है जिससे कि उसके परिवार का भरण-पोषण हो सके। वह मुनाफ़े के लिए खेती नहीं करता है, इसलिए उसकी मुख्य समस्या लागत की ही होती है। बढ़ती लागतों से उसके लिए खेती करना मुश्किल हो जाता है। पूँजीवादी समाज के रहते यह समस्या ख़त्म नहीं हो सकती और उसका चाहे कितना ही सशक्त संगठन और आन्दोलन हो, इस समस्या को पूरी तरह समाप्त नहीं कर सकता और तबाही उसकी नियति है। लेकिन लागत घटाने की माँग पर आन्दोलन उसे कुछ राहत अवश्य पहुँचा सकता है। उसके जीवन की परिस्थितियों को थोड़ा सहनीय बना सकता है। लेकिन सबसे बड़ी बात यह कि वह अपनी तबाही के ख़िलाफ़ लड़ते हुए पूँजीवादी व्यवस्था के शोषणकारी चरित्र को समझेगा और उसके निचले और रैडिकल हिस्से सर्वहारा वर्ग के मित्र वर्ग के रूप में उसके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर समाजवादी क्रान्ति की लड़ाई में आगे आयेंगे।

लागत मूल्य घटाने की माँग धनी किसानों के हित में नहीं है। धनी किसानों की माँग लाभकारी मूल्य की ही है। यदि लाभकारी मूल्य तय कर दिया जाये तो बढ़ती लागतें धनी किसानों के लिए फ़ायदेमन्द होंगी। क्योंकि वे मुनाफ़े की खेती करते हैं और उनके पास पूँजी

का संकट नहीं होता, इसलिए लागतों का दाम बढ़ने पर वे खेती के उसी टुकड़े पर पहले से अधिक मुनाफ़ा कमा सकेंगे। जबकि लागतों का दाम घटने पर उनका मुनाफ़ा गिरेगा। लाभकारी मूल्य तय न होने पर लागतों का दाम घटने पर उन्हें भी फ़ायदा होगा, बल्कि यदि सामान्य तौर पर लागतों का दाम घटाने की माँग की जाये तो उन्हें ही अधिक फ़ायदा होगा।

7. सम्पादक-मण्डल कहता है कि लेनिन ने जहाँ कहीं भी समाजवादी क्रान्ति के कार्यभारों की चर्चा की है और स्टालिन ने भी 1917 में लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त में जो लिखा है, उसमें दोनों मार्क्सवादी नेताओं ने अर्द्धसर्वहारा यानी ग़रीब किसानों तक को ही साथ लेने की चर्चा की है और मध्यम किसानों की चर्चा तक नहीं की है। इससे व इससे जोड़कर अपनी अन्य बातों से ऐसा लगता है कि सम्पादक-मण्डल यह आम प्रस्थापना देने की कोशिश कर रहा है कि समाजवादी क्रान्ति के दौर में मँझोले किसानों को सिर्फ़ तटस्थ करने की रणनीति अख़्तियार करनी चाहिए। कम से कम उसे अपनी इस बात को स्टालिन और लेनिन के मत्थे नहीं मढ़ना चाहिए। दूसरी बात, सम्पादक-मण्डल के यह विचार उसके पहले के लेख से भी मेल नहीं खाते हैं। यदि उसे तटस्थ करने की ही रणनीति अख़्तियार करनी चाहिए तो सम्पादक-मण्डल ने उसे संगठित करने के लिए माँगों की इतनी लम्बी-चौड़ी सूची क्यों प्रस्तुत की थी? अब यदि उसके विचार बदल गये हैं तो उसे कम से कम इसका उल्लेख तो करना ही चाहिए कि पिछले लेख में वह जो कुछ सोचता था वह ग़लत था और अब उसके विचार आगे बढ़ गये हैं।

मँझोले किसानों के बारे में सर्वमान्य प्रस्थापना तो अभी तक यही रही है कि उन्हें भरसक अपने साथ खड़ा करने की कोशिश की जानी चाहिए और यदि हम उन्हें अपने साथ खड़ा नहीं कर सकते हैं तो कम से कम उन्हें तटस्थ करने की कोशिश करनी चाहिए। इसीलिए हम उसे ढुलमुल संश्रयकारी मानते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि सम्पादक-मण्डल उसे सिर्फ़ तटस्थ करने की ही बात करता है, वह यह भी कहता है कि उसे भरसक पूँजीवादी सत्ता विरोधी माँगों पर सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी के साथ खड़ा करने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन मुख्य बात ज़ोर की है। सम्पादक-मण्डल की बातों में मुख्य ज़ोर अब उसे तटस्थ करने पर चला गया है न कि उसे साथ लेने पर।

दरअसल, मँझोले किसानों के बारे में हमारा ज़ोर कब तक उन्हें साथ लेने पर ही हो और कब उन्हें तटस्थ करने पर, यह देश-काल की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। ख़ासकर, जब क्रान्ति का तूफ़ान खड़ा हो चुका हो तब तक तो वर्गों का राजनीतिक ध्रुवीकरण साफ़ हो जाता है (जैसाकि रूस में 1917 के आसपास के दौर में)। उस समय तक यदि मँझोला किसान हमारे साथ नहीं खड़ा हो चुका हो तो उस समय उसे अपने साथ खड़ा करने की चिन्ता हम नहीं कर सकते, अधिक से अधिक उसे तटस्थ करने के बारे में ही सोच सकते हैं। हमारे यहाँ भी उसके प्रति हमारा दृष्टिकोण इसी से तय होगा और बदलता जायेगा कि संख्या की दृष्टि से वह कितना प्रभावकारी है और किसका पक्ष लेकर खड़ा हो रहा है।

8. अब लागत मूल्य घटाने की माँग के ख़िलाफ़ सम्पादक-मण्डल के एक अन्य तर्क पर आते हैं; जो सबसे महत्त्वपूर्ण है। सम्पादक-मण्डल का कहना है कि लागत मूल्य घटाने

की माँग छोटे-मँझोले किसानों की किसानी अर्थव्यवस्था के प्रति मध्यम किसानों के मोहभ्रम को बढ़ाने का काम करती है। यह ख़तरा तो है ही। लेकिन यह ख़तरा काफ़ी हद तक उसी प्रकृति का है जैसा जनता के बीच सुधार की कार्रवाइयों के साथ होता है। यदि सुधार की कार्रवाइयों को क्रान्तिकारी कार्रवाइयों के मातहत रखकर न अंजाम दिया जाये तो इससे सुधारवाद का ख़तरा पैदा होता है। मैंने पहले ही लिखा था कि देहात में सर्वहारा वर्ग को संगठित किये बग़ैर छोटे-मँझोले किसानों को संगठित करने के काम को हाथ में नहीं लिया जा सकता है। ऐसा करना गम्भीर भटकाव होगा। समाजवादी क्रान्ति के दौर में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग को संगठित करने से पहले ग्रामीण सर्वहारा वर्ग संगठित करने पर ज़ोर देना भी भटकाव ही होगा। देहातों में सर्वहारा वर्ग का सशक्त क्रान्तिकारी आन्दोलन ही वह गारण्टी है जो मँझोले किसानों में किसी भी तरह के मोहभ्रम को पैदा नहीं होने देगा और वर्ग ध्रुवीकरण तीखाकर मँझोले किसानों के निचले व बिचले हिस्सों को निर्णायक तौर पर क्रान्ति के पक्ष में खड़ा करेगा। सर्वहारा वर्ग का आन्दोलन धनी किसानों की लाभकारी मूल्य की माँग का भी डटकर विरोध करेगा और यह भी मँझोले किसानों के बीच ध्रुवीकरण को निर्णायक मंज़िल पर पहुँचायेगा। समाजवादी क्रान्ति के दौर में देहातों में हमारी केन्द्रीय और दीर्घकालिक माँग है भूमि पर निजी मालिकाने को समाप्त कर सामूहिक मालिकाने की व्यवस्था स्थापित करना और बड़े किसानों के फ़ार्मों पर क़ब्ज़ा कर सामूहिक फ़ार्मों की स्थापना करना। इस माँग को एक पल के लिए भी नज़रों से ओझल कर छोटे-मँझोले किसानों के लिए लागत मूल्य घटाने की माँग ही नहीं, कोई भी अन्य माँग उठाना घातक होगा। जहाँ तक इस माँग से यह भ्रम पैदा होने का सवाल है कि इससे छोटी किसानी तबाही से बच जायेगी तो मुझे लगता है कि सम्पादक-मण्डल ख़ुद ही इस भ्रम का शिकार है। अन्यथा यह उसे दिखायी दे जाता कि यह सम्भव नहीं है। किसानी अर्थव्यवस्था में जिस आक्रामक रूप में पूँजी का क़हर जारी है, उसमें अब इन भ्रमों की गुंजाइश ही काफ़ी कम हो गयी है। इस माँग पर आन्दोलन उन्हें सिर्फ़ कुछ राहत ही दे सकता है। तात्कालिक माँगों के साथ ऐसा ही होता है। हाँ, वे अपनी तबाही के ख़िलाफ़ लड़ते हुए अपनी तबाही के कारणों को अवश्य समझ सकेंगे और सर्वहारा क्रान्ति के साथ खड़े हो सकेंगे।

9. मैंने अपने पिछले लेख में इस पर चर्चा की थी कि कैसे पूँजीवादी विकास के साथ-साथ पूरे देश में कई आर्थिक-सामाजिक प्रक्रियाओं से मँझोले किसानों का हिस्सा सिकुड़ रहा है। पिछड़ी खेती के इलाक़ों में तो अभी उसका आधार इतना नहीं सिकुड़ा है कि उसको संगठित करने का सवाल अप्रासंगिक हो गया हो, लेकिन विकसित खेती के इलाक़ों में वह संख्या की दृष्टि से अप्रासांगिक होता जा रहा है। यह एक प्रवृत्ति के रूप में साफ़ दिखायी देता है। लेकिन मेरी जानकारी में, इसके बारे में वर्गीय दृष्टि से कोई शोध या आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए ठोस-ठोस कुछ नहीं कहा जा सकता है। सिर्फ़ बिहार के बारे में एक ऐसे शोध की जानकारी मिली है, लेकिन उसकी रिपोर्ट देखने का अवसर मुझे अभी नहीं मिल सका है। हालाँकि सम्पादक-मण्डल ने भी अपने समाहार में लगभग वही बातें कही हैं जो मैंने कही थीं, इसलिए इस मामले में अभी 'अनपढ़' बने रहने से फ़िलहाल बहस में कोई समस्या नहीं

आने वाली है। अब हम यहाँ इसी मामले से जुड़ी एक अन्य बात की चर्चा करना चाहेंगे।

पिछले लेखों में मैने खेती के विशेषीकरण की चर्चा करते हुए कहा था अब मँझोले किसान भी सिर्फ़ कुछ फ़सलें ही उगाते हैं और उसे बेचकर अन्य फ़सलों को बाज़ार से ख़रीदते हैं। यह सच है कि यह प्रवृत्ति के रूप में पूरे देश में मौजूद है। लेकिन यह विकसित खेती के इलाक़ों में ही सबसे अधिक तीखेपन के साथ मौजूद है। ख़ासकर नक़दी फ़सलों के इलाक़ों में धनी किसानों के साथ-साथ छोटे-मँझोले किसान भी अपनी भूमि के अधिकांश क्षेत्रफल में नक़दी फ़सलें ही उगाते हैं। मुख्यतः दो या तीन फ़सलों पर ही उनकी खेती केन्द्रित है। लेकिन देश के अन्य अधिकांश खेती के पिछड़े इलाक़ों में मँझोला किसान अभी भी अपनी ज़रूरत की सभी नहीं लेकिन अधिकांश फ़सलें उगाने पर ज़ोर देता है। वह बाज़ार में बहुत कम फ़सलें ही बेचता है। यहाँ तक कि पश्चिम के गन्ना बेल्ट का भी अनुभव यह बताता है कि जब कभी भी गन्ना मूल्य भुगतान का संकट बढ़ जाता है, तो ख़ासकर मँझोले किसानों में गन्ना क्षेत्रफल घटाने और अन्य ज़रूरत की फ़सलें उगाने पर ज़ोर बढ़ जाता है। लेकिन यह सर्वमान्य सच्चाई है कि नक़दी फ़सलों के इलाक़े में अधिकांश मँझोले किसान अपनी भूमि के अधिकांश क्षेत्रफल पर इन नक़दी फ़सलों को ही उगाते हैं (कहीं-कहीं एक सीज़न में नक़दी फ़सल और दूसरे सीज़न में सामान्य फ़सल और कहीं-कहीं दोनों सीज़न में नक़दी फ़सल) और अमूमन अन्य ज़रूरत की फ़सलों को बाज़ार से ख़रीदते हैं। नक़दी फ़सलें उगाने वाले ये 'मँझोले किसान' क़र्ज़ लेकर खेती में निवेश करते हैं और मज़दूर लगाकर खेती करने की प्रवृत्ति भी उन्हीं के बीच सबसे अधिक बढ़ी है। पिछले लेख में कही गयी अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए मैं यहाँ सिर्फ़ यह कहना चाहता हूँ कि इन किसानों की जोत चाहे कम हो, लेकिन यदि वे अपने उत्पादन का अधिकांश भाग मण्डी में बेचते हैं तो वे अपनी फ़सलों का मुनाफ़ा ही चाह सकते हैं। इससे उनका वर्गीय रूपान्तरण हो जाता है। मैंने अपने पिछले लेख में कहा था कि ऐसे मँझोले किसान जो अपनी फ़सलें बेचकर अन्य ज़रूरत की फ़सलें बाज़ार से ख़रीदते हैं, उन्हें लाभकारी मूल्य से कोई फ़ायदा नहीं होगा, क्योंकि लाभकारी मूल्य का तर्क तो दोनों ही फ़सलों पर लागू होगा। यह सच है लेकिन यदि ये किसान अपने उत्पादन का अधिकांश भाग मण्डी में बेचते हैं तो वे लाभकारी मूल्य की माँग का ही समर्थन करेंगे। अधिकाधिक मज़दूर लगाकर खेती करने की प्रवृत्ति और अपने उत्पादन का अधिकांश भाग मण्डी में बेचने से उसका वर्गीय रूपान्तरण हो जाता है और वह अब सर्वहारा का संश्रयकारी मँझोला किसान नहीं, अपने वर्ग-चरित्र में छोटा-मोटा कुलक बन चुका है। इसकी तबाही ही इसे हमारे साथ ला सकती है। क़र्ज़ में डूबे इन किसानों की तबाही की भीषण स्थिति को नक़दी फ़सलों के इलाक़ों में किसानों की आत्महत्याओं में देखा जा सकता है।

10. सम्पादक-मण्डल अपने लेख में बार-बार कहता है कि मैं अपनी पोज़ीशन से दायें-बायें खिसकता रहा हूँ, लीपापोती करता रहा हूँ और अपनी ग़लती कुछ हद तक मानते हुए भी अपनी पोज़ीशन पर डटा रहा हूँ। पढ़ने से साफ़ लगता है कि वह हमारे लेख पर सामान्य टिप्पणी कर रहा है। अपने तर्क कमज़ोर होने पर ही पाठकों को पूर्वाग्रहित करने के लिए कोई ऐसा काम कर सकता है।

अपनी जगह पर सावधान की मुद्रा में बिल्कुल स्थिर खड़ा विद्वान सम्पादक-मण्डल यह तो समझता ही होगा कि किसी भी मुद्दे (ख़ासकर ऐसे उलझाऊ सवाल) पर मुख्यतः और मूलतः सही अवस्थिति पर पहुँच जाने के बाद भी बहस में या सामाजिक व्यवहार में उसकी बहुतेरी ऐसी विसंगतियाँ उजागर होती हैं और इन्हीं प्रक्रियाओं में इन विसंगतियों को दूर कर सही अवस्थिति तक पहुँचा जा सकता है। मेरे जैसे 'शाख पर बैठे हुए उल्लू' पर तो यह और भी अधिक लागू होता है। मुझे नहीं पता कि इस बहस के दौरान सम्पादक-मण्डल की अपनी समझदारी में कुछ इज़ाफ़ा हुआ या नहीं (हालाँकि कम से कम अपनी एक ग़लती को समझने का मौक़ा तो उसे भी मिला), मुझे तो बहस के दौरान इस समस्या से जुड़े कई पहलुओं को और अधिक समझने का मौक़ा मिला और उसी के साथ-साथ मैं अपनी पोज़ीशन को विसंगतियों और अन्तरविरोधों से मुक्त करने और उसे विस्तार देने की कोशिश करता रहा।

सम्पादक-मण्डल ने अपने लेख में दो ऐसे सवाल उठाये हैं, जिनसे उसकी 'दायें-बायें खिसकने', 'लीपापोती करने' व ग़लती कुछ हद तक मानने की टिप्पणियाँ जुड़ती हैं। वाजिब मूल्य वाली बात पर और मँझोले किसानों की परिभाषा के सवाल पर। वाजिब मूल्य वाली मेरी पोज़ीशन ग़लत थी और इस सवाल को लेकर मैं किस रूप में अन्तरविरोधग्रस्त था, इसके बारे में मैं पहले ही चर्चा कर चुका हूँ।

मँझोले किसानों की परिभाषा के सवाल पर सम्पादक-मण्डल कहता है कि मैंने बहस में शामिल अपने पहले लेख (नवम्बर, 2004) में कहा था कि मध्यम किसान अपने खेतों में परिवार सहित श्रम करता है और उजरती मज़दूरों से काम नहीं लेता है तथा बाद में दायें-बायें खिसककर कुछ सुधार कर मैंने मध्यम किसानों का सर्वमान्य विभेदीकरण प्रस्तुत करते हुए अपनी अवस्थिति कुछ यूँ रखी कि उच्च-मध्यम किसान कभी-कभी उजरती मज़दूरों से थोड़ा-बहुत काम लेता है।

सम्पादक-मण्डल यह ग़लतबयानी कर रहा है या उससे भूलचूक हुई है? मैंने अपने लेख (नवम्बर, 2004) में कहा था – "उत्पादन प्रक्रिया में हिस्सेदारी के आधार पर मध्यम किसान उसे ही कहा जा सकता है जो मूलतः और मुख्यतः अपना श्रम लगाकर खेती करता है, अपवादस्वरूप ही और आपात परिस्थितियों में ही वह मज़दूर लगाने को मजबूर होता है।" इसी से आगे मैंने लेनिन का उद्धरण भी दिया है जिसमें वे भी कहते हैं कि मँझोले किसानों में कम ही सही, लेकिन कुछ ऐसे किसान हैं जो उजरत पर खेत बनिहार या दिहाड़ीदार लगाते हैं। स्पष्ट है कि यहाँ यही कहा गया है कि मँझोला किसान 'कभी-कभी', 'थोड़ा-बहुत' मज़दूर लगाता है। इसे व्यंग्यात्मक रूप में दायें-बायें खिसकना कहकर सम्पादक-मण्डल अपनी किस प्रवृत्ति को उजागर कर रहा है?

अपने अगले लेख (जनवरी, 2005) में मैंने अपनी पोज़ीशन को विस्तार देते हुए किसानों का सर्वमान्य विभेदीकरण प्रस्तुत कर यही बात कही है कि मँझोले किसानों का बुनियादी चरित्र उसके बीच वाले हिस्से से ही निर्धारित होता है जो अपने श्रम पर आधारित खेती करता है। इसका ऊपरी हिस्सा और निचला हिस्सा एक तरफ़ कुलकों और दूसरी तरफ़ सर्वहारा वर्ग से नज़दीकी बनाते हैं। कोई भ्रम पैदा न हो, इसीलिए यहीं पर यह सर्वमान्य बात

भी कह देना उचित होगा कि यह सर्वमान्य विभेदीकरण सिर्फ़ मँझोले किसानों के चरित्र को समझने के लिए किया जाता है। व्यवहार में यह विभेदीकरण सम्भव नहीं होता है। मँझोले किसान के चरित्र में यह सब घुला-मिला होता है। ऐसे भी मँझोले किसान हो सकते हैं जो मुख्यतः अपने श्रम पर आधारित खेती करते हैं, लेकिन कभी-कभी मज़दूर भी लगाते हैं और कभी-कभी ख़ुद भी मज़दूरी करते हैं। ऐसे भी मँझोले किसान हो सकते हैं जो अन्य मँझोले किसानों की अपेक्षा कुछ अधिक मज़दूर लगाते हों, लेकिन फिर भी मुख्यतः और मूलतः अपने श्रम पर आधारित खेती करते हैं। ऐसे भी मँझोले किसान हो सकते हैं जो कुछ हद तक अपनी जीविका के लिए मज़दूरी पर निर्भर हो चले हैं, लेकिन अभी मुख्यतः अपने श्रम पर आधारित अपनी खेती से ही जीवनयापन करते हों।

सुखदेव और सम्पादक-मण्डल के अनुसार अब भारत की नयी और "विशिष्ट" परिस्थितियों में निम्न-मध्यम और ग़रीब किसानों को भी कभी-कभी विशेष स्थितियों में मज़दूर लगाना पड़ता है। ये नयी और "विशिष्ट" परिस्थितियाँ नहीं हैं, कृषि उत्पादन का चरित्र ही ऐसा होता है कि पहले भी विशेष परिस्थितियों में उन्हें ऐसा करना पड़ता था। लेकिन उस समय अमूमन अदला-बदली के श्रम से काम चला लिया जाता था। अब बदली हुई परिस्थितियों में पूँजीवाद के विकास ने अदला-बदली के श्रम की परम्परा को लगभग ख़त्म कर दिया है और विशेष परिस्थितियों में अब उन्हें भी मज़दूर लगाना पड़ता है। हाँ, खेती में पूँजीवादी विकास के साथ फ़सलों के उत्पादन में ऐसे अनेकानेक तत्त्व पैदा होते हैं जब कृषि कार्यों में आसन्नता का तत्त्व बढ़ जाता है और कुछ ख़ास कार्यों को समय पर निपटा लेना ज़रूरी हो जाता है। इसके साथ ही कुछ कार्यों में विशेषज्ञता की ज़रूरत भी बढ़ जाती है। इसी के साथ-साथ खाद-बीज-बिजली-पानी-जुताई-हार्वेस्टिंग आदि का ख़र्च भी बढ़ता जाता है। यही तो वे परिस्थितियाँ हैं जो मँझोले किसानों के एक हिस्से का कुलकीकरण करती जाती हैं और दूसरे हिस्से को तबाह कर ग़रीब किसानों की श्रेणी में धकेलती जाती हैं। लेकिन मज़दूर लगाने की इस मजबूरी के बढ़ने के बाद भी मँझोले किसान की श्रेणी में तो हम उसी को शामिल कर सकते हैं जो मूलतः और मुख्यतः अपने श्रम पर आधारित खेती करता है और उसके इस बुनियादी चरित्र की बात कहते हुए ही मेरे लेख में कहा गया है कि वह मज़दूर लगाकर खेती नहीं करता है और उसकी लागत मूल्य घटाने की माँग में मज़दूरी घटाने या किसी भी रूप में श्रम लागत कम करने की माँग शामिल नहीं हो सकती है। मज़दूर लगाने की मजबूरी जिस समय उसे उस मंज़िल पर पहुँचा देगी कि मूलतः और मुख्यतः मज़दूर लगाकर खेती करना उसका चरित्र बन जाये और मज़दूरी घटाने की माँग उसकी माँग बन जाये, उस समय वह सर्वहारा का संश्रयकारी मँझोला किसान नहीं रह जायेगा और कुलकों की श्रेणी में शामिल हो जायेगा।

(अप्रकाशित; जनवरी, 2005)

सम्पादक-मण्डल छुप-छुपकर धो रहा है धनी किसानों के घर के पोतड़े

एस. प्रताप

मँझोले किसानों के बारे में सर्वहारा दृष्टिकोण के सवाल पर चली बहस में सम्पादक-मण्डल ने अपनी अवस्थिति प्रस्तुत करते हुए उसे ही बहस का सम्पादकीय समाहार घोषित कर दिया। मुझे अपनी आख़िरी अवस्थिति प्रस्तुत करने का मौक़ा भी नहीं दिया गया और मेरा लेख छापने से इन्कार कर दिया गया। लेकिन दरअसल बहस सिर्फ़ मेरे लिए ही ख़त्म की गयी है। सम्पादक-मण्डल तो एकतरफ़ा बहस जारी रखे हुए है। मेरा लेख तो उसने प्रकाशित नहीं किया लेकिन इस बार 'बिगुल' के मार्च (2005) अंक में मेरे इस अप्रकाशित लेख पर ही छुप-छुपकर पीछे से वार करने की कोशिश की गयी है। इस अंक में लेनिन द्वारा अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की दूसरी कांग्रेस के लिए तैयार की गयी 'भूमि प्रश्न पर मसविदा थीसिस' का अंश प्रकाशित किया गया है और इसके साथ ही एक लम्बी सम्पादकीय टिप्पणी प्रकाशित की गयी है। मैंने अपने अप्रकाशित लेख में सम्पादक-मण्डल और सुखदेव के झूठे और घटिया आरोपों को पूरी तरह ख़ारिज कर दिया है और इससे सम्पादक-मण्डल और सुखदेव की निकृष्ट प्रवृत्ति खुलकर सामने आ गयी है (पढ़ें मेरा नप्रकाशित लेख)। इसके अलावा मेरे इस नप्रकाशित लेख में लागत मूल्य घटाने की माँग भी पूरी तरह स्थापित हो चुकी है। सम्पादक-मण्डल के पास अब कोई तर्क नहीं रह जाते। इसमें उसकी कठदलीली भी सामने आ जाती है। सम्पादक-मण्डल ने मेरा लेख छापने का साहस नहीं जुटाया और ग़ुस्से से पागल होकर अपने उन्हीं झूठे और घटिया आरोपों की एक बार फिर बौछार कर दी। शायद उसे गोयबेल्स की इस बात पर यक़ीन हो गया है कि सौ बार बोलने पर झूठ भी सच हो जाता है। सम्पादक-मण्डल कहता है कि एस. प्रताप नाक का सवाल बनाकर कठदलीली करते रहते हैं; इस लेख में यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी कि नाक का सवाल बनाकर कठदलीली कौन कर रहा है, मैं या सम्पादक-मण्डल? सम्पादक-मण्डल अपनी टिप्पणी में नरोदवाद के विभिन्न रूपों पर ग़ुस्सा ज़ाहिर करते हुए कहता है कि वे धनी किसानों के घरों में पोतड़े धो रहे हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि उन नरोदवादियों के साथ वह ख़ुद भी छुप-छुपकर धनी किसानों के घरों में पोतड़े धोने में लगा हुआ है। लेकिन इस बार वह रँगे हाथों पकड़ा जायेगा और उसका भण्डाफोड़ हो जायेगा।

लेनिन का यह लेख 'भूमि प्रश्न पर प्रारम्भिक मसविदा थीसिस' पढ़ने के बाद तो सम्पादक-मण्डल का रवैया पूरी तरह अचम्भित कर देता है। ऐसा लगता है कि अपने को सही साबित करने की धुन में वह अन्धा होकर कोटेशनों की भीड़ में खो गया है और उनमें शब्दावलियों के अतिरिक्त वह कुछ भी समझने की कोशिश नहीं कर रहा है। लेकिन इस पर थोड़ा आगे बात करेंगे। आइये सबसे पहले इस चीज़ का नज़ारा लें कि वह इस सम्पादकीय टिप्पणी में 'दायें-बायें खिसकते हुए' किस तरह 'चलायमान युद्ध' चला रहा है। मैंने अपने लेख (नवम्बर 2004) में कहा था कि एंगेल्स जिसे छोटा किसान कहते हैं, लेनिन उसे ही मँझोला किसान कहते हैं क्योंकि दोनों की परिभाषा पूरी तरह मेल खाती है। इसके जवाब में सम्पादक-मण्डल ने अपने सम्पादकीय समाहार में कहा – "एंगेल्स मँझोले किसान (लेनिन के मँझोले किसान) को छोटा किसान नहीं कहते, बल्कि जर्मनी और फ़्रांस की परिस्थितियों में उनका यह प्रवर्गीकरण ग़रीब किसानों और निम्न-मध्यम किसानों को ही अपने दायरे में समेटता है।" सम्पादकीय समाहार का जवाब देते हुए मैंने अपने अप्रकाशित लेख में इस पर सवाल उठाया कि ग़रीब किसान अर्द्धसर्वहारा है और एंगेल्स की परिभाषा से यह पूरी तरह स्पष्ट है कि वे छोटे किसान वर्ग में अर्द्धसर्वहारा को शामिल नहीं करते हैं। सम्पादक-मण्डल ने अपनी इस ग़लती को सीधे-सीधे स्वीकार करने का साहस नहीं जुटाया। उसने चुपचाप पिछले दरवाजे से सम्पादकीय टिप्पणी के भीतर ब्रैकेट (कोष्ठक) में अपनी इस ग़लती से छुटकारा पा लिया। टिप्पणी में उसने कोष्ठक में बताया है कि छोटे किसान को निम्न-मध्यम किसान माना जा सकता है। तो आख़िरकार 'दायें-बायें खिसकते हुए' चलायमान युद्ध चलाते हुए वह यहाँ तक पहुँच ही गया कि एंगेल्स का छोटा किसान मँझोला किसान ही है। हालाँकि अभी भी वह सिर्फ़ निम्न-मध्यम किसानों को ही इसमें शामिल करता है, अभी भी वह पूरी तरह सही अवस्थिति नहीं अपना सका है। लेकिन जब उसने क़दम आगे बढ़ा ही लिया है (भले ही छिप-छिपकर) तो यह उम्मीद की जा सकती है कि वह दायें-बायें खिसकता धीरे-धीरे एक क़दम और आगे बढ़ा ही लेगा और मध्यम-मध्यम किसानों को भी एंगेल्स के इस छोटे किसान वर्ग में शामिल कर सही अवस्थिति तक पहुँच जायेगा। मैंने अपने नप्रकाशित लेख में यही कहा है कि एंगेल्स के मँझोले किसान वर्ग में अधिक से अधिक उच्च-मध्यम किसानों का ही हिस्सा शामिल हो सकता है। नतीजतन मध्यम-मध्यम और निम्न-मध्यम किसान एंगेल्स के छोटे किसान की श्रेणी में शामिल होंगे।

लेनिन की भूमि प्रश्न पर मसविदा थीसिस में यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। इस पर चर्चा से पहले यह बात ध्यान में रखना ज़रूरी है कि यहाँ लेनिन ने रूस की परिस्थितियों में किसानों के अपने वर्गीकरण का इस्तेमाल नहीं किया है। यहाँ वे एंगेल्स के वर्गीकरण का इस्तेमाल कर रहे हैं (क्योंकि यह कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की कांग्रेस के लिए और पूँजीवादी देशों के लिए भूमि-सम्बन्ध विषयक कार्यक्रम के रूप में लिखा गया है। इसके बारे में आगे बात करेंगे कि क्यों पूँजीवादी विकास की उन्नत मंज़िलों में एंगेल्स का वर्गीकरण ही अधिक सटीक है।) लेनिन ने अपनी इस थीसिस में एंगेल्स के वर्गीकरण को विस्तार देते हुए वर्गों को और सामाजिक परिवर्तन में उनकी भूमिका को बहुत स्पष्टता के साथ व्याख्यायित

किया है। इसके बाद इस मामले में किसी भ्रम की गुंजाइश नहीं रह जाती है।

छोटे किसान वर्ग के बारे में लेनिन कहते हैं : "छोटे किसान यानी, छोटे पैमाने पर खेती करने वाले, जिनके पास मालिक के रूप में या आसामी के रूप में, ज़मीन के छोटे टुकड़े होते हैं **जिनसे वह अपने परिवारों और खेतीबाड़ी की ज़रूरतों को पूरा कर सकते हैं और बाहर से श्रम भाड़े पर नहीं लेते।**..." इसके बाद वह आगे कहते हैं : "साथ ही कम्युनिस्ट पार्टी को साफ़ तौर पर यह समझना चाहिए कि पूँजीवाद से साम्यवाद में संक्रमण की अवधि के दौरान, यानी सर्वहारा अधिनायकत्व के दौरान, यह तबक़ा, या **किसी भी समय इसका कोई हिस्सा, अपरिहार्यतः व्यापार की निर्बन्ध स्वतन्त्रता और निजी सम्पत्ति के अधिकारों का मुक्त रूप से लाभ उठाने की दिशा में ढुलमुलपन दिखायेगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह तबक़ा छोटे रूप में ही सही, उपभोग की वस्तुओं का विक्रेता है, मुनाफ़ाख़ोरों द्वारा और स्वामित्व की आदतों द्वारा भ्रष्ट हो चुका है।** लेकिन अगर दृढ़ सर्वहारा नीति लागू की जाये और अगर विजयी सर्वहारा वर्ग बड़े भूस्वामियों तथा धनी किसानों के साथ बड़ी दृढ़ता से निपटता है तो इस तबक़े का ढुलमुलपन चिन्तनीय नहीं होगा और इस तथ्य को नहीं बदल सकता कि कुल मिलाकर, यह सर्वहारा क्रान्ति के पक्ष में रहेगा।"

स्पष्ट है कि यहाँ छोटे किसान रूस की परिस्थितियों में लेनिन के वर्गीकरण का मँझोला किसान है जो मूलतः और मुख्यतः अपने श्रम पर आधारित खेती करता है। हमारे देश की आज की परिस्थितियों के हिसाब से देखा जाये तो उच्च-मध्यम किसानों का अधिकाधिक भाड़े पर मज़दूर लगाकर खेती करने वाला हिस्सा इसमें शामिल नहीं हो सकता है। मध्यम-मध्यम और निम्न-मध्यम किसान ही छोटे किसान के इस वर्ग में शामिल हो सकते हैं जो मूलतः और मुख्यतः अपने श्रम पर आधारित खेती करते हैं।

भला यह कैसे सम्भव है कि विद्वान सम्पादक-मण्डल को इतनी स्पष्ट बात भी समझ में नहीं आती। आख़िर किस आधार पर वह कहता है कि मध्यम-मध्यम किसान इस छोटे किसान की श्रेणी में शामिल नहीं हो सकते? पहले भी बिना किसी विश्लेषण के, बिना कोई आधार बताये उसने कहा कि एंगेल्स का यह छोटा किसान ग़रीब किसानों और निम्न-मध्यम किसानों को अपने दायरे में समेटता है और अब फिर बिना किसी आधार के वह कह रहा है कि यह सिर्फ़ निम्न-मध्यम किसान को अपने दायरे में समेटता है। क्या ऐसा नहीं लगता कि सम्पादक-मण्डल बात को समझ तो चुका है, लेकिन मानना नहीं चाहता, खुलकर स्वीकार नहीं करना चाहता कि उसकी अवस्थिति ग़लत है। छुप-छुपकर एक क़दम आगे भी उसने मजबूरी में ही बढ़ाया है। लेनिन ने भूमि प्रश्न पर अपनी इस थीसिस में ग़रीब किसानों (अर्द्धसर्वहारा) को बहुत ही स्पष्ट रूप में छोटे किसानों से अलग परिभाषित कर दिया है। इसके बाद सम्पादक-मण्डल भला क्या करता। इसलिए जल्दी से सम्पादकीय टिप्पणी में ही चुपचाप कुछ इस तरह अपनी ग़लती से पिण्ड छुड़ा लिया कि साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे, ग़लती से छुटकारा भी मिल जाये और किसी को कानोकान ख़बर भी न लगे। अब यह तय किया जाये कि इस पूरे मामले में नाक का सवाल बनाकर कठदलीली मैं कर रहा हूँ या सम्पादक-मण्डल?

आइये अब ज़रा यह देखा जाये कि सम्पादक-मण्डल किस तरह गरज-गरजकर चार क़दम आगे जाकर दिखाता तो यह है कि वह किसानों के सवाल पर सर्वहारा दृष्टिकोण का हिमायती है लेकिन छिपे रूप में वह कुलकों का हिमायती बनकर खड़ा है।

भूमि प्रश्न पर अपनी इस थीसिस में लेनिन ने एंगेल्स के वर्गीकरण को इस्तेमाल करते हुए उसमें शामिल मँझोले किसान वर्ग की भी बहुत स्पष्ट रूप में और विस्तार से व्याख्या की है। लेनिन कहते हैं : "आर्थिक दृष्टि से 'मँझोले किसानों' का मतलब वे किसान होना चाहिए जो, 1. मालिक या आसामी के रूप में ज़मीन के ऐसे टुकड़े जोतते हैं जो छोटे तो हैं लेकिन पूँजीवाद के तहत, न केवल गृहस्थी और खेतीबाड़ी की न्यूनतम ज़रूरतें पूरी करने के लिए पर्याप्त हैं, बल्कि कुछ बेशी पैदावार भी करते हैं जिसे, कम से कम अच्छे वर्षों में, पूँजी में बदला जा सकता है; 2. (इस जगह 'बिगुल' में छपे सत्यम के अनुवाद में कुछ गड़बड़ है और कुछ छूट गया है। यह कुछ इस तरह है : वे अक्सर (उदाहरण के तौर पर दो या तीन में से एक फ़ार्म) भाड़े पर मज़दूर लगाते हैं। जर्मनी के पाँच से दस हेक्टेयर के ग्रुप में आने वाले फ़ार्म उन्नत पूँजीवादी देश में मँझोले किसानों का ठोस उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिनमें 1907 की जनगणना के अनुसार भाड़े पर मज़दूर लगाने वाले फ़ार्मों की संख्या इस ग्रुप के कुल फ़ार्मों की संख्या की एक तिहाई है। फ्रांस में, जहाँ विशिष्ट फ़सलों की खेती अधिक विकसित है, उदाहरण के तौर पर अंगूर की खेती, जिसमें बड़ी मात्रा में श्रम की ज़रूरत होती है, वहाँ इस ग्रुप के फ़ार्मों में सम्भवतः कुछ अधिक मात्रा में भाड़े पर श्रम लगाया जाता है (अनुवाद मेरा, भूमि प्रश्न पर प्रारम्भिक मसविदा थीसिस, लेनिन कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 31, पृ. 156)। इसके बाद लेनिन कहते हैं कि यह मँझोला किसान सर्वहारा का दोस्त नहीं हो सकता। इसे अपने साथ खड़ा करने की चिन्ता करने की बजाय तटस्थ करने का ही कार्यभार हम तय कर सकते हैं। यह उजरती मज़दूरों के सीधे ख़िलाफ़ खड़ा होता है।

इससे स्पष्ट है कि लेनिन दो बातों के आधार पर इस मँझोले किसान वर्ग को परिभाषित करते हैं। वह बेशी उत्पाद पैदा करता है जिसे पूँजी में बदला जा सकता है और वह अधिक मात्रा में भाड़े पर श्रम लगाता है। यह भी स्पष्ट है कि इन दोनों में से कोई एक तत्त्व भी मौजूद है तो वह किसान इस वर्गीकरण के मँझोले किसान वर्ग में ही शामिल होगा और उसका चरित्र पूरी तरह सर्वहारा विरोधी होगा। ऐसे मँझोले किसान भी हो सकते हैं जो विशिष्ट परिस्थितियों में भाड़े पर अधिक श्रम न लगाते हों लेकिन बेशी उत्पाद पैदा कर मुनाफ़ा कमाते हों। ऐसे किसान भी हो सकते हैं जो विशिष्ट परिस्थितियों में भाड़े पर अधिक श्रम लगाते हों लेकिन इतना बेशी उत्पादन न पैदा कर पाते हों जिसे पूँजी में बदला जा सके। लेकिन फिर भी इन दोनों ही स्थितियों में उनका चरित्र सर्वहारा विरोधी होगा।

मैंने अपने लेखों में हमेशा रूस की परिस्थितियों में किसानों के लेनिन के वर्गीकरण को ही इस्तेमाल किया है, जिसमें मँझोला किसान एंगेल्स का और भूमि प्रश्न पर लेनिन की इस थीसिस में भी छोटा किसान है। उपर्युक्त चर्चा में भाड़े पर अधिक मात्रा में श्रम लगाने वाले और बेशी उत्पाद पैदा कर मुनाफ़ा कमाने वाले जिन किसानों की बात की गयी है, उन्हें मैं सर्वहारा के संश्रयकारी मँझोले किसान की श्रेणी में शामिल करने का पुरज़ोर विरोध करता

रहा हूँ। मैं बार-बार इस बात पर ज़ोर देता रहा हूँ कि किसान की जोत भले ही छोटी हो, लेकिन यदि वह अधिकाधिक भाड़े पर श्रम लगाकर खेती करने लगता है तो उसका चरित्र सर्वहारा विरोधी हो जाता है और उसका कुलकीकरण हो जाता है। उसे सर्वहारा के दोस्त वर्ग के रूप में गोलबन्द करने की बात करना प्रतिक्रियावादी क़दम होगा। मैंने अपने आख़िरी, नप्रकाशित लेख में यह बात भी पूरे ज़ोर के साथ उठायी है कि किसान की जोत भले ही छोटी हो, लेकिन यदि वह अपने उत्पाद का अच्छा-ख़ासा हिस्सा मण्डी में बेचता है तो वह अपनी फ़सलों पर लाभकारी मूल्य यानी मुनाफ़ा ही चाह सकता है। वह किसी भी रूप में सर्वहारा वर्ग का दोस्त नहीं हो सकता। उसका कुलकीकरण हो चुका है।

दूसरी तरफ़, अब यह स्पष्ट हो चुका है कि किसी भ्रम या नासमझी में नहीं, बल्कि पूरे सोच-विचार के साथ सम्पादक-मण्डल और सुखदेव एंगेल्स के वर्गीकरण (और भूमि प्रश्न पर लेनिन की इस थीसिस में भी) में शामिल मँझोले किसान के अनुरूप ही अपने मँझोले किसान को परिभाषित करते हैं। इसीलिए उन्होंने भूमि प्रश्न पर लेनिन की यह थीसिस भी प्रकाशित की है कि देखो-देखो लेनिन भी उसी को मँझोला किसान कह रहे हैं जिसे सम्पादक-मण्डल और सुखदेव कह रहे हैं। यानी, उनका मँझोला किसान अधिकाधिक भाड़े पर मज़दूर लगाकर खेती करता है और बेशी उत्पाद पैदा करता है जिसे कम से कम अच्छे सालों में पूँजी में बदला जा सकता है।

लेकिन मज़ेदार बात यह है कि लेनिन और एंगेल्स तो इसे सीधे-सीधे सर्वहारा विरोधी बताते हैं; जबकि सम्पादक-मण्डल और सुखदेव इसे अपना ढुलमुल दोस्त मानते हैं। सम्पादक-मण्डल ने (और सुखदेव भी इसका समर्थन करते हैं) इसी मँझोले किसान (साथ में छोटा किसान भी) का आन्दोलन संगठित करने के लिए अख़बार के ढाई पन्नों में (बिगुल, फ़रवरी 2003) विशद ठोस कार्यक्रम और नारे दिये हैं। अपने इस ठोस कार्यक्रम और नारों को लेकर वह इन मँझोले किसानों को सर्वहारा के दोस्त वर्ग के रूप में साथ खड़ा करने के लिए उनके बीच जाने का आह्वान करता है। हालाँकि सम्पादकीय समाहार वाले उसके लेख में ज़ोर उसे तटस्थ करने पर हो गया है, लेकिन वह अभी भी उन्हें संगठित करने की बात करता है। उसने मँझोले किसानों को संगठित करने के लिए अपने विशद ठोस कार्यक्रम और नारों को अभी छोड़ा नहीं है। इस समाहार में भी वह इसका उल्लेख करता है और उसे सही मानता है। भूमि प्रश्न पर लेनिन की थीसिस से यह स्पष्ट हो चुका है कि उसका यह मँझोला किसान सर्वहारा वर्ग का दोस्त नहीं है। वह छोटा कुलक है और क्रान्ति विरोधी है। मैंने अपने लेख (जनवरी 05) में सीधे-सीधे कहा है :

"...समाजवादी क्रान्ति के दौर में ऐसा कोई भी वर्ग सर्वहारा वर्ग का दोस्त नहीं हो सकता जिसका अस्तित्व उजरती श्रम के शोषण पर टिका हो। साथी सुखदेव और सम्पादक-मण्डल जिसे मँझोला किसान कह रहे हैं अगर वही मँझोला किसान है तो उसे संगठित करने की बात ही भूल जानी चाहिए। वह अपने पूरे अस्तित्व के साथ सर्वहारा क्रान्ति का विरोधी है। ऐसे में सम्पादक-मण्डल द्वारा उसे संगठित करने के लिए माँगों की जो लम्बी सूची पेश की गयी है – वह एक प्रतिक्रियावादी क़दम है। और दरअसल, ऐसा ही है भी। क्योंकि जिसे वे मँझोला

किसान कह रहे हैं वह सर्वहारा का संश्रयकारी मँझोला किसान नहीं, छोटा-मोटा कुलक है, धनी किसान है।"

मैंने अपने नप्रकाशित लेख में "मँझोले किसानों" के इस हिस्से या छोटे कुलकों के बारे में कहा है :

"अधिकाधिक मज़दूर लगाकर खेती करने की प्रवृत्ति और अपने उत्पादन का अधिकांश भाग मण्डी में बेचने से उसका वर्गीय रूपान्तरण हो जाता है और अब वह सर्वहारा का संश्रयकारी मँझोला किसान नहीं, अपने वर्ग-चरित्र में वह छोटा-मोटा कुलक बन चुका है। इसकी तबाही ही इसे हमारे साथ ला सकती है।"

उन्हीं किसानों को जिन्हें मैं छोटा-मोटा कुलक कह रहा हूँ, एंगेल्स के वर्गीकरण में और लेनिन की भूमि प्रश्न सम्बन्धी थीसिस में मँझोले किसान वर्ग में शामिल किया गया है। हमारे देश में वे धनी किसान आबादी का अच्छा-ख़ासा हिस्सा बनते हैं। लेनिन और एंगेल्स तो पूरे ज़ोर के साथ इसे सर्वहारा विरोधी बताते हैं और सीधे-सीधे कहते हैं कि इसे अपने साथ लाने का कार्यभार सर्वहारा वर्ग नहीं तय कर सकता। लेकिन सम्पादक-मण्डल धनी किसानों के इस हिस्से को अपना ढुलमुल दोस्त बताते हुए अभी भी उसे संगठित करने की वकालत कर रहा है। सम्पादक-मण्डल और 'मार्क्सवादी' नरोदवादियों में अन्तर बस इतना ही है कि नरोदवादी पूरी बेशर्मी के साथ धनी किसानों की हिमायती कर रहे हैं। लेकिन सम्पादक-मण्डल में अभी शर्मो-हया थोड़ी बाक़ी है, इसलिए वह पर्दे में छुप-छुपकर धनी किसानों के घरों में पोतड़े धो रहा है। भाँडा फूटने के डर से सम्पादकीय समाहार में इस गन्दे काम से छुटकारा पाने के लिए उसकी छटपटाहट साफ़ दिखायी देती है। ईश्वर उसकी मदद करे और उसे इस नरक से शीघ्र मुक्ति दिलाये।

अब हम किसानों के दो तरह के वर्गीकरण की समस्या पर आते हैं : एक रूस की परिस्थितियों में लेनिन का वर्गीकरण और दूसरा यूरोप की परिस्थितियों में एंगेल्स का वर्गीकरण।

लेनिन अपने वर्गीकरण में आमतौर पर किसानों के तीन वर्गों को चिह्नित करते हैं : 1. ग़रीब किसान या अर्द्धसर्वहारा, 2. मँझोला किसान और 3. धनी किसान। जबकि एंगेल्स (जैसाकि लेनिन ने भूमि प्रश्न पर मसविदा थीसिस में भी दिया है) किसानों को चार वर्गों में विभाजित करते हैं : 1. ग़रीब किसान या अर्द्धसर्वहारा, 2. छोटा किसान, 3. मँझोला किसान और 4. बड़े किसान।

यहाँ यह भी ग़ौरतलब है कि भारत में समाजवादी क्रान्ति का कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए लेनिन के वर्गीकरण को ही इस्तेमाल करते हुए एक दस्तावेज़ 'लाल तारा-2' में भी किसानों के तीन वर्गों को ही चिह्नित किया गया है। देहात के विभिन्न वर्गों की चर्चा करते हुए उसमें किसानों के उन्हीं तीन वर्गों को रेखांकित किया गया है : 1. ग़रीब किसान या अर्द्धसर्वहारा, 2. मँझोला किसान और 3. पूँजीवादी भूस्वामी व कुलक। हम लोग अभी तक इस वर्गीकरण को अपनी परिस्थितियों में सही मानते रहे हैं। आज तक तो इस वर्गीकरण पर कहीं कोई सवाल नहीं उठाया गया है।

मँझोले किसानों के बारे में 'लाल तारा-2' में कहा गया है : "...अपने दोहरे चरित्र के चलते ये क्रान्ति के ढुलमुल दोस्त हैं। ये वर्तमान व्यवस्था के परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण शक्ति हैं। इस वर्ग के ऊपरी दो तबक़ों के मुक़ाबले सबसे निचला तबक़ा अपनी श्रम-शक्ति बेचकर गुजारा करता है, इसलिए इसमें क्रान्तिकारी सम्भावनाएँ सबसे अधिक हैं।"

स्पष्ट है कि यह वर्ग-विभाजन और यह निष्कर्ष इसी प्रस्थापना पर आधारित है कि यह मँझोला किसान मुख्यतः और मूलतः अपने श्रम पर आधारित खेती करता है। इसीलिए वह हमारा दोस्त है। लेकिन वह मालिक किसान है और उत्पादन के साधनों का स्वामी है, भले ही उसका गुज़ारा मुश्किल से ही होता है, इसीलिए उसका चरित्र सर्वहारा विरोधी भी है। इसी दोहरे चरित्र के चलते वह हमारा ढुलमुल दोस्त है। स्पष्ट है कि यह एंगेल्स के वर्गीकरण का मँझोला किसान नहीं है।

'लाल तारा-2' में किये गये किसानों के वर्गीकरण में ही हमारी समस्या के समाधान के सूत्र भी छिपे हुए हैं। पूँजीवादी भूस्वामियों से अलग कुलकों के बारे में चर्चा करते हुए इसमें कहा गया है : "ख़ुशहाल मध्यम वर्ग के मालिक किसानों का बड़ा हिस्सा आज मूलतः पूँजीवादी उत्पादन में लगा हुआ है या इसी दिशा में तेज़ी से क़दम बढ़ा रहा है। पूरे देश में नये कुलक वर्ग का जन्म, विकास और विस्तार इसी वर्ग से हुआ है।" 'लाल तारा-2' में 1980 के आसपास ही ख़ुशहाल मँझोले किसानों के कुलकीकरण की इस प्रक्रिया को चिन्हित कर लिया गया था। यह सर्वमान्य बात है कि तब से उदारीकरण के पूरे दौर में यह प्रक्रिया और तीखी हुई है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि यहाँ मध्यम किसानों के अन्य दो हिस्सों से अलग करते हुए "ख़ुशहाल मध्यम किसानों के बड़े हिस्से" के बारे में बिल्कुल साफ़-साफ़ कहा गया है कि यह पूँजीवादी उत्पादन में लगा हुआ है या उस ओर अग्रसर है। यानी वह मज़दूर लगाकर मुनाफ़े की खेती करता है। इस अर्थ में, उसकी जोत भले ही छोटी हो वह छोटा-मोटा कुलक ही है और ऐसा हो जाने पर उसका चरित्र पूरी तरह सर्वहारा विरोधी हो जाता है और किसी भी रूप में हम उसे दोस्त वर्ग की श्रेणी में खड़ा नहीं कर सकते हैं।

दरअसल, पूँजीवादी विकास जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, कृषि तकनीकों के फैलाव और कृषि के पूरी तरह बाज़ार पर निर्भर होते जाने के साथ ही वर्गविभेदीकरण की प्रक्रिया तीखी हो उठती है। इससे दो वर्गों उच्च-मध्यम किसानों और ग़रीब किसान या अर्द्धसर्वहारा वर्ग के वर्ग-चरित्र का निर्णायक रूप से रूपान्तरण हो जाता है।

पहला, यदि अन्य कोई परिस्थिति आड़े न आये तो अर्द्धसर्वहारा के बड़े हिस्से और सर्वहारा में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। पूँजीवाद की उन्नत मंज़िलों में एक वर्ग के रूप में ग्रामीण अर्द्धसर्वहारा का वजूद ख़त्म हो जाता है, वह सर्वहारा वर्ग में विलीन हो जाता है। उसका अस्तित्व बचा रहता है तो सिर्फ़ पूँजीवादी विकास की विसंगतियों के चलते ही। जैसाकि हमारे देश में इस समय देखा जा सकता है। लेकिन इतना तो तय है कि हमारे यहाँ भी इस अर्द्धसर्वहारा के बड़े हिस्से का वर्ग-चरित्र सर्वहारा का ही हो चुका है या तेज़ी से होता जा रहा है। इसीलिए अब उसे किसान के रूप में नहीं मज़दूर के रूप में ही संगठित और गोलबन्द किया जाना चाहिए। दूसरा, उच्च-मध्यम किसानों का बड़ा हिस्सा पूरी तरह पूँजीवादी उत्पादन

में लग जाता है और अधिकाधिक मज़दूर लगाकर बाज़ार के लिए उत्पादन कर मुनाफ़े की खेती करने लगता है। उसके और कुलकों के चरित्र में कोई बुनियादी फ़र्क़ नहीं रह जाता। वस्तुतः वह कुलक ही बन जाता है। फ़र्क़ सिर्फ़ बड़ी और छोटी जोतों का ही हो सकता है, कम और अधिक मुनाफ़े का ही हो सकता है। फ़र्क़ इस बात का हो सकता है कि यह छोटे कुलक अभी भी अपने खेतों पर खटते हैं जबकि बड़े कुलक खेती में अपना श्रम नाममात्र का ही या बिल्कुल नहीं लगाते हैं। लेकिन दोनों की खेती मूलतः और मुख्यतः उजरती श्रम के शोषण पर ही टिकी होती है।

ये दोनों ही कुलक हैं। लेकिन एक बात में दोनों को अलग किया जा सकता है। छोटी जोत वाले ये कुलक मुनाफ़े के नाम पर बहुत कम ही कमा पाते हैं और इसलिए पूँजी के अभाव में वे तबाही के शिकार होते रहते हैं। पूँजीवादी विकास की अगली मंज़िलों में उनकी तबाही भी निश्चित है। इसीलिए कभी-कभी वे हमारी ओर भी उम्मीद भरी निगाहों से देख लेते हैं। लेकिन इससे हमें इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि वे हमारा दामन थाम लेंगे। हाँ, इतनी सम्भावना अवश्य पैदा होती है कि पूँजी और श्रम के बीच निर्णायक संघर्ष में उन्हें तटस्थ किया जा सके।

एंगेल्स के वर्गीकरण में यही छोटा कुलक मँझोला किसान है। भूमि प्रश्न पर अपनी थीसिस में लेनिन इसी छोटे कुलक को मँझोले किसान के रूप में परिभाषित करते हुए उसे तटस्थ करने का कार्यभार तय करने की बात करते हैं। उच्च-मध्यम किसानों के इस हिस्से के अलावा मँझोले किसानों का बीच वाला और निचला हिस्सा पूँजीवादी विकास की आगे की मंज़िलों में भी लम्बे समय तक बना रहता है और इसी को छोटे किसान वर्ग के रूप में परिभाषित करते हुए एंगेल्स ने और अपनी इस थीसिस में लेनिन ने, उसे सर्वहारा के दोस्त वर्ग (ढुलमुल) के रूप में लामबन्द करने की बात कही है। रूस में उस समय तक खेती में पूँजीवादी विकास पिछड़ा हुआ था और वर्गविभेदीकरण की वह मंज़िल नहीं थी कि वहाँ ग़रीब किसान, छोटे किसान, मँझोले किसान और बड़े किसान का यह वर्गीकरण करना पड़े। लेकिन यूरोप में यह परिस्थिति एंगेल्स के समय ही पैदा हो चुकी थी।

दरअसल, हमारे देश में भी खेती के पूँजीवादी विकास ने वर्गविभेदीकरण की वह मंज़िल पैदा कर दी है और यहाँ भी उच्च-मध्यम किसानों के बड़े हिस्से का कुलकीकरण हो चुका है। भले ही उनकी जोत छोटी हो लेकिन अब वे क़र्ज़ लेकर खेती में निवेश करते हैं; मज़दूर लगाकर खेती करते हैं; बाज़ार के लिए उत्पादन करते हैं और मुनाफ़ा ही उनका धर्म है। हमारे देश में धनी किसानों की पूरी जमात में इन छोटे कुलकों की संख्या ही अधिक है। धनी किसानों के आन्दोलन का यही मुख्य आधार है। इसकी तबाही पर द्रवित होकर इसे अपना दोस्त मान लेना सर्वहारा क्रान्ति के लिए आत्मघाती होगा।

(अप्रकाशित; फ़रवरी, 2005)

मध्यम किसान और लागत मूल्य का सवाल : छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण

सुखदेव

मध्यम किसानों के सवाल पर चल रही बहस में साथी एस. प्रताप का छोटे पैमाने के माल उत्पादन के लिए मोह स्पष्ट नज़र आता है। समाजवादी क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग के संश्रयकारी के रूप में मँझोले किसानों को गोलबन्द करने के नाम पर वह छोटे पैमाने के माल उत्पादन को बनाये रखने की प्रतिक्रियावादी इच्छाएँ पालते हैं, और इस बहस में इन्हीं इच्छाओं से प्रस्थान करते हैं। मगर पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के तहत एस. प्रताप की इस इच्छा की पूर्ति नामुमकिन है, क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था में छोटे पैमाने के माल उत्पादन की तबाही अपरिहार्य है।

इस सम्बन्ध में मार्क्स लिखते हैं, "ग़ैर-खेतिहर आबादी की तुलना में खेतिहर आबादी को लगातार घटाते जाना ही पूँजीवादी उत्पादन का स्वभाव है, क्योंकि उद्योग में (वास्तविक अर्थों में) परिवर्ती पूँजी की सापेक्षता में स्थिर पूँजी की वृद्धि, परिवर्ती पूँजी में निरपेक्ष वृद्धि, यद्यपि सापेक्षतः घटत के साथ-साथ ही चलती है; इसके विपरीत कृषि में किसी भूखण्ड के समुपयोजन के लिए अपेक्षित परिवर्ती पूँजी निरपेक्षतः घटती है; इस प्रकार वह सिर्फ़ वहीं तक बढ़ती है जहाँ तक नयी ज़मीन काश्त में लायी जाती है, लेकिन फिर इसके लिए भी पूर्वापेक्षा के रूप में ग़ैर-खेतिहर आबादी की और वृद्धि आवश्यक है (पूँजी, खण्ड 3, पृ. 558)।"

एक अन्य जगह मार्क्स लिखते हैं, "इस प्रकार भू-सम्पत्ति अपने समस्त पूर्ववर्ती राजनीतिक तथा सामाजिक अलंकरणों और सम्बन्धों का, संक्षेप में उन सभी पारम्परिक उपसाधनों का परित्याग करके, जिनकी – जैसाकि हम आगे चलकर देखेंगे – भू-सम्पत्ति के साथ अपने संघर्ष की गरमी में स्वयं औद्योगिक पूँजीपतियों और उनके सैद्धान्तिक प्रवक्ताओं द्वारा भी निरर्थक और व्यर्थ अतिशयताओं के नाते भर्त्सना की जाती है, अपना विशुद्ध आर्थिक रूप प्राप्त कर लेती है। एक ओर, कृषि का यौक्तिकीकरण (rationalisation), जो उसे पहली बार सामाजिक पैमाने पर चलने में समर्थ बना देता है, और दूसरी ओर, भू-सम्पत्ति

का विसंगति (ad-absurdum) में परिणत कर दिया जाना, ये पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की महान उपलब्धियाँ हैं। अपनी अन्य सभी ऐतिहासिक प्रगतियों की ही भाँति उसने इन्हें भी प्रत्यक्ष उत्पादकों को पहले पूर्णतः कंगाल बनाकर ही हासिल किया है (पूँजी, खण्ड 3, पृ. 542)।"

इसी परिघटना पर लेनिन कहते हैं, "खेती की उपज में माल उत्पादन की पैठ जितनी अधिक होती है और इसके परिणामस्वरूप, खेतिहरों के बीच प्रतिस्पर्धा, ज़मीन और आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष जितना तीखा होता है, यह नियम उतनी ही स्पष्टता के साथ प्रकट होता है, एक ऐसा नियम जो खेतिहर बुर्जुआ वर्ग द्वारा मध्यम और ग़रीब किसानों को धकियाकर बाहर निकालने तक ले जाता है (सम्पूर्ण रचनाएँ, खण्ड 3, पृ. 75, अंग्रेज़ी संस्करण)।"

तब क्या सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधियों को छोटे पैमाने के माल उत्पादन की इस अपरिहार्य तबाही पर आँसू बहाने चाहिए या इस प्रक्रिया को रोकने की कोशिश करनी चाहिए या एस. प्रताप की तरह छोटे पैमाने के माल उत्पादन को बचाये रखने की इच्छाएँ पालनी चाहिए। सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षकों के मुताबिक़ ऐसी कोशिशें या इच्छाएँ सामाजिक विकास और सर्वहारा वर्ग के लिए बेहद ख़तरनाक होंगी। लेनिन लिखते हैं, "किसान समुदाय की तबाही से कृषि का विकास होता है।" (सम्पूर्ण रचनाएँ, खण्ड 3, पृ. 75, अंग्रेज़ी संस्करण)। किसानों के सर्वहाराओं और कृषि बुर्जुआजी में रूपान्तरण से घरेलू मण्डी का जन्म होता है, जिससे उत्पादक शक्तियों के विकास का रास्ता साफ़ होता है। लेनिन के शब्दों में, "किसान समुदाय के ग्रामीण सर्वहारा में रूपान्तरण से मुख्यतः उपभोग की वस्तुओं का बाज़ार निर्मित होता है, जबकि ग्रामीण बुर्जुआ वर्ग में इसके रूपान्तरण से मुख्यतः उत्पादन के साधनों का बाज़ार निर्मित होता है। दूसरे शब्दों में, 'किसान समुदाय' के सबसे निचले समूहों में हमें श्रम-शक्ति का माल में रूपान्तरण दिखायी देता है, और ऊपरी समूहों में उत्पादन के साधनों का पूँजी में रूपान्तरण। इन दोनों ही रूपान्तरणों का परिणाम घरेलू बाज़ार के निर्माण की वह प्रक्रिया होती है जो आमतौर पर पूँजीवादी देशों के लिए सैद्धान्तिक रूप से स्थापित की गयी है।" (उपरोक्त, पृ. 166)

किसानों के विभेदीकरण की बदौलत कृषि में पूँजी निर्माण का रास्ता साफ़ होता है। लेनिन का कहना है, "पूँजी के हिस्से की तुलना में स्थिर पूँजी के हिस्से में तीव्र वृद्धि का भारी महत्त्व होता है (कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा, पृ. 31, अंग्रेज़ी संस्करण)।" किसानों के विभेदीकरण से श्रम का समाजीकरण बढ़ता है जोकि समाजवाद की अपरिहार्य आमद का भौतिक आधार तैयार करता है। लेनिन कहते हैं, "श्रम का समाजीकरण, जो हज़ारों रूपों में अधिकाधिक शीघ्रतापूर्व आगे बढ़ रहा है तथा जो...वित्त पूँजी की मात्रा तथा क्षमता की वृहद वृद्धि में विशेष रूप से प्रत्यक्ष हुआ – यह है समाजवाद के अनिवार्य आगमन का मुख्य भौतिक आधार (उपरोक्त, पृ. 35, हि.सं.)।" बड़े पैमाने का पूँजीवादी माल उत्पादन हमेशा छोटे पैमाने के माल उत्पादन से कहीं बेहतर होता है। इसलिए मार्क्सवादी किसी भी आधार पर छोटे पैमाने के माल उत्पादन के हक़ में नहीं हो सकते। छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्स

कहते हैं, "अपने उत्पादन के साधनों पर कामगार का निजी स्वामित्व छोटे उद्योग का आधार होता है, चाहे वह छोटा उद्योग खेती से सम्बन्धित हो, मैन्युफ़ैक्चरिंग से, या दोनों से। यह छोटा उद्योग सामाजिक उत्पादन के विकास और ख़ुद कामगार के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास की एक अनिवार्य शर्त होता है।....उत्पादन की यह क्षुद्र प्रणाली...फलती-फूलती है, अपनी समस्त शक्ति का प्रदर्शन करती है और पर्याप्त एवं प्रामाणिक रूप प्राप्त करती है केवल उसी जगह, जहाँ किसान उस धरती का मालिक होता है, जिसे वह जोतता है, और दस्तकार उस औज़ार का स्वामी होता है, जिसका वह सिद्धहस्त ढंग से प्रयोग करता है।

"उत्पादन की इस प्रणाली के होने के लिए यह आवश्यक है कि ज़मीन छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटी हुई हो और उत्पादन के अन्य साधन बिखरे हुए हों। जिस प्रकार इस प्रणाली के रहते हुए उत्पादन के इन साधनों का संकेन्द्रण नहीं हो सकता, उसी प्रकार यह भी असम्भव है कि उसके अन्तर्गत सहकारिता, उत्पादन की हर अलग-अलग प्रक्रिया के भीतर श्रम-विभाजन प्रकृति की शक्तियों के ऊपर समाज का नियन्त्रण तथा उनका समाज के द्वारा उत्पादक ढंग से उपयोग और सामाजिक उत्पादक शक्तियों का स्वतन्त्र विकास हो सके। यह प्रणाली तो केवल एक ऐसी उत्पादन-व्यवस्था और केवल एक ऐसे समाज से मेल खाती है, जो संकुचित तथा न्यूनाधिक रूप में आदिम सीमाओं के भीतर ही गतिमान रहता है। जैसाकि पेक्योर ने ठीक ही कहा है, **इस प्रणाली को चिरस्थायी बना देना "हर चीज़ को सर्वत्र अल्पविकसित बने रहने का आदेश दे देना है** (पूँजी, खण्ड 1, पृ. 801, ज़ोर हमारा)।" यह है छोटे पैमाने के माल उत्पादन की असलियत जिसे बचाये रखकर एस. प्रताप "हर चीज़ को सर्वत्र अल्पविकसित बने रहने" का ऐलान करना चाहते हैं।

छोटे पैमाने के माल उत्पादन पर बड़े पैमाने के पूँजीवादी माल उत्पादन की श्रेष्ठता तथा इस प्रक्रिया के नतीजों के बारे में मार्क्स लिखते हैं, "रूपान्तरण की यह प्रक्रिया जैसे ही पुराने समाज को ऊपर से नीचे तक काफ़ी छिन्न-भिन्न कर देती है, कामगार जैसे ही सर्वहारा बन जाते हैं और उनके श्रम के साधन पूँजी में रूपान्तरित हो जाते हैं, पूँजीवादी उत्पादन-प्रणाली ख़ुद जैसे ही अपने पैरों पर खड़ी हो जाती है, वैसे ही श्रम का और अधिक समाजीकरण करने का प्रश्न, भूमि तथा उत्पादन के अन्य साधनों को सामाजिक ढंग से इस्तेमाल किये गये साधनों में और इसलिए सामूहिक साधनों में और भी अधिक रूपान्तरित कर देने का प्रश्न और साथ ही निजी सम्पत्ति का अधिक अपहरण करने का प्रश्न एक नया रूप धारण कर लेते हैं। अब जिसका सम्पत्तिहरण करना आवश्यक हो जाता है, वह ख़ुद अपने लिए काम करने वाला कामगार नहीं है, बल्कि वह है बहुत से कामगारों का शोषण करने वाला पूँजीपति।

"यह सम्पत्तिहरण स्वयं पूँजीवादी उत्पादन के अन्तर्भूत नियमों के अमल में आने के फलस्वरूप पूँजी के केन्द्रीकरण के द्वारा सम्पन्न होता है। एक पूँजीपति हमेशा बहुत से पूँजीपतियों की हत्या करता है। इस केन्द्रीकरण के साथ-साथ, या यूँ कहिए कि कुछ पूँजीपतियों द्वारा बहुत से पूँजीपतियों के इस सम्पत्तिहरण के साथ-साथ, अधिकाधिक बढ़ते हुए पैमाने पर श्रम प्रक्रिया का सहकारी स्वरूप विकसित होता जाता है, प्राविधिक विकास के लिए

सचेतन ढंग से विज्ञान का अधिकाधिक प्रयोग किया जाता है, भूमि को उत्तरोत्तर अधिक सुनियोजित ढंग से जोता-बोया जाता है, श्रम के औज़ार ऐसे औज़ारों में बदलते जाते हैं, जिनका केवल सामूहिक ढंग से उपयोग किया जा सकता है, उत्पादन के साधनों का संयुक्त, समाजीकृत श्रम के साधनों के रूप में उपयोग करके हर प्रकार के उत्पादन के साधनों का मितव्ययिता के साथ इस्तेमाल किया जाता है... उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण और श्रम का समाजीकरण अन्त में एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाते हैं, जहाँ वे अपने पूँजीवादी खोल के भीतर नहीं रह सकते। खोल फाड़ दिया जाता है। पूँजीवादी निजी सम्पत्ति की मौत की घण्टी बज उठती है। सम्पत्तिहरण करने वालों का सम्पत्तिहरण हो जाता है।" (पूँजी, खण्ड 1, पृ. 802-803)

लेनिन का कहना है, "हम यह भी जानते हैं कि मार्क्स का सिद्धान्त यह मानता है कि सम्पदा की वृद्धि जितनी तीव्र होगी, श्रम की उत्पादक शक्तियों का विकास और इसका समाजीकरण जितना ही पूर्ण होगा, **मज़दूर की स्थिति उतनी ही बेहतर होगी** (ए कैरेक्टराइज़ेशन ऑफ़ इकोनॉमिक रोमाण्टिसिज़्म, पेज 24, ज़ोर मूल में)।"

इसी सम्बन्ध में लेनिन आगे लिखते हैं, "...यदि हम संकट की व्याख्या उत्पादन के सामाजिक चरित्र तथा विनियोजन के व्यक्तिगत चरित्र से करते हैं, तो इसी के साथ हम यह स्वीकार करते हैं कि पूँजीवादी मार्ग वास्तविक और प्रगतिशील है तथा "भिन्न-भिन्न मार्गों" की खोज को अर्थहीन रोमानीवाद के तौर पर ख़ारिज कर देते हैं। इसी के साथ हम स्वीकार करते हैं कि यह अन्तरविरोध जितना ही विकसित होगा इससे निकलने का रास्ता उतना ही आसान होगा, और कि इस व्यवस्था के विकास से ही यह रास्ता निकलेगा।" (उपरोक्त, पृ. 50-51)

किसानी के विभेदीकरण का नतीजा समाज के तीखे ध्रुवीकरण में निकलता है। समाज दिन-प्रतिदिन दो ध्रुवों पूँजीपतियों और मज़दूरों के बीच अधिकाधिक बँटता जाता है। जिससे देहात में तथा शहर में भी वर्ग अन्तरविरोध अधिकाधिक साफ़ होते जाते हैं। मार्क्स लिखते हैं, "कृषि के क्षेत्र में, आधुनिक उद्योग का अन्य कहीं से अधिक क्रान्तिकारी प्रभाव रहा है, क्योंकि यह पुराने समाज की बाड़ का काम करने वाले किसान का ख़ात्मा कर देता है और उसकी जगह उजरती मज़दूर को ले आता है। इस तरह सामाजिक परिवर्तनों की चाहत, और वर्ग-शत्रुताएँ देहात में भी उसी स्तर पर ले आयी जाती हैं जिस स्तर पर शहर में होती हैं (पूँजी, खण्ड 1, अंग्रेज़ी संस्करण, पृ. 474, अनुवाद हमारा)।"

छोटे पैमाने का माल उत्पादन सामाजिक विकास (उत्पादक शक्तियों का विकास तथा श्रम का समाजीकरण) तथा वर्गीय ध्रुवीकरण में तो रुकावट है ही, एक अन्य कारण से भी इसका वजूद सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी के लिए नुक़सानदेह है। वह इसलिए कि जिन देशों में छोटे पैमाने के माल उत्पादन का वजूद होता है वहाँ पर मज़दूरों की उजरतें बेहद कम होती हैं। मार्क्स लिखते हैं, "किसान की छोटी जोतें अब वह एकमात्र बहाना है जिससे पूँजीपति ज़मीन से मुनाफ़ा, ब्याज और किराया वसूल करता है, जबकि यह ज़मीन जोतने वाले पर छोड़ देता है कि वह अपनी मज़दूरी कैसे निकालेगा (मार्क्स-एंगेल्स, सेलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 1,

पृ. 481, अनुवाद हमारा)।"

फ़्रेडरिक एंगेल्स लिखते हैं, "और यहाँ आधुनिक मज़दूर के लिए घर और भूस्वामित्व का "वरदान" अपनी पूरी शान के साथ दिखायी देता है। कहीं भी, आयरिश घरेलू उद्योगों में भी नहीं, इतनी कम मज़दूरी नहीं दी जाती है जितनी कि जर्मन घरेलू उद्योगों में। होड़ के कारण पूँजीपतियों को श्रम-शक्ति के दाम में से उसकी भी कटौती करने का मौक़ा मिल जाता है जो परिवार ख़ुद अपने छोटे बग़ीचे या खेत से कमाता है। मज़दूरों को उन्हें दी जाने वाली कोई भी पीस-उजरत स्वीकार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ता है, क्योंकि ऐसा न करने पर उन्हें कुछ भी नहीं मिलेगा और वे केवल अपनी कृषि के उत्पादों से नहीं जीवित रह सकते, और क्योंकि दूसरी ओर, यह कृषि और भूस्वामित्व ही है जो उन्हें उस जगह से बाँधे रखता है और अन्य रोज़गार की तलाश करने से रोकता है। यही वह आधार है जिस पर छोटी-छोटी वस्तुओं की पूरी श्रृंखला के लिए विश्व बाज़ार में प्रतिस्पर्द्धा करने की जर्मनी की क्षमता टिकी हुई है। **सारा मुनाफ़ा सामान्य उजरत में कटौती करके निचोड़ा जाता है और पूरा अतिरिक्त मूल्य ख़रीदार को पेश किया जा सकता है** (मार्क्स-एंगेल्स, सेलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 2, पृ. 301, अनुवाद हमारा, ज़ोर मूल में)।"

लेनिन का कहना है, "...पश्चिमी यूरोप के वे कृषिविज्ञानी जो ग्राम समुदायों के सुदृढ़ीकरण और विकास की माँग करते हैं, क़तई समाजवादी नहीं हैं, बल्कि बड़े भूस्वामियों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले लोग हैं, जो खेतिहर मज़दूरों को ज़मीन के टुकड़े देकर उन्हें बाँट देना चाहते हैं (कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 3, पृ. 28)।"

एक अन्य जगह पर लेनिन (स्कालदिन नामक एक लेखक को उद्धृत करते हुए तथा उससे सहमति जताते हुए) लिखते हैं, "मेरी राय में अनेक किसानों के लिए उनकी कठिन परिस्थिति से निकलने की एक राह खुल जायेगी यदि....किसानों के लिए अपनी ज़मीन छोड़ देना आसान बनाने के उपाय कर दिये जायें।" यहाँ स्कालदिन एक ऐसी इच्छा व्यक्त कर रहे हैं जो नरोदनिक परियोजनाओं के एकदम विपरीत है, जिनकी प्रवृत्ति बिल्कुल विपरीत दिशा में है, यानी ग्राम कम्यून को बनाए रखने, पट्टों को अहस्तान्तरणीय बनाने आदि। उस समय से अब तक इस बात के प्रचुर साक्ष्य मिल चुके हैं कि स्कालदिन एकदम सही थे : यह तथ्य कि किसान ज़मीन से अभी बँधा हुआ है, और किसानी कम्यून एक एकनिष्ठ सामाजिक इकाई है, ग्रामीण सर्वहारा की स्थिति को और बदतर बनाता है तथा देहात के आर्थिक विकास को धीमा करता है, जबकि "बसे हुए सर्वहाराओं" को बँधुआगीरी और अधीनता के सबसे बुरे रूपों, या उनकी उजरतों और जीवन-स्तर को निम्नतम स्तर तक गिरने से किसी भी हद तक नहीं बचा पाता।" (सेलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 1, पृ. 63)

छोटे मालिकों के विभेदीकरण की प्रक्रिया अपरिहार्य है, छोटे पैमाने का माल उत्पादन उत्पादक शक्तियों के विकास तथा श्रम के समाजीकरण में बाधा है, छोटे पैमाने का माल उत्पादन, उजरतों का स्तर बेहद कम रखने में पूँजीपतियों की मदद करता है, इसलिए इसका वजूद सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी के लिए बेहद नुक़सानदेह है, छोटे पैमाने के माल उत्पादन की यह असलियत जानने के बाद, सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि इसे बचाये रखने की बात सपने

में भी नहीं सोच सकते। मगर हमारे यहाँ श्री एस. प्रताप जैसे अजूबों की कमी नहीं है जो छोटे पैमाने के माल उत्पादन को बचाये रखने की भोली लेकिन बेहद प्रतिक्रियावादी इच्छाएँ पालते हैं। एस. प्रताप का कहना है, “लागत मूल्य बढ़ने से उनके लिए (यानी मँझोले किसानों के लिए – लेखक) खेती करना सम्भव नहीं रह गया है। लागत घटने से उनका यह फ़ायदा होगा (बिगुल, जनवरी ’05, पृ. 4)।” एस. प्रताप के कहने का मतलब है कि लागत मूल्य घटने से मँझोले किसानों के लिए खेती करना मुमकिन हो पायेगा, यानी छोटे पैमाने के माल उत्पादन को बचाया जा सकता है।

एक अन्य जगह भी एस. प्रताप थोड़े फेरबदल से यही बात कहते हैं, “मँझोला किसान बस उतनी बड़ी जोत का मालिक होता है, जिससे कि उसके परिवार का भरण-पोषण हो सके। वह मुनाफ़े के लिए खेती नहीं करता, इसलिए उसकी मुखर समस्या लागत की ही होती है। बढ़ती लागतों से उसके लिए खेती करना (यानी अपनी ज़मीन के छोटे से टुकड़े को बचाये रखना नामुमकिन होता जाता है – लेखक) मुश्किल हो जाता है।...लेकिन लागत घटाने की माँग पर आन्दोलन उसे कुछ राहत अवश्य पहुँचा सकता है। (एक छोटे मालिक के रूप में – लेखक) उसके जीवन की परिस्थितियों को थोड़ा सहनीय बना सकता है (उनका पहला अप्रकाशित लेख, पृ. 12)।”

अपने लेखों में एस. प्रताप छोटे मालिकों की तबाही की अपरिहार्यता का बार-बार ज़िक्र करते हैं। मगर जब वह इस अपरिहार्य प्रक्रिया में बाधा डालने के नुस्ख़ों (लागत मूल्य घटाना) का सुझाव देते हैं तो छोटे पैमाने के माल उत्पादन की अपरिहार्य तबाही की स्वीकृति का कोई अर्थ नहीं रह जाता। जो भी परिघटना अपरिहार्य होती है कम्युनिस्ट इस अपरिहार्यता में बाधा डालने की प्रतिक्रियावादी कोशिशें नहीं करते। लेनिन का कहना है, “जब हम समझते हैं कि कोई चीज़ अपरिहार्य है, तो स्वाभाविक रूप से हम उसके प्रति बिल्कुल भिन्न रवैया अपनाते हैं, और हम उसके विभिन्न पक्षों को समझने में सक्षम होते हैं (ए कैरेक्टराइज़ेशन ऑफ़ इकोनॉमिक रोमाण्टिसिज़्म, पृ. 112)।”

सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि छोटे मालिकों को अपनी सम्पत्ति से चिपके रहने का नहीं, बल्कि उससे मुक्त होने का मशविरा देते हैं। फ़्रेडरिक एंगेल्स लिखते हैं, “छोटे किसान को उसकी सम्पत्ति में बचाने के आपके प्रयास उसकी स्वतन्त्रता को नहीं बचाते बल्कि उसकी अधीनता के विशिष्ट रूप को ही बचाते हैं। यह एक ऐसी स्थिति को लम्बा खींच देता है जिसमें न तो वह जी सकता है और न मर सकता है (फ्रांस और जर्मनी में किसानों का प्रश्न)।”

सिर्फ़ सर्वहारा क्रान्ति के विरोधी और मेहनतकशों के दुश्मन ही छोटे पैमाने के माल उत्पादन को बचाने की कोशिशें कर सकते हैं। मार्क्स कहते हैं, “किसानों के मालिकाने के साथ फ़्रांस भूमि के राष्ट्रीकरण से उससे अधिक दूर है जितना कि इंग्लैण्ड अपने ज़मींदारों के साथ है। यह सही है कि फ्रांस में, ज़मीन उन सबके लिए उपलब्ध है जो इसे ख़रीद सकते हैं, लेकिन इसी सुविधा ने ज़मीन को ऐसे छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट दिया है जिन पर छोटे साधनों वाले लोग खेती करते हैं जो मुख्यतः इस ज़मीन पर अपने और अपने परिवारों के

श्रम के बूते पर जीते हैं। भूस्वामित्व के इस रूप और इस पर छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटी खेती आधुनिक कृषि के सभी उपकरणों के प्रयोग को तो नामुमकिन बना ही देती है, ख़ुद ज़मीन जोतने वाले को सामाजिक प्रगति और सबसे बढ़कर भूमि के राष्ट्रीकरण का सबसे पक्का शत्रु बना देती है।... **किसान को औद्योगिक मज़दूर वर्ग के साथ सर्वाधिक घातक शत्रुता में धकेल दिया गया है** (मार्क्स-एंगेल्स, संकलित रचनाएँ, अंग्रेज़ी संस्करण, खण्ड 2, पृ. 289, ज़ोर हमारा)।"

फ़्रेडरिक एंगेल्स लिखते हैं, "शासक वर्ग के सबसे चतुर नेताओं ने हमेशा अपने प्रयास छोटे सम्पत्तिधारकों की संख्या को बढ़ाने पर केन्द्रित किये हैं ताकि सर्वहारा के विरुद्ध अपने लिए एक सेना खड़ी कर सकें। पिछली सदी की बुर्जुआ क्रान्तियों ने सामन्तों और चर्च की बड़ी जागीरों को छोटे-छोटे पट्टों में बाँट दिया, ठीक वैसे ही जैसे आज स्पेनी गणराज्यवादी अब भी मौजूद बड़ी जागीरों के साथ करना चाहते हैं, और इस तरह **छोटे भूस्वामियों का एक वर्ग सृजित किया जो उस समय से समाज का सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी तत्त्व और शहरी सर्वहारा के क्रान्तिकारी आन्दोलन की एक स्थायी बाधा बन चुका है** (उपरोक्त, पृ. 317, ज़ोर हमारा)।"

लेनिन लिखते हैं, "संशोधनवादियों के तर्कों का तथ्यों और आँकड़ों की मदद से विश्लेषण किया गया। यह सिद्ध हुआ कि संशोधनवादी व्यवस्थित ढंग से छोटे पैमाने के आधुनिक उत्पादन की गुलाबी तस्वीर पेश कर रहे थे। छोटे पैमाने के ऊपर बड़े पैमाने के उत्पादन की तकनीकी और वाणिज्यिक श्रेष्ठता, न सिर्फ़ उद्योग में बल्कि कृषि में भी, अकाट्य तर्कों द्वारा सिद्ध हो चुकी है।...छोटे पैमाने का उत्पादन प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के अवशेषों पर टिका होता है – आहार के निरन्तर ख़राब होते जाने के बल पर, कभी ख़त्म न होने वाली भूख के दम पर, काम के घण्टे बढ़ते जाने के दम पर, मवेशियों की संख्या और गुणवत्ता में गिरावट के दम पर, संक्षेप में, उन्हीं तरीक़ों से जिनसे दस्तकारी उत्पादन पूँजीवादी मैन्युफ़ैक्चर के विरुद्ध टिका हुआ था। विज्ञान और तकनोलॉजी में हर प्रगति अपरिहार्य रूप से और लगातार पूँजीवादी समाज में छोटे पैमाने के उत्पादन की बुनियाद कमज़ोर करती रहती है, और समाजवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र का यह कार्यभार है कि इस प्रक्रिया के सभी रूपों की जाँच-पड़ताल करे, जो अक्सर जटिल तथा उलझाव भरी होती है, और छोटे उत्पादक को यह दिखाए कि पूँजीवाद के तहत उसका टिका रहना कितना असम्भव है, पूँजीवाद के तहत किसान की काश्तकारी (peasant farming) कितनी असहाय है, और किसान के लिए सर्वहारा दृष्टिकोण अपनाना कितना ज़रूरी है। इस प्रश्न पर संशोधनवादियों ने, एकतरफ़ा ढंग से चुने गये तथ्यों पर आधारित सतही सामान्यीकरणों का सहारा लेकर और पूरी पूँजीवादी प्रणाली का ज़िक्र न करके, वैज्ञानिक दृष्टि से, पाप किया है। राजनीतिक दृष्टि से, उन्होंने इस तथ्य द्वारा पाप किया है कि अपरिहार्यतः, उन्होंने चाहते या न चाहते हुए, किसान से क्रान्तिकारी सर्वहारा का दृष्टिकोण अपनाने के बजाय छोटे मालिक का दृष्टिकोण (यानी बुर्जुआ का दृष्टिकोण) अपनाने का आग्रह किया (लेनिन, से. व., खण्ड 1, पृ. 52)।"

एस. प्रताप के विचार "हुक्मरानों के सबसे चालाक नेताओं" (छोटे पैमाने के माल उत्पादन को बचाने की भोली इच्छाओं के चलते) तथा संशोधनवादियों (छोटे मालिकों को

सर्वहारा के बजाय एक छोटे मालिक वाला भाव अपनाने का आह्वान करने के चलते) से मिलते-जुलते हैं। इसीलिए छोटे पैमाने के माल उत्पादन के प्रति मार्क्सवादी द्रष्टिकोण की व्याख्या करने के लिए हमने इतने विस्तार में लिखा है, ताकि साथी को इन 'पेटी बुर्जुआ' विचारों से पिण्ड छुड़ाने में मदद मिल सके।

लागत मूल्य के सवाल पर चन्द और बातें

लागत मूल्य घटाने की माँग का विरोध करने के पीछे हमारा सबसे बुनियादी तर्क यह है कि लागत मूल्य घटाने की माँग छोटे/मँझोले मालिकाने की अर्थव्यवस्था के प्रति मध्यम किसान के मोहभ्रम को बढ़ाने का काम करती है और उसे सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी से दूर बड़े मालिक किसानों के निकटतर ले जाने का काम करती है (बिगुल, फ़रवरी 2005, सम्पादकीय समाहार)। इस सम्बन्ध में हमारा दूसरा तर्क यह है कि यह माँग सभी मेहनतकश (सर्वहारा, अर्द्धसर्वहारा तथा मध्यम वर्ग) की साझा माँग नहीं है, और साझा मोर्चा तो साझी माँगों पर ही बनता है। अगर लागत मूल्य घटने से कृषि उत्पादों की क़ीमत में गिरावट आती है तो यह सर्वहारा वर्ग के हित में होगा, मगर तब इससे मँझोले किसानों को कोई फ़ायदा नहीं होगा और अगर लागत मूल्य कम होने से कृषि उत्पादों की क़ीमत में गिरावट नहीं आती तो यह सर्वहारा वर्ग के लिए नुक़सानदेह होगा, क्योंकि कृषि क्षेत्र को दी जाने वाली सब्सिडी का बोझ तो आख़िर उत्पादक वर्ग (मुख्यतः सर्वहारा वर्ग) को ही उठाना पड़ेगा।

साथी एस. प्रताप लागत मूल्य घटाने की माँग पर मँझोले किसानों को संगठित तो करना चाहते हैं, मगर उनके मुताबिक़, पहले कई पूर्व-शर्तों को पूरा होना ज़रूरी है। उनके मुताबिक़, "ग्रामीण सर्वहारा वर्ग को संगठित किये बिना उसे (मँझोले किसानों को) संगठित करने की बात करना पूँजीवादी भूस्वामी वर्ग के हाथों में खेलने जैसी ही बात होगी। मँझोले किसानों के साथ सर्वहारा वर्ग का संश्रय एक संयुक्त मोर्चे में ही ...? हो सकता है और जब सर्वहारा वर्ग संगठित ही न हो तो भला वह संयुक्त मोर्चा क़ायम ही कैसे कर सकता है।" (बिगुल, नवम्बर 2004)। एक अन्य जगह वह लिखते हैं, "समाजवादी क्रान्ति के दौर में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग को संगठित करने से पहले ग्रामीण सर्वहारा वर्ग को संगठित करने पर ज़ोर देना भी भटकाव होगा। देहातों में सर्वहारा वर्ग का सशक्त क्रान्तिकारी आन्दोलन ही वह गारण्टी है जो मँझोले किसानों में किसी भी तरह के मोहभ्रम को पैदा नहीं होने देगा और वर्ग-ध्रुवीकरण तीखा कर मँझोले किसानों के निचले व बिचले हिस्सों को निर्णायक तौर पर क्रान्ति के पक्ष में खड़ा करेगा" (एस. प्रताप का पहला 'अप्रकाशित लेख')। इसके अलावा मँझोले किसानों के लिए लागत मूल्य घटाने की माँग उठाने से पहले एस. प्रताप की एक शर्त और भी है, "जब तक खेती के मालिकाने का सवाल केन्द्र में नहीं लाया जाता ऐसी किसी भी माँग (लागत मूल्य घटाने जैसी) का सर्वाधिक फ़ायदा धनी किसानों को ही होगा, क्योंकि अधिक ज़मीनें तो उन्हीं के पास हैं (बिगुल, नवम्बर 2004)।"

आगे एस. प्रताप लिखते हैं, "समाजवादी क्रान्ति के दौर में देहातों में हमारी केन्द्रीय और दीर्घकालिक माँग है भूमि पर निजी मालिकाने को समाप्त कर सामूहिक मालिकाने की व्यवस्था

स्थापित करना। इस माँग को एक पल के लिए भी नज़रों से ओझल कर छोटे-मँझोले किसानों के लिए लागत मूल्य घटाने की माँग ही नहीं, कोई भी अन्य माँग उठाना घातक होगा (एस. प्रताप का पहला 'अप्रकाशित लेख')।"

हम लोग इस बात को अधिक साफ़-स्पष्ट रूप में कहते हैं कि भूमि पर सामूहिक मालिकाने की व्यवस्था स्थापित करने के बाद (यानी समाजवादी क्रान्ति के बाद) ही मँझोले किसानों को अपनी खेती-गृहस्थी चलाने के लिए सुविधाएँ प्रदान की जा सकती हैं। अगर एस. प्रताप ख़ाली यही कहना चाहते तो हम लोगों के बीच कोई मतभेद नहीं रह जायेगा।

एस. प्रताप मँझोले किसानों के लिए लागत मूल्य घटाने की माँग उठाये जाने से पहले बहुत-सी पूर्व-शर्तों को पूरा कर लेना चाहते हैं। जैसेकि सबसे पहले औद्योगिक सर्वहारा को संगठित करना उसके बाद ग्रामीण सर्वहारा को संगठित करना और उनका सशक्त क्रान्तिकारी आन्दोलन विकसित करना, खेती के मालिकाने के सवाल को केन्द्र में लाना। मगर इतनी सारी पूर्व-शर्तों को पूरा करने के बाद लागत मूल्य को घटाने जैसी किसी भी माँग को उठाने का कोई औचित्य नहीं रह जायेगा। क्योंकि उक्त शर्तों के पूरा होने तक तो राज्यसत्ता का सवाल केन्द्र में आ चुका होगा और ऐसे समय में लागत मूल्य घटाने जैसी आर्थिक माँग तो कोई मूर्ख ही उठा सकता है। तब कम्युनिस्ट तमाम मेहनतकशों (मँझोले किसानों सहित) के सामने वैकल्पिक सत्ता का मॉडल रखेंगे, जिसमें सर्वहारा सत्ता द्वारा मँझोले किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी का ज़िक्र भी होगा।

मँझोले किसानों की परिभाषा के सवाल पर एस. प्रताप का चलायमान युद्ध – या इलाही ये माज़रा क्या है!

आइये अब साथी एस. प्रताप द्वारा मँझोले किसानों की परिभाषा के सवाल पर चलाये गये चलायमान युद्ध का दीदार करें। 'बिगुल' के नवम्बर, 2004 अंक में उन्होंने लिखा था, "मध्यम किसान उसे ही कहा जा सकता है, जो मूलतः और मुख्यतः अपना श्रम लगाकर खेती करता है, अपवादस्वरूप ही और आपात परिस्थितियों में ही वह मज़दूर लगाने को मजबूर होता है।" यहाँ वह मध्यम किसानों द्वारा भाड़े के मज़दूरों से काम करवाने से इन्कार नहीं करते। मगर अपने इसी लेख में थोड़ा आगे चलकर वे मध्यम किसानों द्वारा भाड़े के मज़दूरों से काम करवाने को पूरी तरह ख़ारिज कर देते हैं, जब वह कहते हैं "जहाँ तक मँझोले किसानों का सवाल है, वे मज़दूर लगाकर खेती नहीं करते, तो वे भला मज़दूरी कम करने की माँग क्यों उठायेंगे?" मगर जब हमने 'बिगुल' के दिसम्बर 2004 अंक में लेनिन के हवाले सहित दर्शाया कि मँझोले किसान भी भाड़े के मज़दूरों से काम करवाते हैं तो वह तुरन्त पैंतरा बदलकर कहने लगे, "मँझोले किसानों के वर्ग-चरित्र को समझने के लिए उसे तीन हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है – उच्च-मध्यम किसान का वर्ग-चरित्र कुलकों के नज़दीक का होता है और मँझोले किसानों का यही हिस्सा कभी-कभी मज़दूर लगाता है" (बिगुल, जनवरी 2005)। इसके बाद वह मध्यम-मध्यम और निम्न-मध्यम किसानों की चर्चा करते हैं। एक अन्य जगह

(पहला ‘अप्रकाशित लेख’) वह कहते हैं, “ग़ौर से देखें तो यहाँ मँझोले किसानों द्वारा मज़दूरों को काम पर लगाने की बात ख़ारिज नहीं की गयी है।” ‘बिगुल’ के जनवरी 2005 अंक में वह सिर्फ़ उच्च-मध्यम किसानों द्वारा ही मज़दूरों को काम पर लगाने की बात करते हैं। मगर यहाँ पर फिर वे पैंतरा बदलते हैं और सभी मँझोले किसानों द्वारा मज़दूरों को काम पर लगाने की बात करते हैं।

‘बिगुल’ के मार्च 2005 अंक में छपे लेनिन के लेख पर तो एस. प्रताप यूँ टूट पड़े जैसे उन्हें कोई ख़ज़ाना मिल गया हो। यहाँ पर एस. प्रताप लेनिन द्वारा दी गयी छोटे किसानों की परिभाषा को मँझोले किसानों से गड्डमड्ड करते हुए एक बार फिर मँझोले किसानों द्वारा भाड़े के मज़दूरों से काम करवाने की बात को ख़ारिज कर देते हैं (एस. प्रताप का दूसरा ‘अप्रकाशित लेख’)। इस तरह से चलाते हैं जनाब एस. प्रताप विचारधारात्मक चलायमान युद्ध।

‘बिगुल’ के मार्च 2005 अंक में लेनिन के लेख के रूप में मिले ‘ख़ज़ाने’ को आधार बनाकर एस. प्रताप और भी कुतर्क करने लगते हैं। उनका कहना है कि एंगेल्स जिसे छोटा किसान कहते हैं लेनिन उसे ही मँझोला किसान कहते हैं। यहाँ पर एस. प्रताप सरासर ग़लतबयानी कर रहे हैं। लेनिन उसे ही छोटा किसान कहते हैं, जिसे एंगेल्स कहते हैं और इन दोनों द्वारा मध्यम किसानों की दी गयी परिभाषा में भी कोई अन्तर नहीं है।

अपने (दूसरे ‘अप्रकाशित’) लेख में एस. प्रताप कहते हैं कि जैसे हम लोग के बीच मतभेद मँझोले किसानों पर नहीं बल्कि छोटे किसानों पर है। यह भी सरासर ग़लतबयानी है। हम लोग अब तक मध्यम किसान के सवाल पर ही बहस कर रहे हैं। ‘बिगुल’ नवम्बर 2004 अंक में छपे अपने लेख में एस. प्रताप ने ग्रामीण मेहनतकशों की तीन ही श्रेणियाँ बनायी थीं। सर्वहारा, अर्द्धसर्वहारा तथा मँझोला किसान। इसमें उन्होंने छोटे किसानों जैसे किसी भी समूह का ज़िक्र नहीं किया है। एस. प्रताप जी, अगर मँझोले किसानों से आपका तात्पर्य छोटे किसानों से ही था तो ‘बिगुल’ के जनवरी 2005 अंक में छपे अपने लेख में आपने मँझोले किसानों को तीन हिस्सों (उच्च-मध्यम, मध्यम-मध्यम, और निम्न-मध्यम) में विभाजित क्यों किया था। स्पष्ट है कि हम लोग अब तक मध्यम किसानों के सवाल पर जिन्हें एंगेल्स और लेनिन ने भी मध्यम किसान ही कहा है, बहस कर रहे थे। अब इससे मुकर सकना एस. प्रताप के लिए नामुमकिन है। दूसरी तरफ़ हम लोगों ने ‘बिगुल’ के जनवरी 2003 अंक में मँझोले किसानों की जो परिभाषा दी थी, इस पूरी बहस में उस पर अडिग रहे हैं। जनवरी 2003 में मँझोले किसानों को इस तरह परिभाषित किया गया था, “मँझोले किसानों का मामला थोड़ा अलग है, क्योंकि वह अपने खेतों में थोड़े-बहुत मज़दूर लगाकर भी काम कराता है और अतिरिक्त श्रम को हड़पकर मुनाफ़ा कमाता है।” यह परिभाषा एंगेल्स और लेनिन द्वारा मँझोले किसानों की दी गयी परिभाषा ही है।

एस. प्रताप ने कुछ बातें ज़बरदस्ती हमारे मुँह में ठूँसने की कोशिश की है कि हम कह रहे हैं कि “मँझोले किसान की खेती अब उजरत पर ही आधारित होती है” (बिगुल, जनवरी 2005) कि “मँझोले किसान की खेती अब मुख्यतः उजरती श्रम पर ही आधारित होती है”

कि मँझोले किसान की खेती "बुनियादी तौर पर उजरती श्रम के शोषण पर आधारित होती है।"(पहला 'अप्रकाशित लेख')। पाठक इस बहस में हमारी ओर से लिखे गये लेख पढ़कर देख सकते हैं कि हम लोगों ने मँझोले किसानों को परिभाषित करने में ये बातें कहीं नहीं कही हैं। हमने जो कहा है वह यह है, "जिस हद तक वे (मँझोले किसान) ख़ुद अपनी ज़मीन पर मेहनत करते हैं, उस हद तक मेहनतकश हैं और क्योंकि वे दिहाड़ीदार मज़दूरों को भी अपने खेतों में लगाते हैं, इसलिए वे मज़दूरों की लूट में भागीदार भी हैं। अर्थव्यवस्था में इस दोहरे चरित्र के चलते वे मध्यम हैं, यानी पूरी तरह उजरती श्रम की लूट पर निर्भर धनी किसानों तथा उजरती सर्वहाराओं, अर्द्धसर्वहाराओं के बीच डोलते रहने वाला वर्ग" (बिगुल, दिसम्बर 2004)। मँझोले किसानों के चरित्र की एक और विशेषता हमने यह दिखायी थी, "भले ही मँझोले किसान उजरती श्रम का शोषण करते हैं, पर वे इतना अधिक मुनाफ़ा नहीं कमा पाते कि वे इसे खेती में पुनःनिवेश कर, और ज़मीन ख़रीदकर, धनी किसानों की जमात में शामिल हो सकें। ऐसा इनमें से बहुत कम ही कर पाते हैं। इनमें से ज़्यादातर की नियति यही होती है कि इन्हें देर-सबेर उजरती सर्वहाराओं-अर्द्धसर्वहाराओं की क़तारों में शामिल होना होता है।" (उपरोक्त)

मगर जब मँझोले किसानों की खेती "बुनियादी तौर पर उजरती श्रम के शोषण पर आधारित हो जायेगी, तब उनके चरित्र का मेहनतकश वाला पहलू समाप्त हो जायेगा और वह कुलकों में शामिल हो जायेंगे। मगर जब तक उनका मेहनतकश वाला पहलू बरक़रार है और यह उनके चरित्र का मुख्य पहलू है तब तक उन्हें मँझोले किसानों के समूह में ही रखा जायेगा।" मगर एस. प्रताप को इससे तसल्ली नहीं होगी। उनका कहना है कि हम लोग "जिसे मँझोला किसान कह रहे हैं, वह सर्वहारा का संश्रयकारी मँझोला किसान नहीं, छोटा-मोटा कुलक है, धनी किसान है।" (बिगुल, जनवरी 2005) मगर हम तो उसे ही मँझोला किसान कह रहे हैं, जिसे एंगेल्स तथा लेनिन ने कहा है। एक तरफ़ तो एस. प्रताप मँझोले किसानों को परिभाषित करने के लिए एंगेल्स और लेनिन के उद्धरण देते हैं और दूसरी तरफ़ उन्हीं की दी गयी परिभाषा को मानने से इन्कार कर देते हैं।

समाजवादी क्रान्ति के दौर में सर्वहारा वर्ग की पार्टी मँझोले किसानों को तटस्थ बनाने की नीति अपनाती है। यही सर्वमान्य लेनिनवादी नीति है। मगर एस. प्रताप इससे सहमत नहीं हैं। उन्होंने लिखा है, "सम्पादक-मण्डल यह आम प्रस्थापना देने की कोशिश कर रहा है कि समाजवादी क्रान्ति के दौर में मँझोले किसानों को सिर्फ़ तटस्थ करने की रणनीति अख़्तियार करनी चाहिए। कम से कम उसे अपनी इस बात को स्टालिन और लेनिन के मत्थे नहीं मढ़ना चाहिए (उनका पहला 'अप्रकाशित लेख', पृ. 13)।"

एस. प्रताप जी, आप तो बिना वजह ही आग-बबूला हो रहे हैं, और एक अन्धे निशानची की तरह बेतहाशा तीर छोड़ रहे हैं, जिनमें से कोई भी सही निशाने पर नहीं लगता। एस. प्रताप जी, हम अपनी बातों को लेनिन और स्टालिन के मत्थे नहीं मढ़ रहे, बल्कि उन्हीं के दिखाये रास्ते पर चलने की कोशिश कर रहे हैं। लेनिन लिखते हैं, "क्रान्तिकारी सर्वहारा इस तबक़े को (यानी मँझोले किसानों को) अपनी ओर करने का कार्यभार अपने लिए नहीं

तय कर सकता – कम से कम आसन्न भविष्य में या सर्वहारा अधिनायकत्व के शुरुआती दौर में – बल्कि इसे तटस्थ करने, यानी सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग के बीच के संघर्ष में इसे तटस्थ बनाने के कार्यभार तक स्वयं को सीमित रखना चाहिए (बिगुल, मार्च 2005)।" इस सवाल पर स्तालिन के विचार जानने के लिए हम साथी एस. प्रताप को स्टालिन का लेख 'द थ्री फ़ण्डामेण्टल स्लोगन्स ऑन द पीज़ेण्ट प्रॉब्लम' (प्रॉब्लम्स ऑफ़ लेनिनिज़्म, पृ. 213) पढ़ने की सलाह देंगे ताकि वह जान सकें कि हम अपनी बातें उनके (लेनिन और स्टालिन के) मत्थे नहीं मढ़ रहे। मगर मँझोले किसानों को तटस्थ करने के सवाल पर भी एस. प्रताप 'चलायमान युद्ध' चलाने की कोशिश करते हैं और घुमाकर कान पकड़ते हैं। उनका कहना है कि "यदि हम उन्हें (मँझोले किसानों को) अपने साथ खड़ा नहीं कर सकते हैं तो कम से कम उन्हें तटस्थ करने की कोशिश करनी चाहिए" (पहला अप्रकाशित लेख, पृ. 13)।

एस. प्रताप को एक और भी ऐतराज़ है, "यदि उसे (मँझोले किसान को) तटस्थ करने की ही रणनीति अख़्तियार करनी चाहिए तो सम्पादक-मण्डल ने उसे संगठित करने के लिए माँगों की इतनी लम्बी-चौड़ी सूची क्यों प्रस्तुत की थी (उपरोक्त)?" उस ऐतराज़ के जवाब में इतना ही कहना काफ़ी होगा कि श्रीमान, हमारे पास ऐसा कोई रिमोट कण्ट्रोल नहीं है जिसका बटन दबानेभर से मँझोले किसान सर्वहारा क्रान्ति में तटस्थ हो जायेंगे। उसे तटस्थ करने के लिए भी सर्वहारा वर्ग को उसमें अपने कार्यक्रम का प्रचार करना होगा, सर्वहारा अर्द्धसर्वहारा आबादी के साथ उसकी साझा माँगों पर उसे बुर्जुआ सत्ता के ख़िलाफ़ आन्दोलन में उतारने की कोशिशें भी करनी होंगी, उसे यह बताना होगा कि सिर्फ़ सर्वहारा सत्ता ही उसे ग़रीबी और लाचारी से मुक्त करा सकती है। उसके बीच वैकल्पिक सत्ता के मॉडल के व्यापक प्रचार से ही उसे तटस्थ किया जा सकता है।

(अप्रकाशित; जून, 2005)

परिशिष्ट – एक

समाजवादी क्रान्ति का भूमि-सम्बन्ध विषयक कार्यक्रम और वर्ग-संश्रय : लेनिन की और कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की अवस्थिति

'बिगुल' में समाजवादी क्रान्ति की मंज़िल में मँझोले किसानों के प्रति सर्वहारा वर्ग की पार्टी की नीति को लेकर चली बहस समाप्त हो चुकी है। अपनी अवस्थिति से दायें-बायें हटते हुए तथा अधूरे एवं सन्दर्भ से कटे उद्धरण प्रस्तुत करते हुए एस. प्रताप ने विचारों का जो "चलायमान युद्ध" (मोबाइल वारफ़ेयर) चलाया, उसकी असलियत समापन-बिन्दु तक पहुँचते-पहुँचते एकदम साफ़ हो चुकी थी। लेकिन ऐसे अहम्मन्य "मार्क्सवादी" पण्डितों की कमी नहीं है जो समाजवादी क्रान्ति के वर्ग-संश्रय के प्रश्न पर भयंकर पेटी-बुर्जुआ नज़रिये के शिकार हैं और एस. प्रताप की ही तरह मुद्दे को मानो नाक का सवाल बनाकर कठदलीली करते रहते हैं। ऐसे लोगों के वर्ग-दृष्टिदोष के इलाज के लिए मैं कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की दूसरी कांग्रेस के लिए खुद लेनिन द्वारा तैयार की गयी 'भूमि-प्रश्न पर प्रारम्भिक मसविदा थीसिस' (जुलाई, 1920, कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 31, पृ. 152-164) के दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें बिन्दुओं को हूबहू यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। यूँ तो भूमि-प्रश्न की सांगोपांग समझ के लिए यह पूरा दस्तावेज़ ही बहुत उपयोगी है, लेकिन यहाँ हम सिर्फ़ उस हिस्से को दे रहे हैं जो ग्रामीण सर्वहारा, अर्द्धसर्वहारा (अति छोटे किसान), छोटे किसान (जिन्हें हम निम्न-मध्यम भी मान सकते हैं), और मँझोले किसान और बड़े किसान से सम्बन्धित है। यह अंश 'बिगुल' के आम पाठकों के लिए भी बहुत उपयोगी है और शायद यह उन कठमुल्लावादियों को भी सोचने के लिए कुछ मसाला दे जो भारत में विभिन्न रूपों में नरोदवाद के सड़े माल को नया मार्क्सवादी लेबल लगाकर बेचने में लगे हुए हैं और मध्यम किसानों की तो क्या कहें, धनी किसानों के घरों में पोतड़े धो रहे हैं।

इसलिए, लेनिन की इस ऐतिहासिक थीसिस के इन हिस्सों को देखें :

... ...

2. शहरी सर्वहारा को संघर्ष में देहात के जिन मेहनतकश और शोषित लोगों का नेतृत्व करना होगा, या हर हाल में, अपनी ओर लाना होगा, सभी पूँजीवादी देशों में उनका प्रतिनिधित्व इन वर्गों द्वारा किया जाता है :

पहला, खेतिहर सर्वहारा, उजरती मज़दूर (सालाना, मौसमी या दिहाड़ी) जो पूँजीवादी कृषि उद्यमों में भाड़े पर काम करके आजीविका कमाते हैं। ग्रामीण आबादी के अन्य समूहों से स्वतन्त्र और पृथक रूप से इस वर्ग का संगठन (राजनीतिक, सैनिक, ट्रेडयूनियन, कोआपरेटिव, सांस्कृतिक, शैक्षिक आदि), इस वर्ग के बीच सघन प्रचार और आन्दोलन चलाना, और सोवियतों तथा सर्वहारा अधिनायकत्व के लिए इसका समर्थन हासिल करना सभी देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों का मूलभूत कार्यभार है;

दूसरा, अर्द्धसर्वहारा या वे किसान जो ज़मीन के छोटे-छोटे टुकड़ों पर खेती करते हैं, यानी, वे जो आंशिक रूप से अपनी आजीविका कृषि या औद्योगिक पूँजीवादी उद्यमों में उजरती मज़दूरों के रूप में कमाते हैं और आंशिक रूप से खुद अपने या भाड़े पर लिये ज़मीन के टुकड़ों पर काम करके, जिससे उनके परिवार को गुज़ारे के साधनों का एक हिस्सा ही प्राप्त होता है। ग्रामीण मेहनतकश आबादी का यह समूह सभी पूँजीवादी देशों में बहुत बड़ी संख्या में है; इसके अस्तित्व और विशेष दर्जे को बुर्जुआ तथा दूसरे इण्टरनेशनल के पीले "सोशलिस्ट" कम करके बताते हैं। ऐसा वे एक हद तक मज़दूरों को जानबूझकर धोखा देने के ज़रिये करते हैं और एक हद तक पेटी बुर्जुआ विचारों के ढर्रे पर आँख मूँदकर चलते हुए इस समूह को "किसान समुदाय" के साथ जोड़कर करते हैं। मज़दूरों की आँखों में धूल झोंकने का यह बुर्जुआ तरीक़ा सबसे अधिक जर्मनी और फ्रांस में देखा जाता है, लेकिन अमेरिका और दूसरे देशों में भी यह दिखायी देता है। यदि कम्युनिस्ट पार्टी का काम सही तरीक़े से संगठित है, तो यह समूह इसका पक्का समर्थक बन जायेगा, क्योंकि इन अर्द्धसर्वहाराओं की ज़िन्दगी बेहद कठिन है और सोवियत सरकार तथा सर्वहारा अधिनायकत्व से उन्हें तत्काल और बहुत अधिक लाभ होगा;

तीसरा, छोटे किसान यानी, छोटे पैमाने पर खेती करने वाले, जिनके पास मालिक के रूप में या आसामी के रूप में, ज़मीन के छोटे टुकड़े होते हैं जिनसे वह अपने परिवारों और खेती-बाड़ी की ज़रूरतों को पूरा कर सकते हैं, और बाहर से श्रम भाड़े पर नहीं लेते। यह तबक़ा, निस्सन्देह, सर्वहारा की जीत से लाभ पाने की स्थिति में होता है जो इसे पूरी तरह और तत्काल : (क) बड़े भूस्वामियों को लगान या फ़सल का एक हिस्सा देने की बाध्यता से मुक्त करेगा (उदाहरण के लिए फ्रांस में *मेताएर*, इटली और अन्य देशों में भी); (ख) बन्धक ऋणों से मुक्त करेगा; (ग) बड़े भूस्वामियों द्वारा उत्पीड़न के अनेक रूपों और उन पर निर्भरता (वन्य भूमि और उनका उपयोग आदि) से मुक्त करेगा; (घ) सर्वहारा राज्य द्वारा उनके खेतों को तत्काल सहायता पहुँचायेगा (सर्वहारा द्वारा ज़ब्त किये गये बड़े पूँजीवादी फ़ार्मों के कृषि उपकरणों और इमारतों के एक हिस्से का उपयोग, और सर्वहारा द्वारा ग्रामीण सहकारी समितियों और कृषि संघों का पूँजीवाद के अन्तर्गत सबसे बढ़कर धनी मँझोले किसानों की सेवा करने वाले संगठनों से ऐसे संगठनों में रूपान्तरण जो मुख्य रूप से ग़रीबों, यानी सर्वहाराओं, अर्द्धसर्वहाराओं, छोटे किसानों आदि की मदद करेंगे), और बहुत-सी अन्य चीज़ें।

साथ ही कम्युनिस्ट पार्टी को साफ़तौर पर यह समझना चाहिए कि पूँजीवाद से साम्यवाद में संक्रमण की अवधि के दौरान, यानी सर्वहारा के अधिनायकत्व के दौरान, यह तबक़ा, या

किसी भी समय इसका कोई हिस्सा, अपरिहार्यतः व्यापार की निर्बन्ध स्वतन्त्रता और निजी सम्पत्ति के अधिकारों का मुक्त रूप से लाभ उठाने की दिशा में ढुलमुलपन दिखायेगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह तबक़ा, छोटे रूप में ही सही, उपभोग की वस्तुओं का विक्रेता है, मुनाफ़ाख़ोरी द्वारा और स्वामित्व की आदतों द्वारा भ्रष्ट हो चुका है। लेकिन, अगर दृढ़ सर्वहारा नीति लागू की जाये, और अगर विजयी सर्वहारा वर्ग बड़े भूस्वामियों तथा धनी किसानों के साथ बड़ी दृढ़ता से निपटता है, तो इस तबक़े का ढुलमुलपन चिन्तनीय नहीं होगा और इस तथ्य को नहीं बदल सकता कि, कुल मिलाकर, यह सर्वहारा क्रान्ति के पक्ष में रहेगा।

3) एक साथ लेने पर, ऊपर गिनाये गये तीनों समूह सभी देशों में ग्रामीण आबादी की बहुसंख्या का निर्माण करते हैं। इसीलिए सर्वहारा क्रान्ति की विजय सुनिश्चित है, केवल शहरों में ही नहीं बल्कि देहात में भी। इसकी उलटी सोच भी काफ़ी प्रचलित है; हालाँकि, इसके मौजूद रहने के कारण केवल ये हैं : पहला, बुर्जुआ अर्थशास्त्र और आँकड़ों द्वारा व्यवस्थित ढंग से फैलाया गया धोखा, जो देहात में उपरोक्त वर्गों और शोषकों यानी बड़े भूस्वामियों तथा पूँजीपतियों के बीच मौजूद खाई और अर्द्धसर्वहाराओं तथा छोटे किसानों को बड़े किसानों से अलग करने वाली खाई, दोनों पर पर्दा डालने के लिए सबकुछ करते हैं। दूसरा, इसकी मौजूदगी का कारण यह है कि पीले इण्टरनेशनल के नायक और साम्राज्यवादी विशेषाधिकारों द्वारा भ्रष्ट हो चुके उन्नत देशों के "कुलीन मज़दूर" देहात के ग़रीबों के बीच प्रचार, आन्दोलन और संगठन का वास्तविक सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्य करने में अक्षम हैं और अनिच्छुक भी; अवसरवादियों का पूरा ध्यान हमेशा से इस बात पर केन्द्रित रहा है और अब भी है कि बुर्जुआ वर्ग जिसमें बड़े और मँझोले किसान (जिनकी चर्चा नीचे की गयी है) शामिल हैं, के साथ सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समझौतों के रास्ते कैसे निकाले जायें, न कि बुर्जुआ सरकार और बुर्जुआ वर्ग को सर्वहारा द्वारा क्रान्तिकारी ढंग से उखाड़ फेंकने पर; इसकी मौजूदगी का तीसरा कारण यह समझने से अड़ियलपन भरा इन्कार है – इतना अड़ियल कि इसे पूर्वाग्रह कहा जा सकता है (जो तमाम दूसरे बुर्जुआ-जनवादी और संसदीय पूर्वाग्रहों से जुड़ा हुआ है) – ऐसे सच को समझने से इन्कार है जो मार्क्सवादी सिद्धान्त द्वारा पूरी तरह सत्यापित और रूस में सर्वहारा क्रान्ति के अनुभव से पूरी तरह पुष्ट किया जा चुका है, यानी, ग्रामीण आबादी की तीनों गिनायी गयी श्रेणियाँ – जो सभी देशों में बेहद दबी-कुचली, असंगठित, और अर्द्धबर्बर जीवन स्थितियों में जीने के लिए अभिशप्त हैं – आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से समाजवाद की विजय में रुचि रखती हैं, लेकिन वे क्रान्तिकारी सर्वहारा को दृढ़ समर्थन उसके राजनीतिक सत्ता पर क़ाबिज़ हो जाने के *बाद* ही दे सकती हैं, केवल *तभी* जब वह बड़े भूस्वामियों और पूँजीपतियों से दृढ़तापूर्वक निपट चुका हो, और केवल *तभी* जब ये दबे-कुचले लोग *व्यवहार में* यह देख लेते हैं कि उनके सामने एक संगठित नेता और हिमायती है, जो इतना मज़बूत और दृढ़ है कि उन्हें सहायता और नेतृत्व दे सकता है और सही रास्ता दिखा सकता है।

4) आर्थिक दृष्टि से, "मँझोले किसानों" का मतलब वे किसान होने चाहिए जो, (1) मालिक या आसामी के रूप में ज़मीन के ऐसे टुकड़े जोतते हैं जो छोटे तो हैं लेकिन,

पूँजीवाद के तहत, न केवल गृहस्थी और खेती-बाड़ी की न्यूनतम ज़रूरतें पूरी करने के लिए पर्याप्त हैं, बल्कि कुछ बेशी पैदावार भी करते हैं जिसे, कम से कम अच्छे वर्षों में, पूँजी में बदला जा सकता है; (2) जो अक्सर (उदाहरण के लिए, दो या तीन में से एक किसान) बाहरी श्रम-शक्ति को उजरत पर रखते हैं। किसी उन्नत पूँजीवादी देश में मँझोले किसानों की एक ठोस मिसाल जर्मनी में पाँच से दस हेक्टेयर तक के फ़ार्मों वाला एक समूह है, जिसमें 1907 की जनगणना के अनुसार, उजरती मज़दूरों से काम कराने वाले किसानों की संख्या इस समूह के कुल किसानों की संख्या की क़रीब एक तिहाई है।* फ़्रांस में, जहाँ विशेष फ़सलों – उदाहरण के लिए, अंगूर की खेती जिसमें बहुत बड़ी मात्रा में श्रम की ज़रूरत होती है – की खेती बहुत विकसित है, यह समूह सम्भवतः कुछ अधिक पैमाने पर बाहर से श्रम भाड़े पर लेता है।

क्रान्तिकारी सर्वहारा इस तबक़े को अपनी ओर करने का कार्यभार अपने लिए नहीं तय कर सकता – कम से कम आसन्न भविष्य में या सर्वहारा अधिनायकत्व के शुरुआती दौर में – बल्कि इसे तटस्थ करने, यानी सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग के बीच के संघर्ष में इसे तटस्थ बनाने के कार्यभार तक स्वयं को सीमित रखना चाहिए। यह तबक़ा अपरिहार्यतः इन दो शक्तियों के बीच इधर-उधर डोलता रहता है; नये युग की शुरुआत में और विकसित पूँजीवादी देशों में, मुख्यतः इसका झुकाव बुर्जुआ वर्ग की ओर होगा। ऐसा इसलिए क्योंकि इस तबक़े में सम्पत्ति के मालिकों का विश्व दृष्टिकोण और भावनाएँ हावी हैं। इस तबक़े का प्रत्यक्ष हित मुनाफ़ाख़ोरी में, व्यापार की "स्वतन्त्रता" में और सम्पत्ति में है, और उजरती मज़दूरों के साथ इसका प्रत्यक्ष अन्तरविरोध है। लगान और बन्धक ऋणों को समाप्त करके, विजयी सर्वहारा इस तबक़े की स्थिति में तत्काल सुधार लायेगा। लेकिन, ज़्यादातर पूँजीवादी देशों में, सर्वहारा राज्य को एक झटके में निजी सम्पत्ति का उन्मूलन नहीं करना चाहिए; किसी भी हाल में, यह छोटे और मँझोले दोनों किसानों के लिए, न केवल उनके ज़मीन के टुकड़ों के बने रहने की गारण्टी करता है बल्कि इस बात की भी गारण्टी करता है कि इनके दायरे में वह समस्त क्षेत्र आ जायेगा जिसे आमतौर पर वे लगान पर लेते थे (लगान का ख़ात्मा)।

बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध निर्मम संघर्ष के साथ मिलकर ऐसे उपाय तटस्थीकरण की नीति की सफलता को पूरी तरह सुनिश्चित करते हैं। सर्वहारा राज्य को सामूहिक खेती में संक्रमण को अत्यधिक सावधानी से तथा केवल क्रमिक रूप से संचालित करना चाहिए, उदाहरण की शक्ति से, जिसमें मँझोले किसानों पर ज़रा भी बल प्रयोग न हो।

5) बड़े किसान *(ग्रॉसबावर्न)* कृषि में पूँजीवादी *उद्यमी* हैं, जो नियम के तौर पर बहुत से भाड़े के मज़दूरों को काम पर लगाते हैं और "किसान समुदाय" से उनका जुड़ाव केवल उनके निम्न सांस्कृतिक स्तर, जीवन की आदतों और अपने खेतों पर ख़ुद किये गये शारीरिक

---

* 'बिगुल' में प्रकाशित इस अनुवाद में यहाँ पर छपाई की ग़लतियों के कारण अस्पष्टता थी जिसकी ओर एस. प्रताप ने अपने पहले अप्रकाशित लेख में इशारा किया है; यहाँ इन दो वाक्यों को शुद्ध करके छापा जा रहा है। – स.

श्रम के रूप में ही होता है। यह सबसे बड़ा बुर्जुआ तबक़ा है जोकि क्रान्तिकारी सर्वहारा का खुला और दृढ़निश्चयी शत्रु होता है। देहात में अपने तमाम कार्य में, कम्युनिस्ट पार्टियों को अपना ध्यान मुख्यतः इस तबक़े के विरुद्ध संघर्ष पर, इन शोषकों के विचारधारात्मक और राजनीतिक प्रभाव से ग्रामीण आबादी की मेहनतकश और शोषित बहुसंख्या को मुक्त करने पर, केन्द्रित करना चाहिए।

शहरों में सर्वहारा की जीत के बाद, इस तबक़े की ओर से हर प्रकार के प्रतिरोध और तोड़फोड़ की अभिव्यक्तियाँ, तथा प्रतिक्रान्तिकारी चरित्र की सीधी सशस्त्र कार्रवाइयाँ एकदम अपरिहार्य हैं। इसलिए क्रान्तिकारी सर्वहारा को इस तबक़े को पूरी तरह निहत्था करने के लिए ज़रूरी विचारधारात्मक और संगठनात्मक तैयारी तत्काल शुरू करनी चाहिए, और उद्योग में पूँजीपतियों को उखाड़ फेंकने के साथ ही साथ प्रतिरोध के पहले संकेत मिलते ही इस तबक़े पर अत्यधिक दृढ़, निर्मम और ध्वस्त कर देने वाली चोट करने की तैयारी करनी चाहिए। इस उद्देश्य से, ग्रामीण सर्वहारा को सशस्त्र किया जाना चाहिए और ग्राम सोवियतें संगठित की जानी चाहिए, जिनमें शोषकों का कोई स्थान न हो, और जिनमें सर्वहाराओं और अर्द्धसर्वहाराओं का वर्चस्व सुनिश्चित हो।

बहरहाल, बड़े किसानों के स्वत्वहरण को भी विजयी सर्वहारा का तात्कालिक कार्यभार नहीं बनाया जा सकता क्योंकि ऐसे फ़ार्मों के समाजवादीकरण की सामाजिक परिस्थितियों के साथ ही साथ भौतिक और ख़ासकर तकनीकी परिस्थितियाँ अभी मौजूद नहीं हैं। कुछ अलग-अलग और शायद अपवादस्वरूप मामलों में, उनकी ज़मीन के वे हिस्से जिन्हें वे छोटे-छोटे टुकड़ों में भाड़े पर देते हैं या जिनकी आसपास के छोटे किसानों की आबादी को ख़ासतौर पर ज़रूरत हो, को ज़ब्त किया जायेगा। बड़े किसानों के कृषि यन्त्रों आदि के एक हिस्से के, कुछ शर्तों पर, छोटे किसानों द्वारा मुक्त रूप से इस्तेमाल की भी गारण्टी की जायेगी। हालाँकि आम नियम के तौर पर सर्वहारा राज्यों को बड़े किसानों को अपनी ज़मीन अपने पास रखने की छूट देनी चाहिए, और इसे तभी ज़ब्त करना चाहिए जब वे मेहनतकश और शोषित लोगों की सत्ता का प्रतिरोध करें। रूसी सर्वहारा क्रान्ति के अनुभव, जिसमें बड़े किसानों के विरुद्ध संघर्ष अनेक विशेष परिस्थितियों के कारण जटिल और लम्बा चला, ने यह दिखाया कि अगर प्रतिरोध की थोड़ी-सी कोशिश करने पर भी कड़ाई से सबक़ सिखाया जाये, तो यह तबक़ा सर्वहारा राज्य द्वारा तय किये गये कार्यभारों को वफ़ादारी से पूरा करने में सक्षम है, और यहाँ तक कि, बहुत धीरे-धीरे ही सही, उस सरकार के लिए सम्मान भी इसमें पैदा होने लगता है जोकि सभी काम करने वालों की रक्षा करती है और निकम्मे अमीरों के प्रति निर्मम होती है।

रूस में बुर्जुआ वर्ग की पराजय के बाद बड़े किसानों के विरुद्ध सर्वहारा के संघर्ष को जटिल बनाने और धीमा करने वाली विशेष परिस्थितियाँ, मुख्य रूप से, निम्नलिखित थीं : 25 अक्टूबर (7 नवम्बर) 1917 के बाद रूसी क्रान्ति ने "आम जनवादी" मंज़िल को पार कर लिया – यानी मूलतः समग्र किसान समुदाय द्वारा भूस्वामियों के विरुद्ध बुर्जुआ जनवादी संघर्ष, शहरी सर्वहारा की सांस्कृतिक और संख्यात्मक कमज़ोरी; और अन्त में, बहुत अधिक दूरियाँ और संचार के बहुत ख़राब साधन। चूँकि उन्नत देशों में संघर्ष को धीमा करने वाली

ये स्थितियाँ मौजूद नहीं हैं, इसलिए यूरोप और अमेरिका के क्रान्तिकारी सर्वहारा को अधिक ऊर्जस्वी ढंग से तैयारी करनी चाहिए, और बड़े किसानों के प्रतिरोध पर पूर्ण विजय ज़्यादा तेज़ी, दृढ़ता और सफलता के साथ हासिल करनी चाहिए। यह अनिवार्य है क्योंकि, जब तक ऐसी पूर्ण विजय हासिल नहीं होती, तब तक ग्रामीण सर्वहाराओं, अर्द्धसर्वहाराओं और छोटे किसानों का जनसमुदाय सर्वहारा राज्य को पूरी तरह स्थिर राज्य के रूप में स्वीकार्य नहीं करेगा।

प्रस्तुति : सत्यम

(बिगुल, मार्च, 2005)

परिशिष्ट – दो

किसानों के बारे में कम्युनिस्ट दृष्टिकोण : कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू

व्ला.इ. लेनिन

"...वर्ग-चेतन मज़दूर के लाल झण्डे का पहला मतलब है, कि हम अपनी पूरी शक्ति के साथ पूरी आज़ादी और पूरी ज़मीन के लिए किसानों के संघर्ष का समर्थन करते हैं; दूसरे, इसका अर्थ है कि हम यहीं नहीं रुकते बल्कि इससे आगे जाते हैं। हम आज़ादी और ज़मीन के साथ ही समाजवाद के लिए युद्ध छेड़ रहे हैं। समाजवाद के लिए संघर्ष पूँजी के शासन के विरुद्ध संघर्ष है। यह सर्वप्रथम और सबसे मुख्य रूप से उजरती मज़दूर द्वारा चलाया जाता है जो प्रत्यक्षतः और पूर्णतः पूँजीवाद पर निर्भर होता है। जहाँ तक छोटे मालिक किसानों का प्रश्न है, उनमें से कुछ के पास ख़ुद की ही पूँजी है, और प्रायः वे ख़ुद ही मज़दूरों का शोषण करते हैं। इसलिए सभी छोटे मालिक किसान समाजवाद के लिए लड़ने वालों की क़तार में शामिल नहीं होंगे, केवल वही ऐसा करेंगे जो कृतसंकल्प होकर सचेतन तौर पर पूँजी के विरुद्ध मज़दूरों का पक्ष लेंगे, निजी सम्पत्ति के विरुद्ध सार्वजनिक सम्पत्ति का पक्ष लेंगे।"

('किसान समुदाय और सर्वहारा')

"पूँजीवाद के अन्तर्गत छोटा मालिक किसान, वह चाहे या न चाहे, इससे अवगत हो या न हो, एक माल-उत्पादक बन जाता है और यही वह परिवर्तन है जो मूलभूत है, क्योंकि केवल यही उसे, बावजूद इसके कि वह भाड़े के श्रम का शोषण नहीं करता, एक निम्न-पूँजीपति बना देता है और उसे सर्वहारा के एक विरोधी के रूप में बदल देता है। वह अपना उत्पादन बेचता है, जबकि सर्वहारा अपनी श्रम-शक्ति। एक वर्ग के रूप में छोटा मालिक किसान केवल कृषि उत्पादों के मूल्य में वृद्धि ही चाह सकता है और यह बड़े भूस्वामियों के साथ लगान में उसकी हिस्सेदारी और शेष समाज के विरुद्ध भूस्वामियों के साथ उसकी पक्षधरता के समान है। माल-उत्पादन के विकास के साथ ही छोटा मालिक किसान अपनी वर्ग-स्थिति के अनुरूप एक निम्न-भूसम्पत्तिवान मालिक बन जाता है।"

('कृषि में पूँजीवाद के विकास के आँकड़े')

"... यदि रूस में वर्तमान क्रान्ति की निर्णायक विजय जनता की पूर्ण सम्प्रभुता क़ायम करती है, यानी एक गणराज्य और एक पूर्ण जनवादी राज्य व्यवस्था की स्थापना करती है, तो पार्टी ज़मीन के निजी मालिकाने को ख़त्म कर देगी और सारी ज़मीन सामान्य सम्पत्ति के रूप में पूरी जनता को सौंप देगी।

"इसके अतिरिक्त, सभी परिस्थितियों में रूसी सामाजिक जनवादी पार्टी का उद्देश्य, जनवादी भूमि-सुधारों की चाहे जो भी स्थिति हो, ग्रामीण सर्वहारा के स्वतन्त्र वर्ग संगठन के लिए, उसे समझाने के लिए कि उसका हित किसान पूँजीपति वर्ग के हित से असमाधेय रूप से विरोधी है, उसे छोटे पैमाने के मालिकाने के विरुद्ध चेतावनी देने के लिए जो, जब तक माल-उत्पादन मौजूद रहेगा तब तक जनता की दरिद्रता दूर नहीं कर सकता और अन्त में, समस्त दरिद्रता और समस्त शोषण को समाप्त करने के एकमात्र साधन के रूप में एक पूर्ण समाजवादी क्रान्ति की आवश्यकता पर ज़ोर देने के लिए निरन्तर प्रयास करते रहना है।"

('मज़दूर पार्टी के भूमि कार्यक्रम में संशोधन')

"कोई पूछ सकता है : इसका हल क्या है, किसानों की स्थिति कैसे सुधारी जा सकती है? छोटे किसान खुद को मज़दूर वर्ग के आन्दोलन से जोड़कर और समाजवादी व्यवस्था के लिए संघर्ष में एवं ज़मीन तथा उत्पादन के अन्य साधनों (कारख़ानें, मशीनें आदि) को सामाजिक सम्पत्ति के रूप में बदल देने में मज़दूरों की मदद करके ही अपनेआप को पूँजी की जकड़ से मुक्त कर सकते हैं। छोटे पैमाने की खेती और छोटी जोतों को पूँजीवाद के चतुर्दिक हमले से बचाकर किसान समुदाय को बचाने का प्रयास सामाजिक विकास की गति को अनुपयोगी रूप से धीमा करना होगा, इसका मतलब पूँजीवाद के अन्तर्गत भी ख़ुशहाली की सम्भावना की भ्रान्ति से किसानों को धोखा देना होगा, इसका मतलब मेहनतकश वर्गों में फूट पैदा करना और बहुमत की क़ीमत पर अल्पमत के लिए एक विशेष सुविधाप्राप्त स्थिति पैदा करना होगा।"

('मज़दूर पार्टी और किसान')

"यदि, नरोदवादियों के कल्पनालोक में, हम वास्तविक आर्थिक कारणों को मिथ्या विचारधारा से सावधनीपूर्वक अलग करें, तो उसी क्षण पायेंगे कि सामन्ती जागीरों के टूटने से, चाहे वे बँटवारे से टूटें या राष्ट्रीकरण से या म्युनिसिपलीकरण से, सबसे अधिक लाभान्वित होने वाला वर्ग स्पष्ट तौर पर पूँजीवादी किसान ही है। (राज्य-प्रदत्त) ऋण-अनुदान भी पूँजीवादी किसान को ही सर्वाधिक लाभ पहुँचाने के लिए बाध्य है। (किसान भूमि क्रान्ति) भूस्वामित्व की पूरी व्यवस्था को शुद्ध रूप से इन पूँजीवादी फ़र्मों की प्रगति और समृद्धि की शर्तों के अधीन कर देने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।"

('सामाजिक जनवाद का भूमि कार्यक्रम')

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता
बेहतर किताबों से होकर जाता है!

जनचेतना

सम्पूर्ण सूचीपत्र
2018

हम हैं सपनों के हरकारे
हम हैं विचारों के डाकिये

आम लोगों के लिए
ज़रूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुँचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिनगारी।
घर–घर तक चिनगारी छिटकाने वाला
तेज़ हवा का झोंका बन जाना होगा
ज़िन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन–जन तक पहुँचाना होगा।

दो दशक पहले प्रगतिशील, जनपक्षधर साहित्य को जन–जन तक पहुँचाने की मुहिम की एक छोटी–सी शुरुआत हुई, बड़े मंसूबे के साथ। एक छोटी–सी दुकान और फ़ुटपाथों पर, मुहल्लों में और दफ़्तरों के सामने छोटी–छोटी प्रदर्शनियाँ लगाने वाले तथा साइकिलों पर, ठेलों पर, झोलों में भरकर घर–घर किताबें पहुँचाने वाले समर्पित अवैतनिक वालण्टियरों की टीम – शुरुआत बस यहीं से हुई। आज यह वैचारिक अभियान उत्तर भारत के दर्जनों शहरों और गाँवों तक फैल चुका है। एक बड़े और एक छोटे प्रदर्शनी वाहन के माध्यम से जनचेतना हिन्दी और पंजाबी क्षेत्र के सुदूर कोनों तक हिन्दी, पंजाबी और अंग्रेज़ी साहित्य एवं कला–सामग्री के साथ सपने और विचार लेकर जा रही है, जीवन–संघर्ष–सृजन–प्रगति का नारा लेकर जा रही है।

हिन्दी क्षेत्र में यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ़ के बिना, समर्पित वालण्टियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

आइये, आप सभी इस मुहिम में हमारे सहयात्री बनिये।

सम्पूर्ण सूचीपत्र

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

1.	**तरुणाई का तराना**/याङ मो		...
2.	**तीन टके का उपन्यास**/बेर्टोल्ट ब्रेष्ट		...
3.	**माँ**/मक्सिम गोर्की		...
4.	**वे तीन**/मक्सिम गोर्की		75.00
5.	**मेरा बचपन**/मक्सिम गोर्की		...
6.	**जीवन की राहों पर**/मक्सिम गोर्की		...
7.	**मेरे विश्वविद्यालय**/मक्सिम गोर्की		...
8.	**फ़ोमा गोर्देयेव**/मक्सिम गोर्की		55.00
9.	**अभागा**/मक्सिम गोर्की		40.00
10.	**बेकरी का मालिक**/मक्सिम गोर्की		25.00
11.	**असली इन्सान**/बोरिस पोलेवोई		...
12.	**तरुण गार्ड**/अलेक्सान्द्र फ़देयेव	(दो खण्डों में)	160.00
13.	**गोदान**/प्रेमचन्द		...
14.	**निर्मला**/प्रेमचन्द		...
15.	**पथ के दावेदार**/शरत्चन्द्र		...
16.	**चरित्रहीन**/शरत्चन्द्र		...
17.	**गृहदाह**/शरत्चन्द्र		70.00
18.	**शेषप्रश्न**/शरत्चन्द्र		...
19.	**इन्द्रधनुष**/वान्दा वैसील्युस्का		65.00
20.	**इकतालीसवाँ**/बोरीस लव्रेन्योव		20.00
21.	**दास्तान चलती है** (एक नौजवान की डायरी से)/अनातोली कुज़्नेत्सोव		70.00

22. **वे सदा युवा रहेंगे**/ग्रीगोरी बकलानोव 60.00
23. **मुर्दों को क्या लाज-शर्म**/ग्रीगोरी बकलानोव 40.00
24. **बख़्तरबन्द रेल 14-69**/व्सेवोलोद इवानोव 30.00
25. **अश्वसेना**/इसाक बाबेल 40.00
26. **लाल झण्डे के नीचे**/लाओ श 50.00
27. **रिक्शावाला**/लाओ श 65.00
28. **चिरस्मरणीय** (प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास)/निरंजन 55.00
29. **एक तयशुदा मौत** (एनजीओ की पृष्ठभूमि पर)/मोहित राय 30.00
30. **Mother/***Maxim Gorky* 250.00
31. **The Song of Youth**/*Yang Mo* ...

कहानियाँ

1. **श्रेष्ठ सोवियत कहानियाँ** (3 खण्डों का सेट) 450.00
2. **वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया**
(मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ) 60.00

मक्सिम गोर्की

3. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) ...
4. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) ...
5. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 3) ...
6. **हिम्मत न हारना मेरे बच्चो** 10.00
7. **कामो : एक जाँबाज़ इन्क़लाबी मज़दूर की कहानी** ...

अन्तोन चेख़व

8. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) ...
9. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) ...
10. **दो अमर कहानियाँ**/लू शुन ...
11. **श्रेष्ठ कहानियाँ**/प्रेमचन्द 80.00
12. **पाँच कहानियाँ**/पुश्किन ...
13. **तीन कहानियाँ**/गोगोल 30.00
14. **तूफ़ान**/अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच 60.00
15. **वसन्त**/सेर्गेई अन्तोनोव 60.00
16. **वसन्तागम**/रओ शि 50.00

17. **सूरज का ख़ज़ाना**/मिख़ाईल प्रीश्विन 40.00
18. **स्नेगोवेत्स का होटल**/मत्वेई तेवेल्योव 35.00
19. **वसन्त के रेशम के कीड़े**/माओ तुन 50.00
20. **क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें** (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00
21. **चुनी हुई कहानियाँ**/श्याओ हुङ 50.00
22. **समय के पंख**/कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी ...
23. **श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ** (संकलन) ...
24. **अनजान फूल**/आन्द्रेई प्लातोनोव 40.00
25. **कुत्ते का दिल**/मिख़ाईल बुल्गाकोव 70.00
26. **दोन की कहानियाँ**/मिख़ाईल शोलोख़ोव 35.00
27. **अब इन्साफ़ होने वाला है** ...
(भारत और पाकिस्तान की प्रगतिशील उर्दू कहानियों का प्रतिनिधि संकलन)
(ग्यारह नयी कहानियों सहित परिवर्द्धित संस्करण)/स. **शकील सिद्दीक़ी**
28. **लाल कुरता**/हरिशंकर श्रीवास्तव ...
29. **चम्पा और अन्य कहानियाँ**/मदन मोहन 35.00

कविताएँ

1. **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/पाब्लो नेरूदा 60.00
2. **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/लैंग्स्टन ह्यूज 60.00
3. **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो** (फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी) 160.00
4. **माओ त्से-तुङ की कविताएँ** (राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत) 20.00
5. **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ – बेर्टोल्ट ब्रेष्ट**
(मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल)
(ब्रेष्ट के दुर्लभ चित्रों और स्केचों से सज्जित) 150.00
6. **समर तो शेष है...** (इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन) 65.00
7. **मध्यवर्ग का शोकगीत**/हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर 30.00
8. **जेल डायरी**/हो ची मिन्ह 40.00
9. **ओस की बूँदें और लाल गुलाब**/होसे मारिया सिसों 25.00

10. **इन्तिफ़ादा :** फ़लस्तीनी कविताएँ/स. रामकृष्ण पाण्डेय ...
11. **लहू है कि तब भी गाता है**/पाश ...
12. **लोहू और इस्पात से फूटता गुलाब :** फ़लस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन)
A Rose Breaking Out of Steel and Blood (Palestinian Poems) 60.00
13. **पाठान्तर**/विष्णु खरे 50.00
14. **लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/विष्णु खरे 60.00
15. **ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ 60.00
16. **बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी 50.00
17. **सामान की तलाश**/असद ज़ैदी 50.00
18. **कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/शशिप्रकाश 50.00
19. **पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश 75.00
20. **सात भाइयों के बीच चम्पा**/कात्यायनी (पेपरबैक) ...
(हार्डबाउंड) 125.00
21. **इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी 60.00
22. **जादू नहीं कविता**/कात्यायनी (पेपरबैक) ...
(हार्डबाउंड) 200.00
23. **फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी 80.00
24. **राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी 15.00
25. **यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार 50.00
26. **यह जो वक्त है**/कपिलेश भोज 60.00
27. **देश एक राग है**/भगवत रावत ...
28. **बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/नरेश चन्द्रकर 60.00
29. **दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय 120.00
30. **देखते न देखते**/मलय 65.00
31. **असम्भव की आँच**/मलय 100.00
32. **इच्छा की दूब**/मलय 90.00
33. **इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार 90.00
34. **तो**/शैलेय 75.00

नाटक

1. **करवट**/मक्सिम गोर्की 40.00
2. **दुश्मन**/मक्सिम गोर्की 35.00

3. **तलछट**/मक्सिम गोर्की ...
4. **तीन बहनें** (दो नाटक)/अन्तोन चेख़व 45.00
5. **चेरी की बग़िया** (दो नाटक)/अ. चेख़व 45.00
6. **बलिदान जो व्यर्थ न गया**/व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 30.00
7. **क्रेमलिन की घण्टियाँ**/निकोलाई पोगोदिन 30.00

संस्मरण

1. **लेव तोल्स्तोय : शब्द-चित्र**/मक्सिम गोर्की 20.00

स्त्री-विमर्श

1. **दुर्ग द्वार पर दस्तक** (स्त्री प्रश्न पर लेख)/कात्यायनी (पेपरबैक) 130.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त**/कात्यायनी 90.00
2. **षड्यन्त्ररत मृतात्माओं के बीच**
   (साम्प्रदायिकता पर लेख)/कात्यायनी 25.00
3. **इस रात्रि श्यामला बेला में** (लेख और टिप्पणियाँ)/सत्यव्रत 30.00

व्यंग्य

1. **कहें मनबहकी खरी-खरी**/मनबहकी लाल 25.00

नौजवानों के लिए विशेष

1. **जय जीवन!** (लेख, भाषण और पत्र)/निकोलाई ओस्त्रोव्स्की 50.00

वैचारिकी

1. **माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**/रेमण्ड लोट्टा 25.00

साहित्य-विमर्श

1. **उपन्यास और जनसमुदाय**/रैल्फ़ फ़ॉक्स 75.00
2. **लेखनकला और रचनाकौशल**/
   गोर्की, फ़ेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय ...
3. **दर्शन, साहित्य और आलोचना**/
   बेलिंस्की, हर्ज़ेन, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव 65.00
4. **सृजन-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में**/मक्सिम गोर्की 40.00

5. **मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएँ**/स्तालिन 20.00

नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए

1. **एक पुस्तक माता-पिता के लिए**/अन्तोन मकारेंको ...
2. **मेरा हृदय बच्चों के लिए**/वसीली सुखोम्लीन्स्की ...

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **प्रेम, परम्परा और विद्रोह**/कात्यायनी 50.00

सृजन परिप्रेक्ष्य पुस्तिका शृंखला

1. **एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के वैचारिक-सांस्कृतिक कार्यभार**/कात्यायनी, सत्यम 25.00

दो महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ

दिशा सन्धान

मार्क्सवादी सैद्धान्तिक शोध और विमर्श का मंच

सम्पादकः कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 100 रुपये, आजीवनः 5000 रुपये
वार्षिक (4 अंक) : 400 रुपये (100 रु. रजि. बुकपोस्ट व्यय अतिरिक्त)

नान्दीपाठ

मीडिया, संस्कृति और समाज पर केन्द्रित

सम्पादकः कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 40 रुपये आजीवनः 3000 रुपये
वार्षिक (4 अंक) : 160 रुपये (100 रु. रजि. बुक पोस्ट व्यय अतिरिक्त)

सम्पादकीय कार्यालय :
69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
फोनः 9936650658, 8853093555
वेबसाइट : http://dishasandhaan.in ईमेलः dishasandhaan@gmail.com
वेबसाइट : http://naandipath.in ईमेलः naandipath@gmail.com

राहुल फाउण्डेशन

नौजवानों के लिए विशेष

1. **नौजवानों से दो बातें**/पीटर क्रोपोटकिन 15.00
2. **क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा**/भगतसिंह 15.00
3. **मैं नास्तिक क्यों हूँ और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका**/भगतसिंह 15.00
4. **बम का दर्शन और अदालत में बयान**/भगतसिंह 15.00
5. **जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो**/भगतसिंह 15.00
6. **भगतसिंह ने कहा...**(चुने हुए उद्धरण)/भगतसिंह 15.00

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

1. **भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़**/स. सत्यम 350.00
2. **शहीदेआज़म की जेल नोटबुक**/भगतसिंह 100.00
3. **विचारों की सान पर**/भगतसिंह 50.00

क्रान्तिकारियों के विचारों और जीवन पर

1. **बहरों को सुनाने के लिए**/एस. इरफ़ान हबीब (भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और कार्यक्रम) ...
2. **क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास**/शिव वर्मा 15.00
3. **भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति**/बिपन चन्द्र 20.00
4. **यश की धरोहर**/ भगवानदास माहौर, शिव वर्मा, सदाशिवराव मलकापुरकर 50.00
5. **संस्मृतियाँ**/शिव वर्मा 80.00
6. **शहीद सुखदेव : नौघरा से फाँसी तक**/स. डॉ. हरदीप सिंह 40.00

महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक संकलन

1. **उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है**
   ('दायित्वबोध' के महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन) 75.00
2. **एनजीओ : एक ख़तरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र** 60.00
3. **डब्ल्यूएसएफ़ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हॉर्स** 50.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफ़ी नहीं, अम्बेडकर भी काफ़ी नहीं, मार्क्स ज़रूरी हैं** / रंगनायकम्मा ...
2. **जाति और वर्ग : एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण** / रंगनायकम्मा 60.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

1. **अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ**/दीपायन बोस 10.00
2. **समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति**/शशिप्रकाश 30.00
3. **क्यों माओवाद?**/शशिप्रकाश 20.00
4. **बुर्जुआ वर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में**/चाङ चुन-चियाओ 5.00
5. **भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास**/सुखविन्दर 35.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?** 15.00
2. **आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष** 15.00
3. **आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ** 15.00
4. **क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन** 15.00
5. **भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल सोचने के लिए कुछ मुद्दे** 50.00

बिगुल पुस्तिका शृंखला

1. **कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा**/लेनिन 10.00
2. **मकड़ा और मक्खी**/विल्हेल्म लीब्नेख़्त 5.00

3.	**ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीक़े**/सेर्गेई रोस्तोवस्की	5.00
4.	**मई दिवस का इतिहास**/अलेक्ज़ैण्डर ट्रैक्टनबर्ग	10.00
5.	**पेरिस कम्यून की अमर कहानी**	20.00
6.	**अक्टूबर क्रान्ति की मशाल**	15.00
7.	**जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा**/डॉ. दर्शन खेड़ी	5.00
8.	**लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस**	30.00
9.	**संशोधनवाद के बारे में**	10.00
10.	**शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी**/हावर्ड फ़ास्ट	10.00
11.	**मज़दूर आन्दोलन में नयी शुरुआत के लिए**	20.00
12.	**मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा**	15.00
13.	**चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही**	...
14.	**बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ**	...
15.	**राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन**/अभिनव	30.00
16.	**फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?**/अभिनव	75.00
17.	**नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार**/आलोक रंजन	55.00
18.	**कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है** आलोक रंजन/आनन्द सिंह	100.00

मार्क्सवाद

1.	**धर्म के बारे में**/मार्क्स, एंगेल्स	100.00
2.	**कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/मार्क्स-एंगेल्स	25.00
3.	**साहित्य और कला**/मार्क्स-एंगेल्स	150.00
4.	**फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष**/कार्ल मार्क्स	40.00
5.	**फ़्रांस में गृहयुद्ध**/कार्ल मार्क्स	20.00
6.	**लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर**/कार्ल मार्क्स	35.00
7.	**उजरती श्रम और पूँजी**/कार्ल मार्क्स	15.00
8.	**मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा**/कार्ल मार्क्स	20.00
9.	**गोथा कार्यक्रम की आलोचना**/कार्ल मार्क्स	40.00
10.	**लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त**/ फ़्रेडरिक एंगेल्स	20.00

11.	**जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति**/फ़्रेडरिक एंगेल्स	30.00
12.	**समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**/फ़्रेडरिक एंगेल्स	...
13.	**पार्टी कार्य के बारे में**/लेनिन	15.00
14.	**एक क़दम आगे, दो क़दम पीछे**/लेनिन	60.00
15.	**जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद के दो रणकौशल**/लेनिन	25.00
16.	**समाजवाद और युद्ध**/लेनिन	20.00
17.	**साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था**/लेनिन	30.00
18.	**राज्य और क्रान्ति**/लेनिन	40.00
19.	**सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की**/लेनिन	15.00
20.	**दूसरे इण्टरनेशनल का पतन**/लेनिन	15.00
21.	**गाँव के ग़रीबों से**/लेनिन	...
22.	**मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद**/लेनिन	20.00
23.	**कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा**/लेनिन	20.00
24.	**क्या करें?**/लेनिन	...
25.	**"वामपन्थी" कम्युनिज़्म - एक बचकाना मर्ज़**/लेनिन	...
26.	**पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन**/लेनिन	15.00
27.	**जनता के बीच पार्टी का काम**/लेनिन	70.00
28.	**धर्म के बारे में**/लेनिन	20.00
29.	**तोल्स्तोय के बारे में**/लेनिन	10.00
30.	**मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ**/जी. प्लेख़ानोव	30.00
31.	**जुझारू भौतिकवाद**/प्लेख़ानोव	35.00
32.	**लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त**/स्तालिन	50.00
33.	**सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास**	90.00
34.	**माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन** (एक खण्ड में)	...
35.	**कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में**/माओ त्से-तुङ	...
36.	**सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना**/माओ त्से-तुङ	35.00
37.	**दर्शन विषयक पाँच निबन्ध**/माओ त्से-तुङ	70.00
38.	**कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पाँच दस्तावेज़** / माओ त्से-तुङ	15.00
39.	**माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण**	50.00

अन्य मार्क्सवादी साहित्य

1.	**राजनीतिक अर्थशास्त्र, मार्क्सवादी अध्ययन पाठ्यक्रम** नयी	300.00
2.	**ख्रुश्चेव झूठा था**/ग्रोवर फ़र	300.00
3.	**राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त** (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी)	160.00
4.	**पेरिस कम्यून की शिक्षाएँ** (सचित्र) एलेक्ज़ेण्डर ट्रैक्टनबर्ग	10.00
5.	**कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/डी. रियाज़ानोव (विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियों सहित)	100.00
6.	**द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/डेविड गेस्ट	...
7.	**महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति : चुने हुए दस्तावेज़ और लेख** (खण्ड 1)	35.00
8.	**इतिहास ने जब करवट बदली**/विलियम हिण्टन	25.00
9.	**द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/वी. अदोरात्स्की	50.00
10.	**अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन**/अल्बर्ट रीस विलियम्स (महत्त्वपूर्ण नयी सामग्री और अनेक नये दुर्लभ चित्रों से सज्जित परिवर्द्धित संस्करण)	90.00
11.	**सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना**/मार्टिन निकोलस	50.00

राहुल साहित्य

1.	**तुम्हारी क्षय**/राहुल सांकृत्यायन	40.00
2.	**दिमाग़ी ग़ुलामी**/राहुल सांकृत्यायन	...
3.	**वैज्ञानिक भौतिकवाद**/राहुल सांकृत्यायन	65.00
4.	**राहुल निबन्धावली**/राहुल सांकृत्यायन	50.00
5.	**स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन	150.00

परम्परा का स्मरण

1.	**चुनी हुई रचनाएँ**/गणेशशंकर विद्यार्थी	100.00
2.	**सलाखों के पीछे से**/गणेशशंकर विद्यार्थी	30.00
3.	**ईश्वर का बहिष्कार**/राधामोहन गोकुलजी	30.00
4.	**लौकिक मार्ग**/राधामोहन गोकुलजी	20.00
5.	**धर्म का ढकोसला**/राधामोहन गोकुलजी	30.00
6.	**स्त्रियों की स्वाधीनता**/राधामोहन गोकुलजी	30.00

जीवनी और संस्मरण

1. **कार्ल मार्क्स जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स 25.00
2. **फ्रेडरिक एंगेल्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स ...
3. **कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख** ...
4. **अदम्य बोल्शेविक नताशा**
   (एक स्त्री मज़दूर संगठनकर्ता की संक्षिप्त जीवनी)/एल. काताशेवा 30.00
5. **लेनिन कथा**/मरीया प्रिलेज़ायेवा 70.00
6. **लेनिन विषयक कहानियाँ** 75.00
7. **लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने**/लीदिया फ़ोतियेवा ...
8. **स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन 150.00

विविध

1. **फाँसी के तख़्ते से**/जूलियस फ़्यूचिक 30.00
2. **पाप और विज्ञान**/डायसन कार्टर 100.00
3. **सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?**/लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर ....

मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का

आह्वान

सम्पादकीय कार्यालय

बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर,
दिल्ली-110094

एक प्रति : 20 रुपये • वार्षिक : 160 रुपये (डाकव्यय सहित)

Rahul Foundation

MARXIST CLASSICS

KARL MARX

1.	**A Contribution to the Critique of Political Economy**	100.00
2.	**The Civil War in France**	80.00
3.	**The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte**	40.00
4.	**Critique of the Gotha Programme**	25.00
5.	**Preface and Introduction to A Contribution to the Critique of Political Economy**	25.00
6.	**The Poverty of Philosophy**	80.00
7.	**Wages, Price and Profit**	35.00
8.	**Class Struggles in France**	50.00

FREDERICK ENGELS

9.	**The Peasant War in Germany**	70.00
10.	**Ludwig Feuerbach and the End of Classical German Philosophy**	65.00
11.	**On Capital**	55.00
12.	**The Origin of the Family, Private Property and the State**	100.00
13.	**Socialism: Utopian and Scientific**	60.00
14.	**On Marx**	20.00
15.	**Principles of Communism**	5.00

MARX and ENGELS

16.	**Historical Writings** (Set of 2 Vols.)	700.00
17.	**Manifesto of the Communist Party**	50.00
18.	**Selected Letters**	40.00

V. I. LENIN

19.	**Theory of Agrarian Question**	160.00
20.	**The Collapse of the Second International**	25.00
21.	**Imperialism, the Highest Stage of Capitalism**	80.00
22.	**Materialism and Empirio-Criticism**	150.00

23.	**Two Tactics of Social-Democracy in the Democratic Revolution**	55.00
24.	**Capitalism and Agriculture**	30.00
25.	**A Characterisation of Economic Romanticism**	50.00
26.	**On Marx and Engels**	35.00
27.	**"Left-Wing" Communism, An Infantile Disorder**	40.00
28.	**Party Work in the Masses**	55.00
29.	**The Proletarian Revolution and the Renegade Kautsky**	40.00
30.	**One Step Forward, Two Steps Back**	...
31.	**The State and Revolution**	...

MARX, ENGELS and LENIN

32.	**On the Dictatorship of Proletariat,** ***Questions and Answers***	50.00
33.	**On the Dictatorship of the Proletariat:** ***Selected Expositions***	10.00

PLEKHANOV

34.	**Fundamental Problems of Marxism**	35.00

J. STALIN

35.	**Marxism and Problems of Linguistics**	25.00
36.	**Anarchism or Socialism?**	25.00
37.	**Economic Problems of Socialism in the USSR**	30.00
38.	**On Organisation**	15.00
39.	**The Foundations of Leninism**	40.00
40.	**The Essential Stalin** *Major Theoretical Writings 1905–52* (Edited and with an Introduction by Bruce Franklin)	175.00

LENIN and STALIN

41.	**On the Party**	...

MAO TSE-TUNG

42.	**Five Essays on Philosophy**	50.00
43.	**A Critique of Soviet Economics**	70.00
44.	**On Literature and Art**	80.00

45. **Selected Readings from the Works of Mao Tse-tung** ...

46. **Quotations from the Writings of Mao Tse-tung** ...

OTHER MARXISM

1. **Political Economy,** ***Marxist Study Courses*** (Prepared by the British Communist Party in the 1930s) 275.00
2. **Fundamentals of Political Economy** (The Shanghai Textbook) 160.00
3. **Reader in Marxist Philosophy**/ *Howard Selsam & Harry Martel* ...
4. **Socialism and Ethics**/*Howard Selsam* ...
5. **What Is Philosophy?** (A Marxist Introduction)**/** *Howard Selsam* 75.00
6. **Reader's Guide to Marxist Classics/***Maurice Cornforth* 70.00
7. **From Marx to Mao Tse-tung /**George Thomson ...
8. **Capitalism and After/**George Thomson ...
9. **The Human Essence/**George Thomson 65.00
10. **Mao Tse-tung's Immortal Contributions/***Bob Avakian* 125.00
11. **A Basic Understanding of the Communist Party** (Written during the GPCR in China) 150.00
12. **The Lessons of the Paris Commune/** *Alexander Trachtenberg (Illustrated)* 15.00

BIOGRAPHIES & REMINISCENCES

1. **Reminiscences of Marx and Engels** (Collection) ...
2. **Karl Marx And Frederick Engels:** An Introduction to their Lives and Work/David Riazanov ...
3. **Joseph Stalin: A Political Biography** *by The Marx-Engels-Lenin Institute* ...

PROBLEMS OF SOCIALISM

1. **How Capitalism was Restored in the Soviet Union, And What This Means for the World Struggle (Red Papers 7)** 175.00

2. **Preface of Class Struggles in the USSR** /
Charles Bettelheim 30.00

3. **Nepalese Revolution: History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** /
Alok Ranjan 75.00

4. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** /
Shashi Prakash 40.00

ON THE CULTURAL REVOLUTION

1. **Hundred Day War:** The Cultural Revolution At Tsinghua University / *William Hinton* ...

2. **The Cultural Revolution at Peking University** /
Victor Nee with *Don Layman* 30.00

3. **Mao Tse-tung's Last Great Battle** / *Raymond Lotta* 25.00

4. **Turning Point in China** / *William Hinton* ...

5. **Cultural Revolution and Industrial Organization in China** / *Charles Bettelheim* 55.00

6. **They Made Revolution Within the Revolution /** *Iris Hunter* ...

ON SOCIALIST CONSTRUCTION

1. **Away With All Pests:** An English Surgeon in People's China: 1954–1969 */ Joshua S. Horn* ...

2. **Serve The People:** Observations on Medicine in the People's Republic of China /*Victor W. Sidel* and *Ruth Sidel* ...

3. **Philosophy is No Mystery**
(Peasants Put Their Study to Work) 35.00

CONTEMPORARY ISSUES

1. **Caste and Class: A Marxist Viewpoint /**
Ranganayakamma 60.00

DAYITVABODH REPRINT SERIES

1. **Immortal are the Flames of Proletarian Struggles /**
Deepayan Bose 15.00

2. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00

3. **Why Maoism?** / *Shashi Prakash* 25.00

AHWAN REPRINT SERIES

1. **Where Should Students and Youth Make a New Beginning?**
2. **Reservation: Support, Opposition and Our Position** 20.00
3. **On Terrorism : Illusion and Reality** / *Alok Ranjan* 15.00

BIGUL REPRINT SERIES

1. **Still Ablaze is the Torch of October Revolution** 20.00
2. **Nepalese Revolution History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / Alok Ranjan 75.00

WOMEN QUESTION

1. **The Emancipation of Women** / *V. I. Lenin* ...
2. **Breaking All Tradition's Chains: Revolutionary Communism and Women's Liberation** /*Mary Lou Greenberg*...

MISCELLANEOUS

1. **Probabilities of the Quantum World** / *Daniel Danin* ...
2. **An Appeal to the Young** / *Peter Kropotkin* 15.00

मज़दूरों का इन्क़लाबी मासिक अख़बार

मजदूर बिगुल

एक प्रति : 5 रुपये
वार्षिक : 70 रुपये
(डाक व्यय सहित)

सम्पादकीय कार्यालय
69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड,
निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन : 0522-4108495
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
वेबसाइट : mazdoorbigul.net

अरविन्द स्मृति न्यास के प्रकाशन

1. **इक्कीसवीं सदी में भारत का मज़दूर आन्दोलनः निरन्तरता और परिवर्तन, दिशा और सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ**
   (द्वितीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 40.00
2. **भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलनः दिशा, समस्याएँ और चुनौतियाँ**
   (तृतीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 80.00
3. **जाति प्रश्न और मार्क्सवाद**
   (चतुर्थ अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 150.00

PUBLICATIONS FROM ARVIND MEMORIAL TRUST

1. **Working Class Movement in the Twenty-First Century: Continuity and Change, Orientation and Possibilities, Problems and Challenges** (Papers presented in the Second Arvind Memorial Seminar) 40.00
2. **Democratic Rights Movement in India: Orientation, Problems and Challenges** (Papers presented in the Third Arvind Memorial Seminar) 80.00
3. **Caste Question and Marxism** (Papers presented in the Fourth Arvind Memorial Seminar) 200.00

जनचेतना

एक वैचारिक मुहिम है
भविष्य-निर्माण का एक प्रोजेक्ट है
वैकल्पिक मीडिया की एक सशक्त धारा है।

परिकल्पना प्रकाशन, राहुल फ़ाउण्डेशन, अनुराग ट्रस्ट, अरविन्द स्मृति न्यास, शहीद भगतसिंह यादगारी प्रकाशन, दस्तक प्रकाशन और प्रांजल आर्ट पब्लिशर्स की पुस्तकों की 'जनचेतना' मुख्य वितरक है। ये प्रकाशन पाँच स्त्रोतों – सरकार, राजनीतिक पार्टियों, कॉरपोरेट घरानों, बहुराष्ट्रीय निगमों और विदेशी फ़ण्डिंग एजेंसियों से किसी भी प्रकार का अनुदान या वित्तीय सहायता लिये बिना जनता से जुटाये गये संसाधनों के आधार पर आज के दौर के लिए ज़रूरी व महत्त्वपूर्ण साहित्य बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

अनुराग ट्रस्ट

1.	**बच्चों के लेनिन**	35.00
2	**Stories About Lenin**	35.00
3.	**सच से बड़ा सच**/रवीन्द्रनाथ ठाकुर	25.00
4.	**औज़ारों की कहानियाँ**	20.00
5.	**गुड़ की डली**/कात्यायनी	20.00
6.	**फूल कुंडलाकार क्यों होते हैं**/सनी	20.00
7.	**धरती और आकाश**/अ. वोल्कोव	120.00
8.	**कजाकी**/प्रेमचन्द	35.00
9.	**नीला प्याला**/अरकादी गैदार	40.00
10.	**गड़रिये की कहानियाँ**/क़यूम तंगरीकुलीयेव	35.00
11.	**चींटी और अन्तरिक्ष यात्री**/अ. मित्यायेव	35.00
12.	**अन्धविश्वासी शेकी टेल**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
13.	**चलता-फिरता हैट**/एन. नोसोव, होल्कर पुक्क	20.00
14.	**चालाक लोमड़ी** (लोककथा)	20.00
15.	**दियांका-टॉमचिक**	20.00
16.	**गधा और ऊदबिलाव**/मक्सिम गोर्की, सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
17.	**गुफा मानवों की कहानियाँ**/मैरी मार्स	...
18.	**हम सूरज को देख सकते हैं**/मिकोला गिल, दायर स्लावकोविच	20.00
19.	**मुसीबत का साथी**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
20.	**नन्हे आर्थर का सूरज**/हद्याक ग्युलनज़रयान, गेलीना लेबेदेवा	20.00
22.	**आकाश में मौज-मस्ती**/चिनुआ अचेबे	20.00
23.	**ज़िन्दगी से प्यार** (दो रोमांचक कहानियाँ)/जैक लण्डन	40.00
24.	**एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी**/मक्सिम गोर्की	20.00
25.	**बहादुर**/अमरकान्त	15.00
26.	**बुन्नू की परीक्षा** (सचित्र रंगीन)/शस्या हर्ष	...

27.	**दान्को का जलता हुआ हृदय**/मक्सिम गोर्की	15.00
28.	**नन्हा राजकुमार**/आतुआन द सैंतेक्ज़ूपेरी	40.00
29.	**दादा आर्खिप और ल्योंका**/मक्सिम गोर्की	30.00
30.	**सेमागा कैसे पकड़ा गया**/मक्सिम गोर्की	15.00
31.	**बाज़ का गीत**/मक्सिम गोर्की	15.00
32.	**वांका**/अन्तोन चेख़व	15.00
33.	**तोता**/रवीन्द्रनाथ टैगोर	15.00
34.	**पोस्टमास्टर**/रवीन्द्रनाथ टैगोर	...
35.	**काबुलीवाला**/रवीन्द्रनाथ टैगोर	20.00
36.	**अपना-अपना भाग्य**/जैनेन्द्र	15.00
37.	**दिमाग़ कैसे काम करता है**/किशोर	25.00
38.	**रामलीला**/प्रेमचन्द	15.00
39.	**दो बैलों की कथा**/प्रेमचन्द	25.00
40.	**ईदगाह**/प्रेमचन्द	...
41.	**लॉटरी**/प्रेमचन्द	20.00
42.	**गुल्ली-डण्डा**/प्रेमचन्द	...
43.	**बड़े भाई साहब**/प्रेमचन्द	20.00
44.	**मोटेराम शास्त्री**/प्रेमचन्द	...
45.	**हार की जीत**/सुदर्शन	...
46.	**इवान**/व्लादीमिर बोगोमोलोव	40.00
47.	**चमकता लाल सितारा**/ली शिन-थ्येन	55.00
48.	**उल्टा दरख़्त**/कृश्नचन्दर	35.00
49.	**हरामी**/मिखाईल शोलोख़ोव	25.00
50.	**दोन किहोते** /सर्वान्तेस (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी)	...
51.	**आश्चर्यलोक में एलिस** /लुइस कैरोल (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी)	30.00
52.	**झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई**/वृन्दावनलाल वर्मा (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी)	35.00
53.	**नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे**/सुन यओच्युन	...
54.	**लाखी**/अन्तोन चेख़व	25.00
55.	**बेझिन चरागाह**/इवान तुर्गनेव	12.00

56.	**हिरनौटा**/द्मीत्री मामिन सिबिर्याक	25.00
57.	**घर की ललक**/निकोलाई तेलेशोव	10.00
58.	**बस एक याद**/लेओनीद अन्द्रेयेव	20.00
59.	**मदारी**/अलेक्सान्द्र कुप्रिन	35.00
60.	**पराये घोंसले में**/फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की	20.00
61.	**कोहकाफ़ का बन्दी**/तोल्सतोय	30.00
62.	**मनमानी के मज़े**/सेर्गेई मिखाल्कोव	30.00
63.	**सदानन्द की छोटी दुनिया**/सत्यजीत राय	15.00
64.	**छत पर फँस गया बिल्ला**/विताउते जिलिन्सकाइते	35.00
65.	**गोलू के कारनामे**/रामबाबू	25.00
66.	**दो साहसिक कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	15.00
67.	**आम ज़िन्दगी की मज़ेदार कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
68.	**कंगूरे वाले मकान का रहस्यमय मामला**/होल्गर पुक्क	20.00
69.	**रोज़मर्रे की कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
70.	**अजीबोग़रीब क़िस्से**/होल्गर पुक्क	...
71.	**नये ज़माने की परीकथाएँ**/होल्गर पुक्क	25.00
72.	**किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा**/मिखाइल सल्तिकोव-श्चेद्रिन	15.00
73.	**पश्चदृष्टि-भविष्यदृष्टि** (लेख संकलन)/ कमला पाण्डेय	30.00
74.	**यादों के घेरे में अतीत** (संस्मरण)/ कमला पाण्डेय	100.00
75.	**हमारे आसपास का अँधेरा** (कहानियाँ)/ कमला पाण्डेय	60.00
76.	**कालमन्थन** (उपन्यास)/ कमला पाण्डेय	60.00

कोंपल

बच्चों के समग्र वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के लिए समर्पित अनुराग ट्रस्ट की त्रैमासिक पत्रिका

डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020

एक प्रति : 20 रुपये,
वार्षिक : 100 रुपये (डाकव्यय सहित)

ਪੰਜਾਬੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

ਦਸਤਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ ਦਾ ਸਵੈ-ਜੀਵਨੀ ਨਾਵਲ (ਤਿੰਨ ਭਾਗਾਂ ਵਿੱਚ)

1. ਮੇਰਾ ਬਚਪਨ	130.00
2. ਮੇਰੇ ਵਿਸ਼ਵ-ਵਿਦਿਆਲੇ	100.00
3. ਮੇਰੇ ਸ਼ਗਿਰਦੀ ਦੇ ਦਿਨ	200.00

4. ਪ੍ਰੇਮ, ਪ੍ਰੰਪਰਾ ਅਤੇ ਵਿਦਰੋਹ / ਕਾਤਿਆਾਈਨੀ	20.00
5. ਥੀਏਟਰ ਦਾ ਸੰਖੇਪ ਤਰਕਸ਼ਾਸਤਰ / ਬ੍ਰੈਖ਼ਤ	15.00
6. ਆਈਜੇਂਸਤਾਈਨ ਦਾ ਫਿਲਮ ਸਿਧਾਂਤ	15.00
7. ਮਜ਼ਦੂਰ ਜਮਾਤੀ ਸੰਗੀਤ ਰਚਨਾਵਾਂ ਦੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ	10.00
8. ਪਹਿਲਾ ਅਧਿਆਪਕ / ਚੰਗੇਜ਼ ਆਇਤਮਾਤੋਵ (ਨਾਵਲ)	25.00
9. ਸ਼ਾਂਤ ਸਰਘੀ ਵੇਲਾ / ਬੋਰਿਸ ਵਾਸੀਲਿਯੇਵ (ਨਾਵਲ)	30.00
10. ਭਾਂਜ / ਅਲੈਗਜ਼ਾਂਦਰ ਫ਼ਦੇਯੇਵ (ਨਾਵਲ)	100.00
11. ਫੌਲਾਦੀ ਹੜ / ਅਲੈਗਜ਼ਾਂਦਰ ਸਰਾਫ਼ੀਮੋਵਿਚ (ਨਾਵਲ)	100.00
12. ਇਕਤਾਲ਼ੀਵਾਂ / ਬੋਰਿਸ ਲਵਰੇਨਿਓਵ (ਨਾਵਲ)	30.00
13. ਮਾਂ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ (ਨਾਵਲ)	180.00
14. ਪੀਲ਼ੇ ਦੈਂਤ ਦਾ ਸ਼ਹਿਰ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	80.00
15. ਸਾਹਿਤ ਬਾਰੇ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	200.00
16. ਅਸਲੀ ਇਨਸਾਨ ਦੀ ਕਹਾਣੀ / ਬੋਰਿਸ ਪੋਲੇਵਾਈ (ਨਾਵਲ)	200.00
17. ਅੱਠੇ ਪਹਿਰ (ਕਹਾਣੀਆਂ)	125.00
18. ਬਘਿਆੜਾਂ ਦੇ ਵੱਸ / ਬਰੂਨੋ ਅਪਿਤਜ (ਨਾਵਲ)	100.00
19. ਮੀਤ੍ਰਿਆ ਕੋਕੋਰ / ਮੀਹਾਇਲ ਸਾਦੋਵਿਆਨੋ (ਨਾਵਲ)	100.00
20. ਇਨਕਲਾਬ ਲਈ ਜੂਝੀ ਜਵਾਨੀ	150.00
21. ਬੱਚਿਆਂ ਨੂੰ ਦਿਆਂ ਦਿਲ ਆਪਣਾ ਮੈਂ / ਵ. ਸੁਖੋਮਲਿੰਸਕੀ	150.00
22. ਫਾਸੀ ਦੇ ਤਖ਼ਤੇ ਤੋਂ / ਜੂਲੀਅਸ ਫੂਚਿਕ (ਨਾਵਲ)	50.00
23. ਭੁੱਬਲ / ਫ਼ਰੰਜ਼ਦ ਅਲੀ (ਪਾਕਿਸਤਾਨੀ ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਨਾਵਲ)	200.00
24. ਸਭ ਤੋਂ ਖਤਰਨਾਕ... (ਪਾਸ਼ ਦੀ ਸਮੁੱਚੀ ਉਪਲੱਬਧ ਸ਼ਾਇਰੀ)	200.00
25. ਧਰਤੀ ਧਨ ਨਾ ਆਪਣਾ / ਜਗਦੀਸ਼ ਚੰਦਰ	250.00

ਸ਼ਹੀਦ ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਯਾਦਗਾਰੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

1. ਉਜਰਤ, ਕੀਮਤ ਅਤੇ ਮੁਨਾਫਾ / ਮਾਰਕਸ	30.00
2. ਉਜਰਤੀ ਕਿਰਤ ਅਤੇ ਸਰਮਾਇਆ / ਮਾਰਕਸ	20.00
3. ਸਿਆਸੀ ਆਰਥਿਕਤਾ ਦੀ ਅਲੋਚਨਾ ਵਿੱਚ ਯੋਗਦਾਨ / ਮਾਰਕਸ	125.00
4. ਲੂਈ ਬੋਨਾਪਾਰਟ ਦੀ ਅਠਾਰਵੀਂ ਬਰੂਮੇਰ / ਮਾਰਕਸ	50.00
5. ਪੂੰਜੀ ਦੀ ਉਤਪਤੀ / ਮਾਰਕਸ	45.00
6. ਰਿਹਾਇਸ਼ੀ ਘਰਾਂ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਏਂਗਲਜ਼	35.00
7. ਫਿਊਰਬਾਖ : ਪਾਦਰਥਵਾਦੀ ਅਤੇ ਆਦਰਸ਼ਵਾਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣਾਂ ਦਾ ਵਿਰੋਧ / ਮਾਰਕਸ-ਏਂਗਲਜ਼	60.00
8. ਜਰਮਨੀ ਵਿੱਚ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਉਲਟ ਇਨਕਲਾਬ / ਏਂਗਲਜ਼	50.00
9. ਮਾਰਕਸ ਦੇ "ਸਰਮਾਇਆ" ਬਾਰੇ / ਏਂਗਲਜ਼	60.00
10. ਫਰਾਂਸ ਅਤੇ ਜਰਮਨੀ 'ਚ ਕਿਸਾਨੀ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਏਂਗਲਜ਼	20.00
11. ਸੋਸ਼ਲਿਜ਼ਮ : ਵਿਗਿਆਨਕ ਅਤੇ ਯੂਟੋਪੀਆਈ / ਏਂਗਲਜ਼	35.00
12. ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਬਾਰੇ / ਏਂਗਲਜ਼	10.00
13. ਲੁਡਵਿਗ ਫਿਉਰਬਾਖ ਅਤੇ ਕਲਾਸੀਕੀ ਜਰਮਨ ਦਰਸ਼ਨ ਦਾ ਅੰਤ / ਏਂਗਲਜ਼	30.00
14. ਟੱਬਰ, ਨਿੱਜੀ ਜਾਇਦਾਦ ਅਤੇ ਰਾਜ ਦੀ ਉੱਤਪਤੀ / ਏਂਗਲਜ਼	65.00
15. ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਅਤੇ ਉਨਾਂ ਦੀ ਸਿੱਖਿਆ / ਲੈਨਿਨ	35.00
16. ਰਾਜ ਅਤੇ ਇਨਕਲਾਬ / ਲੈਨਿਨ	50.00
17. ਦੂਜੀ ਇੰਟਰਨੈਸ਼ਨਲ ਦਾ ਪਤਣ / ਲੈਨਿਨ	45.00
18. ਖੇਤੀ ਵਿੱਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦ / ਲੈਨਿਨ	15.00
19. ਰਾਜ / ਲੈਨਿਨ	10.00
20. ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ, ਸਰਮਾਏਦਾਰੀ ਦਾ ਸਰਵਉੱਚ ਪੜਾਅ / ਲੈਨਿਨ	70.00
21. ਇੱਕ ਕਦਮ ਅੱਗੇ ਦੋ ਕਦਮ ਪਿੱਛੇ / ਲੈਨਿਨ	125.00
22. ਲੋਕਾਂ ਵਿੱਚ ਕੰਮ ਕਿਵੇਂ ਕਰੀਏ / ਲੈਨਿਨ	65.00
23. ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਕਲਾ ਬਾਰੇ / ਲੈਨਿਨ	150.00
24. ਸਮਾਜਵਾਦ ਅਤੇ ਜੰਗ / ਲੈਨਿਨ	45.00
25. ਖੱਬੇ ਪੱਖੀ ਕਮਿਊਨਿਜ਼ਮ ਇੱਕ ਬਚਗਾਨਾ ਰੋਗ / ਲੈਨਿਨ	65.00
26. ਅਸੀਂ ਜਿਹੜਾ ਵਿਰਸਾ ਤਿਆਗਦੇ ਹਾਂ / ਲੈਨਿਨ	25.00
27. ਪ੍ਰੋਲੇਤਾਰੀ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਭਗੌੜਾ ਕਾਊਤਸਕੀ / ਲੈਨਿਨ	70.00
28. ਆਰਥਕ ਰੋਮਾਂਚਵਾਦ ਦਾ ਚਰਿੱਤਰ ਚਿੱਤਰਣ / ਲੈਨਿਨ	50.00

29. ਸੁਤੰਤਰ ਵਪਾਰ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਮਾਰਕਸ, ਏਂਗਲਜ਼, ਲੈਨਿਨ	10.00
30. ਲੈਨਿਨਵਾਦ ਦੀਆਂ ਨੀਹਾਂ / ਸਟਾਲਿਨ	20.00
31. ਫ਼ਲਸਫਾਨਾ ਲਿਖਤਾਂ / ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ	25.00
32. ਸੋਵੀਅਤ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਦੀ ਅਲੋਚਨਾ / ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ	60.00
33. ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਦੇ ਬੁਨਿਆਦੀ ਮਸਲੇ / ਪਲੈਖਾਨੋਵ	40.00
34. ਰਾਜਨੀਤਕ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਦੇ ਮੂਲ ਸਿਧਾਂਤ	60.00
35. ਫਿਲਾਸਫੀ ਕੋਈ ਗੋਰਖਧੰਦਾ ਨਹੀਂ	10.00
36. ਦਵੰਦਵਾਦ ਜ਼ਰੀਏ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸੇਵਾ	10.00
37. ਇਤਿਹਾਸ ਨੇ ਜਦ ਕਰਵਟ ਬਦਲੀ	40.00
38. ਇਨਕਲਾਬ ਅੰਦਰ ਇਨਕਲਾਬ	20.00
39. ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ ਦੀ ਅਮਿੱਟ ਦੇਣ	125.00
40. ਚੀਨ ਵਿੱਚ ਉਲਟ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਮਾਓ ਦਾ ਇਨਕਲਾਬੀ ਵਿਰਸਾ	60.00
41. ਮਾਓਵਾਦੀ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਅਤੇ ਸਮਾਜਵਾਦ ਦਾ ਭਵਿੱਖ	60.00
42. ਲੈਨਿਨ ਦੀ ਜੀਵਨ ਕਹਾਣੀ	100.00
43. ਅਡੋਲ ਬਾਲਸ਼ਵਿਕ ਨਤਾਸ਼ਾ	30.00
44. ਮਾਰਕਸ ਅਤੇ ਏਂਗਲਜ਼ ਆਪਣੇ ਸਮਕਾਲੀਆਂ ਦੀਆਂ ਨਜ਼ਰਾਂ ਵਿੱਚ	75.00
45. ਪੈਰਿਸ ਕਮਿਊਨ ਦੀ ਅਮਰ ਕਹਾਣੀ	10.00
46. ਬੁਝ ਨਹੀਂ ਸਕਦੀ ਅਕਤੂਬਰ ਇਨਕਲਾਬ ਦੀ ਮਸ਼ਾਲ	10.00
47. ਦਹਿਸ਼ਤਗਰਦੀ ਬਾਰੇ ਭਰਮ ਅਤੇ ਯਥਾਰਥ	10.00
48. ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਕਿਸਾਨ ਅੰਦੋਲਨ ਅਤੇ ਕਮਿਊਨਿਸਟ ਲਹਿਰ	10.00
49. ਜੰਗਲਨਾਮਾ : ਇੱਕ ਰਾਜਨੀਤਕ ਪੜਚੋਲ	10.00
50. ਭਾਰਤੀ ਖੇਤੀ ਵਿੱਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਵਿਕਾਸ	20.00
51. ਅਮਿੱਟ ਹਨ ਮਜ਼ਦੂਰ ਸੰਗਰਾਮਾਂ ਦੀਆਂ ਚਿਣਗਾਂ	10.00
52. ਸਮਾਜਵਾਦ ਦੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ, ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੀ ਮੁੜ ਬਹਾਲੀ ਅਤੇ ਮਹਾਨ ਪ੍ਰੋਲੇਤਾਰੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਇਨਕਲਾਬ	20.00
53. ਕਿਉਂ ਮਾਓਵਾਦ ?	10.00
54. ਸੋਵੀਅਤ ਯੂਨੀਅਨ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਬਾਰੇ ਪ੍ਰਚਾਰੇ ਜਾਂਦੇ ਝੂਠ	10.00
55. ਰਿਜ਼ਰਵੇਸ਼ਨ : ਪੱਖ, ਵਿਪੱਖ ਅਤੇ ਤੀਸਰਾ ਪੱਖ	5.00
56. ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਅਤੇ ਜਾਤ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਸੁਖਵਿੰਦਰ	20.00

57. ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਬਾਰੇ ਅੰਬੇਡਕਰ ਦੇ ਵਿਚਾਰ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ	15.00
58. ਡਾ. ਅੰਬੇਡਕਰ ਅਤੇ ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ	15.00
59. ਡਾ. ਅੰਬੇਡਕਰ : ਜੀਵਨ ਅਤੇ ਵਿਚਾਰ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ	10.00
60. ਭਾਰਤ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿੱਚ ਜਾਤ-ਪਾਤ / ਪ੍ਰੋ. ਇਰਫ਼ਾਨ ਹਬੀਬ	10.00
61. ਉਦਾਰਵਾਦੀ ਨੀਤੀਆਂ ਦੇ 18 ਸਾਲ	5.00
62. ਚੋਰ, ਭ੍ਰਿਸ਼ਟ ਅਤੇ ਅਯਾਸ਼ ਨੇਤਾਸ਼ਾਹੀ	5.00
63. ਪਾਪ ਅਤੇ ਵਿਗਿਆਨ / ਡਾਈਸਨ ਕਾਰਟਰ	60.00
64. ਫਾਸੀਵਾਦ ਕੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਨਾਲ਼ ਕਿਵੇਂ ਲੜੀਏ ?	15.00
65. ਆਈਨਸਟੀਨ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਸਰੋਕਾਰ	10.00
66. ਨੌਜਵਾਨਾਂ ਨਾਲ਼ ਦੋ ਗੱਲਾਂ / ਪੀਟਰ ਕ੍ਰੋਪੋਟਕਿਨ	10.00
67. ਇਨਕਲਾਬ ਦਾ ਸੁਨੇਹਾ (ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਸਾਥੀਆਂ ਦੀਆਂ ਲਿਖਤਾਂ)	30.00
68. ਅਜਿਹਾ ਸੀ ਸਾਡਾ ਭਗਤ ਸਿੰਘ / ਸ਼ਿਵ ਵਰਮਾ	10.00
69. ਮੈਂ ਨਾਸਤਿਕ ਕਿਉਂ ਹਾਂ ? / ਭਗਤ ਸਿੰਘ	10.00
70. ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਨੇ ਕਿਹਾ... / ਭਗਤ ਸਿੰਘ	5.00
71. ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਤੇ ਉਸਦੇ ਸਾਥੀਆਂ ਦਾ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਵਿਕਾਸ / ਪ੍ਰੋ. ਬਿਪਨ ਚੰਦਰਾ	10.00
72. ਇਨਕਲਾਬੀ ਲਹਿਰ ਦਾ ਸਿਧਾਂਤਕ ਵਿਕਾਸ / ਸ਼ਿਵ ਵਰਮਾ	10.00
73. ਸ਼ਹੀਦ ਚੰਦਰ ਸ਼ੇਖਰ ਆਜ਼ਾਦ / ਭਗਵਾਨ ਦਾਸ ਮਹੌਰ	10.00
74. ਗਦਰੀ ਸੂਰਬੀਰ / ਪ੍ਰੋ. ਰਣਧੀਰ ਸਿੰਘ	10.00
75. ਸ਼ਹੀਦ ਸੁਖਦੇਵ	20.00
76. ਸ਼ਹੀਦ ਕਰਤਾਰ ਸਿੰਘ ਸਰਾਭਾ	5.00
77. ਵਿਦਿਆਰਥੀ ਨੌਜਵਾਨ ਨਵੀਂ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਕਿੱਥੋਂ ਕਰਨ ?	10.00
78. ਸੋਧਵਾਦ ਬਾਰੇ	5.00
79. ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਗਿਆਨ ਪ੍ਰਸਾਰ ਦੀ ਲੋੜ ਕਿਉਂ ? / ਸੁਖਵਿੰਦਰ	15.00
80. ਵਧਦੀ ਅਬਾਦੀ	15.00
81. ਯੁੱਗ ਕਿਵੇਂ ਬਦਲਦੇ ਹਨ ? / ਡਾ. ਅੰਮ੍ਰਿਤ	10.00
82. ਧਰਮ ਬਾਰੇ / ਲੈਨਿਨ	30.00
83. ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਮਾਤ-ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਮਹੱਤਵ	20.00
84. ਇੱਕ ਪ੍ਰਤਿਭਾ ਦਾ ਜਨਮ / ਗੈਨਰਿਖ ਵੋਲਕੋਵ	100.00
85. ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਨਵਉਦਾਰਵਾਦ ਦੇ ਦੋ ਦਹਾਕੇ / ਸੁਖਵਿੰਦਰ	20.00

86. ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਦਾ ਕਲਾ ਦਰਸ਼ਨ 200.00
87. ਸਤਾਲਿਨ - ਇੱਕ ਜੀਵਨੀ / ਰਾਹੁਲ ਸਾਂਕਰਤਾਇਨ 150.00
88. ਪੋਰਨੋਗ੍ਰਾਫੀ : ਇਕ ਸਰਮਾਏਦਾਰਾ ਕੋਹੜ / ਅਜੇ ਪਾਲ 10.00
89. ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਗੁਲਾਮੀ ਦਾ ਆਰਥਿਕ ਅਧਾਰ / ਸੀਤਾ 10.00

ਅਨੁਰਾਗ ਟਰੱਸਟ (ਬੱਚਿਆਂ ਲਈ)

1. ਇਵਾਨ / ਵਲਾਦੀਮੀ ਬਗਾਮਲੋਵ 35.00
2. ਵਾਂਕਾ / ਅਨਤੋਨ ਚੈਖੋਵ 10.00
3. ਕਿਸਮਤ ਆਪੋ-ਆਪਣੀ / ਜੈਨੇਂਦਰ 20.00
4. ਕੋਹੇਕਾਫ਼ ਦਾ ਕੈਦੀ / ਤਾਲਸਤਾਏ 30.00
5. ਛੱਤ 'ਤੇ ਫਸ ਗਿਆ ਬਿੱਲਾ ਅਤੇ ਹੋਰ ਕਹਾਣੀਆਂ 20.00
6. ਅਜੀਬੋ-ਗਰੀਬ ਕਿੱਸੇ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ 20.00
7. ਦੋ ਹਿੰਮਤੀ ਕਹਾਣੀਆਂ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ 15.00
8. ਨਵੇਂ ਜ਼ਮਾਨੇ ਦੀਆਂ ਪਰੀ-ਕਥਾਵਾਂ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ 20.00
9. ਅਸੀਂ ਸੂਰਜ ਨੂੰ ਵੇਖ ਸਕਦੇ ਹਾਂ / ਮਿਕੋਲ ਗਿੱਲ 10.00
10. ਗੁਫਾ ਮਾਨਵਾਂ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ / ਮੈਰੀ ਮਾਰਸ 20.00
11. ਕਿੱਸਾ ਇਹ ਕਿ ਇੱਕ ਪੇਂਡੂ ਨੇ ਦੋ ਅਫ਼ਸਰ ਸ਼ਹਿਰੀ ਅਫਸਰਾਂ ਦਾ ਢਿੱਡ ਕਿਵੇਂ ਭਰਿਆ / ਮਿਖਾਈਲ ਸ਼ਚੇਦ੍ਰਿਨ 15.00
12. ਸਦਾਨੰਦ ਦੀ ਛੋਟੀ ਦੁਨੀਆਂ / ਸੱਤਿਆਜੀਤ ਰਾਏ 10.00
13. ਬਾਜ਼ ਦਾ ਗੀਤ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ 10.00
14. ਬੱਸ ਇੱਕ ਯਾਦ / ਲਿਓਨਿਦ ਆਂਦਰੇਯੇਵ 10.00
15. ਦਾਦਾ ਅਰਖ਼ੀਪ ਅਤੇ ਲਿਓਨਕਾ / ਗੋਰਕੀ 20.00
16. ਦਾਨਕੋ ਦਾ ਬਲ਼ਦਾ ਹੋਇਆ ਦਿਲ / ਗੋਰਕੀ 10.00
17. ਘਰ ਦੀ ਲਲਕ / ਨਿਕੋਲਾਈ ਤੇਲੇਸ਼ੋਵ 20.00
18. ਗੁੱਲੀ-ਡੰਡਾ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ 10.00
19. ਹਾਰ ਦੀ ਜਿੱਤ / ਸ਼ੁਦਰਸ਼ਨ 10.00
20. ਹਰਾਮੀ / ਮਿਖ਼ਾਇਲ ਸ਼ੋਲੋਖ਼ੋਵ 20.00
21. ਕਾਬੁਲੀਵਾਲ਼ਾ / ਰਵਿੰਦਰਨਾਥ ਟੈਗੋਰ 10.00
22. ਮੁਸੀਬਤ ਦਾ ਸਾਥੀ / ਸੇਰੇਗਈ ਮਿਖਾਲਕੋਵ 10.00
23. ਪੋਸਟਮਾਸਟਰ / ਰਵਿੰਦਰਨਾਥ ਟੈਗੋਰ 10.00

24.	ਰਾਮਲੀਲਾ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ	10.00
25.	ਸੇਮਾਗਾ ਕਿਵੇਂ ਫੜਿਆ ਗਿਆ / ਗੋਰਕੀ	10.00
26.	ਤੁਰਦਾ-ਫਿਰਦਾ ਟੋਪ / ਐੱਨ. ਨੋਸੋਵ	10.00
27.	ਬੇਜਿਨ ਚਰਾਗਾਹ / ਇਵਾਨ ਤੁਰਗੇਨੇਵ	20.00
28.	ਉਲਟਾ ਰੁੱਖ / ਕ੍ਰਿਸ਼ਨਚੰਦਰ	35.00
29.	ਵੱਡੇ ਭਾਈ ਸਾਹਬ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ	10.00
30.	ਇੱਕ ਛੋਟੇ ਮੁੰਡੇ ਅਤੇ ਕੁੜੀ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਜਿਹੜੇ ਬਰਫ਼ੀਲੀ ਠੰਡ 'ਚ ਕਾਂਬੇ ਨਾਲ਼ ਮਰੇ ਨਹੀਂ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	10.00
31.	ਬਹਾਦਰ / ਅਮਰਕਾਂਤ	10.00
32.	ਹਿਰਨੌਟਾ / ਦਮਿਤਰੀ ਮਾਮਿਨ ਸਿਬਿਰੇਆਕ	10.00

——::——

नवें समाजवादी इन्क़लाब दा बुलारा

प्रतिबद्ध (तिमाही पंजाबी पत्रिका)

सम्पादकीय कार्यालय : शहीद भगतसिंह भवन
सीलोआनी रोड, रायकोट, लुधियाना- 141109 (पंजाब)
फोन : 09815587807 **ईमेल :** pratibadh08@rediffmail.com
ब्लॉग : http://pratibaddh.wordpress.com

एक अंक : 50 रुपये *वार्षिक सदस्यता :*
डाकसहित : 170 रुपये, दस्ती : 150 रुपये विदेश : 50 अमेरिकी डॉलर या 35 पौण्ड

तब्दीली पसन्द विद्यार्थियाँ-नौजवानाँ दी

ललकार (पाक्षिक पंजाबी अखबार)

सम्पादकीय कार्यालय : *लखविन्दर* सुपुत्र मनजीत सिंह
मुहल्ला - जस्सडाँ, शहर और पोस्ट ऑफ़िस - सरहिन्द शहर,
जिला - फ़तेहगढ़ साहिब-140406 (पंजाब) फोन : 096461 50249
ईमेल : lalkaar08@rediffmail.com **ब्लॉग :** http://lalkaar.wordpress.com

एक अंक : 5 रुपये *वार्षिक सदस्यता :* डाकसहित : 170 रुपये, दस्ती : 120 रुपये

हमारे पास आपको मिलेंगे

- विश्व क्लासिक्स
- स्तरीय प्रगतिशील साहित्य
- भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य
- मक्सिम गोर्की की पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह
- भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी दस्तावेज़
- मार्क्सवादी साहित्य
- जीवन और समाज की समझ तथा विचारोत्तेजना देने वाला साहित्य
- प्रगतिशील क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाएँ
- दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलने और कल्पना की उड़ानों को पंख देने वाला बाल-साहित्य
- सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, प्रेरक पोस्टर और कार्ड
- क्रान्तिकारी गीतों के कैसेट
- साहित्यिक व क्रान्तिकारी उद्धरणों-चित्रों वाली टीशर्ट, कैलेण्डर, बुकमार्क, डायरी आदि ...

ऐसा साहित्य जो सपने देखने और भविष्य-निर्माण के लिए प्रेरित करता है!

(हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और मराठी में)

किताबें नहीं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं
किताबें नहीं,
हम असली इन्सान की तरह

जनचेतना

मुख्य केन्द्र : डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

फ़ोन : 0522-4108495

अन्य केन्द्र :

- 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273001, फ़ोन : 7398783835
- दिल्ली : 9999750940
- नियमित स्टॉल : कॉफ़ी हाउस के पास, हज़रतगंज, लखनऊ शाम 5 से 8 बजे तक

सहयोगी केन्द्र

- जनचेतना पुस्तक विक्रय केन्द्र, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन, लुधियाना (पंजाब) फ़ोन : 09815587807

ईमेल : **info@janchetnabooks.org**

वेबसाइट : **www.janchetnabooks.org**

हमारी बुकशॉप और प्रदर्शनियों से पुस्तकें लेने के अलावा आप हमसे डाक से भी किताबें मँगा सकते हैं। हमारी वेबसाइट पर जाकर पुस्तक सूची से पुस्तकें चुनें और ईमेल या फोन से हमें ऑर्डर भेज दें। आप मनीऑर्डर या चेक से या सीधे हमारे बैंक खाते में भुगतान कर सकते हैं। आप वेबसाइट पर दिये **Instamojo** के लिंक से भी भुगतान कर सकते हैं। हमारी किताबें आप **Amazon** और **Flipkart** से भी ऑनलाइन मँगा सकते हैं।

बैंक खाते का विवरणः

ACC. NAME: JANCHETNA PUSTAK PRATISHTHAN SAMITI

Acc. No. 0762002109003796

Bank: Punjab National Bank

यदि आपको महज़ मनोरंजन चाहिए,
महज़ नशे की एक ख़ुराक,
दिल को बहलाने के लिए एक ख़याल
तो नहीं हैं ऐसी किताबें हमारे पास।
हम ऐसी किताबें लेकर आये हैं
जो आपकी मोहनिद्रा झकझोरकर तोड़ दें,
जो आज के हालात पर
आपको सोचने के लिए मजबूर कर दें।
हम किताबें नहीं
लड़ने की ज़िद
और हालात की बेहतरी की उम्मीदें
लेकर आये हैं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं।
हम लेकर आये हैं
एक सार्थक, स्वाभिमानी, मुक्त जीवन की तड़प।
किताबें नहीं
हम असली इंसान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं।

जनचेतना

एक सांस्कृतिक मुहिम
एक वैचारिक प्रोजेक्ट
वैकल्पिक मीडिया का एक मॉडल